उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

MASY-119

संस्कृति का समाजशास्त्र एवं धार्मिक जीवन

खण्ड 1 संस्कृति का परिचय एवं धर्म	पेज न0 6-73
इकाई–1 संस्कृति के अर्थ, परिभाषा, एवं विभिन्न आयाम	6-19
इकाई–2 धर्म के अर्थ, परिभाषा धर्म एवं संस्कृति	20-37
इकाई–3 संस्कृति एवं ज्ञान, शिक्षा : औपचारिक एवं अनौपचारिक	38-48
इकाई–4 सांस्कृतिक बहुलवाद, पॉपुलर (प्रसिद्ध) संस्कृति एवं मास (समूह) संस्कृति	49-59
इकाई–5 जादू धर्म एवं विज्ञान	60-73
खण्ड 2 संस्कृति एवं धर्म के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य	74-133
इकाई–6 इमाईल दुर्खीम धर्म एवं सामाजिक एकीकरण	74.83
इकाई–7 कार्ल मार्क्स के धर्म संबंधी विचार	84.97
इकाई–8 मैक्स वेबर : धर्म एव तार्किकता	98.108
इकाई–9 पीटर बर्जर एंव थामसलकमैन : धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में	109.121
इकाई–10 विलफोर्ड गिर्टज़ का धर्म पर योगदान	122.133
खण्ड = 3 संस्कृति एंव धर्म के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य I	134-151
इकाई–11 एम. एन. श्रीनिवास का कुर्ग का अध्ययन	134.142
इकाई–12 एल. पी. विधार्थी का गया (GAYA) पर योगदान	143.151
खण्ड 4 संस्कृति एंव धर्म के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य. I I	152-174
इकाई–13 आर. के. मुखर्जी का मूल्य पर योगदान	152.163
इकाई–14 महात्मा गाँधी का धर्म पर योगदान	164.174

MASY 119 N

संस्कृति का समाजशास्त्र एंव धार्मिक जीवन

Sociology of culture and religious life

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह, माननीय कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार निदेशक, समाज विज्ञान विधाशाखा,उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो0 आशीष सक्सेना विभागाध्यक्ष,समाजशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 महेश शुक्ला प्रोफेसर टी0 आर0 एस0 कालेज,ए पी एस विश्वविद्यालय,रीवाँ म0 प्र0।

डॉ0 रमेश चन्द्र यादव, असि प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बैसवारा पी0 जी0 कालेज, लालगंज, रायबरेली।

डॉ0 सुचिता चतुर्वेदी,असि प्रोफेसर, (संविदा)समाजशास्त्र विभाग,समाज विज्ञान विधाशाखा।

लेखक

डॉ0 ज्याउद्दीन असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र डी0 ए0 वी0 पी0 जी0 कॉलेज, वाराणसी, इकाई = 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12

डॉ0 मनोज कुमार असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र समाज विज्ञान विधाशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, इकाई = 13,14

सम्पादक

प्रो0 आलोक कुमार कश्यप, समाजशास्त्र विभाग,महाराजा बालवत सिंह पी0 जी0 कालेज, वाराणसी

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ0 मनोज कुमार असि प्रोफेसर,समाज विज्ञान विधाशाखा,उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज– 211021

ISBN :978-81-19530-79-3
2023 (मुद्रित)

सर्वाधिकार सुरक्षित इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट: पाठ्यक्रम सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आंकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन– उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रकाशक–कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
मुद्दक – मेसर्स चंद्रकला प्राइवेट लिमिटेड, प्रयागराज

इकाई परिचय

इकाई 1: संस्कृति के अर्थ परिभाषा एवं विभिन्न आयाम - प्रस्तुत अध्याय में संस्कृति के अर्थ, परिभाषा एवं उसके विभिन्न आयाम की व्यख्या की गई है। इकाई 2 :धर्म के अर्थ, परिभाषा, धर्म एवं संस्कृति,- प्रस्तुत अध्याय में धर्म का अर्थ एवं धर्म की परिभाषा धर्म के स्वरूप तथा धर्म एवं संस्कृति के महत्व की व्यख्या की गई है।

इकाई 3 : संस्कृति एवं ज्ञान, शिक्षा : औपचारिक एवं अनौपचारिक- प्रस्तुत अध्याय में सांस्कृतिक पूंजी, सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन संस्कृति एवं शिक्षा औपचारिक शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा की व्यख्या गई है। इकाई 4 :सांस्कृतिक बहुलवाद, पॉपुलर (प्रसिद्ध) संस्कृति एवं मास (समूह) संस्कृति- प्रस्तुत अध्याय में सांस्कृतिक बहुलवाद सांस्कृतिक भौतिकतावाद, सांस्कृतिक सापेक्षतावाद, जन संस्कृति का अर्थ तथा मास कल्चर वास्तव में क्या है इसकी व्यख्या की गई है। इकाई 5 :जादू धर्म एवं विज्ञान- प्रस्तुत अध्याय में धर्म के तत्व सिद्धांत और जादू के प्रकार विज्ञान जादू और धर्म के बीच संबंध तथा अंतर की व्यख्या की गई है। इकाई 6 :इमाईल दुर्खीम धर्म एवं सामाजिक एकीकरण - प्रस्तुत अध्याय में इमाईल दुर्खीम का धर्म का समाजशास्त्र पवित्र एवं अपवित्र का संबंध तथा सामाजिक एकीकरण एवं धर्म में बदलाव का महत्व भारत के संदर्भ में इसकी व्यख्या की गई है। इकाई 7 : कार्ल मार्क्स के धर्म संबंधी विचार - प्रस्तुत अध्याय में कार्ल मार्क्स का धर्म संबंधी विचार एवं धर्म के सम्बन्ध समाज की धारणा तथा धर्म समाज में किस प्रकार से नियंत्रण करता है इसकी व्यख्या की गई है। इकाई 8 :मैक्स वेबर धर्म एवं तार्किकता- प्रस्तुत अध्याय में मैक्स वेबर का धर्म के समाजशास्त्र प्रोटेस्टेंट धर्म पूंजीवाद को कैसे बढ़ावा देता है तथा धर्म सम्बन्धी एवं तार्किकारण सम्बन्धी विचार भारत के संदर्भ में इसकी व्यख्या की गई है। इकाई 9 :पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन : धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में - प्रस्तुत अध्याय में पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म पर मौजूदा दृष्टिकोण एवं सामाजिक यथार्थ के रूप में धर्म की अवधारणा तथा धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी विचार की व्यख्या की गई है। इकाई 10 :क्लिफर्ड गीट्र्ज का धर्म पर योगदान- प्रस्तुत अध्याय में क्लिफ़र्ड गीट्र्ज का धर्म का समाजशास्त्र क्लिफ़र्ड ने गीट्र्ज धर्म को किस तरह एक प्रतीक के रूप में माना है और विश्व दृष्टि में उसकी क्या विशेषता रही है इसकी व्यख्या की गई है। इकाई 11 :एम.एन. श्रीनिवास का कुर्ग का अध्ययन- प्रस्तुत अध्याय में एम.एन. श्रीनिवास द्वारा गाँव के अध्ययन के आधार पर सैद्धान्तिक तथा पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य संस्कृतीकरण तथा प्रभु जाति पर विचार की व्यख्या गई है। इकाई 12 : एल. पी. विद्यार्थी का गया (GAYA) पर योगदान- प्रस्तुत अध्याय में एल. पी. विद्यार्थी के जीवन व्यक्तित्व और पवित्र परिसर (सेक्रेड काम्प्लेक्स) की अवधारणा

प्रकृति मनुष्य एवं आत्मा परिसर तथा आदिवासी और लोकगीत अध्ययन की व्यख्या गई है। इकाई 13 : राधाकमल मुकर्जी का मूल्यों पर योगदान- प्रस्तुत अध्याय में राधाकमल मुकर्जी का व्यक्तित्व और समाज में मूल्य की अवधारणा मानवीय मूल्य तथा प्रतीक और मूल्य तथा मूल्यों का उदविकास की व्यख्या गई है। इकाई 14 : महात्मा गाँधी का धर्म पर योगदान- प्रस्तुत अध्याय में महात्मा गाँधी के धर्म पर विचार एवं गाँधी द्वारा दिए गये धर्म के अर्थ की व्यख्या गाँधी के धर्म का वैविध्य स्वरूप बुनियादी एकता की व्यख्या गई है।

इकाई १: संस्कृति के अर्थ परिभाषा एवं विभिन्न आयाम

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 संस्कृति की परिभाषाएँ

1.3 संस्कृति के विभिन्न आयाम

1.4 संस्कृति अद्वितीय

1.5 समूह या समाज ही संस्कृति का वाहक

1.6 जीवन्त संस्कृति

1.7 अतीन्द्रीय संस्कृति

1.8 एकीकृत संस्कृति

1.9 संस्कृति के घटक

1.10 सारांश

1.11 बोध प्रश्न

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है : इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संस्कृति के अर्थ, परिभाषा एवं उसके विभिन्न आयाम की व्यख्या कर सकेंगे।
- संस्कृति अद्वितीय तथा समूह या समाज ही संस्कृति का वाहक है इसे आप परिभाषित कर सकेंगे।
- जीवन्त संस्कृति, अतीन्द्रीय संस्कृति, एकीकृत संस्कृति तथा संस्कृति के घटक की व्यख्या कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

समूहों में रहने का लक्षण मानव ही नहीं बल्कि कुछ अन्य पशुओं में विशेषतः वानरों (Primates) में भी पाया जाता है। होमो सेपियन्स(Homo Sapiens) या मेधावी मानव कहे जाने वाले प्राणियों से नीचे के वृंदचर (Gregarious) होते हैं। चीटियों तक में सामाजिक संगठन पाया जाता है। किन्तु मनुष्य को अन्य प्राणियों से जो भिन्न बनाता है वह है उसकी संस्कृति निर्माण की क्षमता। मानव समाज इसीलिए भिन्न है कि वे उनकी संस्कृति द्वारा पहचाने जाते हैं। संपूर्ण मानव जन समूह कई समाजों में बंटा हुआ है पर प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति ही उसे अन्य समाजों से भिन्न बनाती है। यह ऐसा अतिरिक्त लक्षण है जो नीचे के स्तर के पशुओं में पाए जाने वाले समाजों से मानव समाज को भिन्न बनाता है। मानवेतर प्राणियों का अधिकांश व्यवहार स्वतःस्फूर्त होता है, यानी कि वह उनकी सहज वृत्ति का परिणाम है क्योंकि उसे उनके जीन्स (Genes) अर्थात जीवाणु निर्धारित करते हैं और उन पर अपने परिवेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

शिम्पांजी, गुरिल्ला और ओरांग उटांग जो मानव के दूरस्थ 'कजिन' यानि सहोदर सम गिने जाते हैं और अन्य वानरों की अपेक्षा अधिक विकसित एवं मिलनसार भी हैं अर्थात 'सामाजिक' कहे जाते हैं क्योंकि वे भी अपने लघु समूह में अंतःक्रियारत होते हैं और उनके निकट संबंधियों से उनका मेल–जोल बना रहता है। उनमें भी कुछ सीमा तक सीखने और आविष्कार करने की क्षमता होती है। कई बार ऐसे आविष्कार नियोजित नहीं होते वे संयोग से घटित होते हैं। ऐसी प्रक्रिया को अंग्रेजी में (Jutaposition) कहा जाता है। यद्यपि उनका अधिकांश व्यवहार जैविकीय हो होता है। उदाहरणार्थ, दुनिया के किसी भी भाग

में बस गये शिम्पांजियों का सामाजिक संगठन एक सा ही होगा। ऐसा मानव के साथ नहीं होता।

1.2 संस्कृति की परिभाषाएँ

संस्कृति को लेखकों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ विचारक संस्कृति में उन सभी प्रमुख सामाजिक तत्वों को सम्मिलित करते हैं जो मनुष्यों को समाज में परस्पर संयुक्त करते हैं। अन्य लेखक संकुचित अर्थ लेते हैं तथा इसमें केवल अभौतिक अंगों को ही सम्मिलित करते हैं। कुछेक परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

टायलर के अनुसार, संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा तथा समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समर्थताएँ सम्मिलित हैं।

मैलिनोव्स्की के अनुसार, संस्कृति मनुष्य की कृति है तथा एक साधन है जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।

रेडफील्ड के अनुसार, संस्कृति ऐसे परम्परागत विश्वासों के संगठित समूह को कहते हैं जो कला एवं कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा जो परम्परा द्वारा चलते रहते हैं और किसी मानव– समूह की विशेषता को चित्रित करते हैं।

जोसेफ पाईपर के अनुसार, संस्कृति संसार की सभी भौतिक वस्तुओं तथा उन उपहारों एवं गुणों का सार है जो मनुष्य की सम्पत्ति होते हुए भी उसकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे हैं।

वी० डी राजर्टी के अनुसार, संस्कृति विचार एवं ज्ञान दोनों, व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक, का समूह है जो केवल मनुष्यों के पास ही हो सकता है।

स्पेंसर के अनुसार, संस्कृति पराजैविक पर्यावरण है जो अजैविक अथवा भौतिक एवं जैविक, पौधों एवं पशुओं के संसार से भिन्न है।

लापीयर स्पेंसर के अनुसार, संस्कृति पीढ़ियों से प्राप्त किसी सामाजिक समूह की शिक्षा, जो रीति–रिवाजों, धर्म, मनोरंजन, विनोद आदि में हमारी प्रकृति की ही अभिव्यक्ति है।

हावेल के अनुसार, संस्कृति सीखे हुए एकीकृत व्यवहार प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है जो किसी समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बतलाता है,

अतएव जो जैविक विरासत का परिणाम नहीं होते।

एंडरसन एवं पार्कर के अनुसार, संस्कृत मानव द्वारा उत्पन्न भौतिक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक–सामाजिक सार्वभौमिकताओं तथा सामाजिक रूप से निर्मित प्रणालियों जिनके माध्यम से ये सामाजिक कृतियाँ क्रियाशील होती हैं, की सम्पूर्ण अन्तर्वस्तु है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र में 'संस्कृति' शब्द का विशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया जाता है जो साधारण बोलचाल के अर्थ से भिन्न है। लोग आमतौर पर शिक्षित व्यक्ति को संस्कृत व्यक्ति कहते है तथा अशिक्षित को असंस्कृत व्यक्ति समझते हैं। समाजशास्त्र में हम इस शब्द का प्रयोग अर्जित व्यवहारों के लिए करते हैं जिनका समूह के सदस्यों द्वारा पालन किया जाता है तथा जो समूह के सदस्यों के बीच हस्तांतरित होते हैं। यह एक संग्रह है जिसे नई पीढ़ी उत्तराधिकार में प्राप्त करती है। यह एक विरासत है जिसमें शिशु जन्म लेता है। इस प्रकार समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिए ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता जो संस्कृति एवं सभ्यता से पूर्णतया संस्कृति विहीन हो, क्योंकि व्यक्ति आवश्यकता अपने समूह की संस्कृति में जन्म से भागीदार होते हैं।

संस्कृति के अर्थ में आवश्यक तत्व यह है कि यह मनुष्य समाज के सदस्य रूप में अर्जित की जाती है तथा यह परम्परा द्वारा सुस्थिर रहती है। परम्परा द्वारा अर्जन का अभिप्राय यह है कि मनुष्य में समूह के सीखने की योग्यता होती है। मनुष्य अपने व्यवहार को सीखता है तथा जिस व्यवहार को वह सीखता है, वही उसकी संस्कृति है। संगीत गाना, बातचीत करना, नृत्य करना, भोजन करना, सभी कुछ संस्कृति के क्षेत्र में सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त यह व्यवहार केवल किसी एक व्यक्ति का निजी व्यवहार नहीं होता अपितु इसमें अन्य व्यक्ति भी भागीदार होते हैं उसके व्यवहारों को किसी विद्यालय के प्राध्यापक माता–पिता अथवा मित्रों द्वारा उसे हस्तांतरित किया गया है।

यह विशेष परिस्थितियों भौतिक एवं जैविक जिसमें समूह स्वयं को पाता है के अधीन इकट्ठे मिलकर रहने के बारे में सीखी गई सभी बातों का योग है। इस प्रकार संस्कृति समूह के सदस्यों द्वारा भागीकृत एवं उनके बीच हस्तांतरित सीखे गए व्यवहार की प्रणाली है। मनुष्य इसे जन्म से सीखना प्रारम्भ कर देता है। उसके जन्म लेने से पूर्व ही व्यवहार के नियम एवं इसकी प्रक्रियाएँ पूर्व वर्तमान होते हैं। उसे उन्हें केवल सीखना होता है वे उसको काम करना सिखाते हैं। संस्कृति को ग्रहण करके तथा अपनी पुरातन विरासत से लाभ उठाकर मनुष्य विशिष्ट रूप से मानव बन जाता है। अतएव, व्यक्ति को 'संस्कृति–धारक' जीव कहा गया है। संस्कृति प्रकृति की देन नहीं, अपितु समाज की

देन है। प्रकृति तो केवल पर्यावरण प्रदान करती है संस्कृति पर्यावरण का मानव– निर्मित भाग है। उदाहरणतया, प्रकृति मिट्टी प्रदान करती है, परन्तु जब मानव मिट्टी से बर्तन बनाता है तो वह उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है। अतः संस्कृत का सृजन मानव– मस्तिष्क में ही होता है।

1.3 संस्कृति के विभिन्न आयाम

संस्कृति सर्वव्यापी है

संस्कृति सभी मानव समाजों का अतीत के या वर्तमान के एक विशिष्ट लक्षण है। मानव से नीचे के स्तर के पशुओं में सामूहिक, सामाजिक जीवन तो होता है किन्तु मानव ही एकमात्र जीव है जो किसी भी आकार के समाज में रहे या समाज विकास के किसी भी चरण पर हो, सदैव संस्कृति में आबद्ध रहता है। मानव की कुछ ऐसी गतिविधियाँ हैं जो सर्वत्र पाई जाती हैं किन्तु फिर भी वे जैविकी से निर्धारित नहीं होती। इसी प्रकार मानव किसी भी प्रकार के प्राकृतिक वातावरण में अपना आवास बना ले संस्कृति सभी में पाई जाती है। जार्ज पीटर मरडॉक (1943) ने दुनिया के अनेक समाजों के साहित्य का परीक्षण कर एक ऐसी सूची तैयार को है जो सभी समाजों में पाई जाती है।

पीटर मरडॉक कहते है कि बोलने की क्षमता हमें जन्म से मिली है और हम ढेर सारी आवाजें निकाल सकते हैं। लेकिन सभी संस्कृतियों में एक ही भाषा का प्रयोग नहीं होता। इस विशाल क्षमता में से किसी भी संस्कृति के लोग सीमित संख्या में ही आवाजें निकाल सकते हैं; और उस समाज का कोई एक व्यक्ति उस सीमित संख्या में से भी चयन कर उन पर दक्षता हासिल कर सकता है और यह सब सीखा हुआ व्यवहार है, जैविकीय अनुदान नहीं। एक ही समाज में भाषा को व्यवहार में लाने वाले न केवल शब्दों को तोड़ते–मरोड़ते हैं बल्कि व्याकरण और वाक्य विन्यास में भी परिवर्तन लाते रहते हैं। इस प्रक्रिया में कई नये शब्द गढ़े जाते हैं और पुराने शब्दों का चलन कम हो जाता है। आज जो हिन्दी बोली जाती है वह खड़ी बोली के प्रवर्तकों की भाषा से बहुत कुछ बदल सी गई है। इसी प्रकार एक भारतीय जिस लहजे से अंग्रेजी बोलता है वह एक अमेरिकी, अंग्रेज, और फिलिपिनों के लहजे से बड़ा भिन्न है। कम्प्यूटर के आने के बाद जो सूचना क्रान्ति हुई है उसमें कई ऐसे नये शब्द गढ़े जा रहे हैं जिन्हें यदि हमारे दिवंगत पूर्वज फिर धरती पर आकर सुने तो समझ नहीं पाएंगे।

जैसे ब्लॉग, गूगल, ई–मेल, एसएमएस, अपलोडिंग और जाने क्या–क्या?

स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्र जो नयी शब्दावली गढ़ रहे हैं वह इस परिवर्तन का ज्वलंत उदाहरण हैं।

1.4 संस्कृति अद्वितीय

यद्यपि, संस्कृति सार्वभौमिक है फिर भी प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है। अद्वितीय जैसा पहले कहा गया प्रत्येक संस्कृति उत्प्रेषणों और नवाचारों और बाहर से आयातित सामग्री से निर्मित होती है। किन्तु जो भी तत्व बाहर से आते हैं उनका प्रत्येक संस्कृति परीक्षण करती है और तभी प्रवेश संस्कृति के स्वरूप को स्वीकरण मिलता है। स्वीकृति मिलने पर ये तत्व अतिथि समाज के संस्कृति–विन्यास में समवस्थित हो पाते है। किन्हीं दो समाजों में एक ही तत्व के पाये जाने का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि वे एक ही मूल के हैं या उनका एक सा उपयोग होता है या उन्हें एक सी परिभाषा दी जाती है। उदाहरण के लिए आतिथ्य को ही लीजिए जो सभी संस्कृतियों में पाया जाता है। किसी भी अतिथि का आदर सत्कार भिन्न–भिन्न समाजों में भिन्न–भिन्न प्रकार से किया जाता है। आक्रमणकारी की तरह भारत में आए हुए योद्धाओं को स्थानीय निवासियों का सामना करना पड़ता था जो हिंसक संग्राम का रूप भी ले लेता था। किन्तु एक बार यहाँ स्थापित होने पर स्थानीय निवासियों के उनके प्रति रुख में बदलाव आ जाता है। संघर्ष के बाद सामंजस्य (Accommodation) और तत्पश्चात स्वांगीकरण (Assimilation) होता रहा और इस प्रकार भारतीय संस्कृति इन संबंधों से समृद्ध होती रही और एक अखिल भारतीय सभ्यता (Pan Indian Civilization) में परिणत होकर कई उप–संस्कृतियों और प्रादेशिक संस्कृतियों में आविर्भाव का मार्ग सुगम बनाती रही है।

भारत में हम अतिथि को भगवान का स्वरूप मानते हैं अतिथि देवो भवः। इसी कारण हम आगंतुक का स्वागत–सत्कार करते हैं। लेकिन हम इतना भी सत्कार नहीं करते जितना बर्फीले क्षेत्र में रहने वाले एस्किमों अपने अतिथि का करते हैं। वहाँ पर अकेले यात्रा करने वाले व्यक्ति को न केवल आश्रय और भोजन दिया जाता है, वरन् कुछ स्थितियों में तो एक शयन–साथी भी दिया जाता है। पति और पत्नी की सहमति के बाद ही यह सेवा प्रदान की जाती है और यदि यह सत्कार प्रदान किया जाता है तो उसे मना करना महिला और मेजबान का अपमान करने के बराबर होता है। पुरुष घर का स्वामी होता है और उसको अनुमति के बिना यौनकर्म संबंधी अनियमितताएँ दंडित होती हैं। इस प्रकार यौन कर्म संबंधी नियम होते हैं और इसलिए अतिथि को घर की महिला के साथ सोने के लिए आमंत्रित करना स्वछंद संभोग (Promiscuity) नहीं

है।

संबोध संयोजन ग्रीनलैंड में रहने वाले एस्किमो लोगों की जीवनशैली मैदानों में रहने वाले लोगों से काफी भिन्न है। बर्फ से ढके क्षेत्र में रहने वाले एस्किमों लोगों ने ऐसे ठंडे जलवायु में रहने के लिए विशिष्ट वास्तुकला स्थापत्य विकसित की है। उनके इग्लू बर्फ से बने गुंबद के आकार के होते हुए भी भीतर से काफी गर्म होते हैं। एस्किमों लोगों ने बर्फ में ठहरने, स्लेज के जरिये यातायात करने और हड्डियों और पत्थरों को हथियार और औजार बनाने की कला विकसित की है। उनका अपना अलग से धर्म और सामाजिक ढांचा भी है। एक वयोवृद्ध एस्किमो जो स्वयं शिकार नहीं कर पाता या कुछ काम नहीं कर पाता वह एकान्त में मरने के लिए चला जाता है, या फिर परिवार से कहता है कि वे उसे वहीं छोड़कर अन्यत्र चले जाएं, विशेष तौर से तब जब कि खाद्य का भरण कम हो जाता है और एक आदमी के खाने का बोझ सारे समूह के लिए खतरा बन जाता है। यदि यह स्वयं ऐसा नहीं करता तो उसका परिवार ही उसे मरने के लिए अकेला छोड़कर चल देता है।

एस्किमो संस्कृति के ये दोनों पहलू अतिथि सत्कार और बड़े–बूढ़ों के प्रति तथा मृत्यु के प्रति उनका रुख कई अन्य संस्कृतियों से भिन्न है जहाँ आतिथ्य के भिन्न सामान्यक और मरण–संबंधी धारणाएँ भिन्न कोटि की हैं। फिर भी वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम उन्हें अपने सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से देखकर बुरा या अवांछित घोषित न करें। यही सांस्कृतिक सापेक्षवाद का अभिप्राय है। अद्वितीय होने के कारण प्रत्येक संस्कृति के किसी कृत्य को बुरा या अच्छा या वांछनीय बताने के अपने मानक होते हैं।

1.5 समूह या समाज ही संस्कृति का वाहक

संस्कृति एक समूह का उत्पाद होती है; यह समूह संपूर्ण समाज भी हो सकता है, या समाज के भीतर ही का एक उपसमूह हैं। जब यह उपसमूह से जुड़ी होती है तो इसे उप संस्कृति कहते हैं। भारत के संदर्भ में हम प्रादेशिक संस्कृतियों, आदिवासी संस्कृतियों, यहाँ तक कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों की चर्चा करते हैं। किन्तु इसे समाज का पर्याय नहीं मानना चाहिए। समाज का अभिप्राय लोगों (जन) से है, संस्कृति उन लोगों की जीवन शैली है। हस्कॉविट्स लिखते हैं–'संस्कृति एक जन समुदाय की जीवन–शैली है, जबकि समाज ऐसे व्यक्तियों का संगठित पुंज है जिनकी एक सी जीवन शैली होती है। समाज लोगों से बनता है; वे जिस प्रकार व्यवहार करते हैं वह उनकी संस्कृति होती

है। यह एक महत्त्वपूर्ण अंतर है। एक समूह के या समाज के सदस्य मर सकते हैं या छोड़कर अन्यत्र जा सकते हैं; प्रवासी लोग अपनी पैतृक संस्कृति के कुछ तत्व साथ ले जा सकते हैं जो उनको अपनी पहचान देते हैं, किन्तु संस्कृति बनी रहती है और जो नये आए प्रतिस्थापक सदस्यों के व्यवहार को ढालती है। यह प्रतिस्थापन जन्म के द्वारा भी होता है और विदेशियों के आगमन से भी। जो प्रवासी आकर बस जाते हैं वे भी अपनी पैतृक संस्कृति के तत्व साथ लाते हैं और इस प्रकार अपनी नयी अपनायी गई संस्कृति की धरोहर को और भी समृद्ध करते हैं।

1.6 जीवन्त संस्कृति

यह सही है कि संस्कृति हमें सामाजिक तौर से विरासत में मिलती है। एक बालक अपने माता–पिता की संस्कृति में जन्म लेता है और जन्म से ही वह उसमें अधिष्ठापित होने लगता है। किन्तु जो लोग उस संस्कृति को जीते हैं वे अपने नये आविष्कारों और उत्प्रेषणों से अन्य संस्कृतियों से लाए गए तत्वों से तथा अनेकों प्रकार से उस संस्कृति को और भी समृद्धिशाली बनाते हैं। उदाहरण के लिए, जो पाक कला में निपुण हैं ये मसालों और सब्जियों के भिन्न सम्मिश्रणों से नये पकवान बनाते हैं और इस प्रकार पाक विज्ञान का विस्तार करते हैं।

इसी प्रकार चित्रकार नये कला–स्वरूपों का विकास करते हैं। भाषा के बोलने वाले बोलने के ढंग, शब्दों के उच्चारण, शब्दों के संक्षिप्तिकरण, परिवर्णी नाम (Acronym) तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का उपयोग कर कई परिवर्तन लाते हैं। हमारी आज की हिन्दी में अरबी, फारसी और अंग्रेजी के कई शब्द आ गए हैं और अब तो शब्दावली में सूचना प्रौद्योगिकी (IT) से जुड़े ढेरों शब्द और आ गए हैं कम्प्यूटर, सेल, मोबाइल और जाने क्या–क्या? 21वीं शताब्दी के भारत को संश्लिष्ट संस्कृति अठारहवीं शताब्दी के भारत से वस्तुतः बहुत भिन्न है, किन्तु फिर भी भारतीय संस्कृति के रूप में उसकी पहचान ज्यों की त्यों है।

1.7 अतीन्द्रीय संस्कृति (Super Organic)

तीन भिन्न अर्थों में अतीन्द्रीय शब्द का प्रयोग होता है :–

1. हर्बर्ट स्पेन्सर ने इस शब्द का प्रयोग उन वस्तुओं/घटनाओं के लिए किया जो इन्द्रियों पर निर्भर थी और उसी के अनुसार बदलती रहती थी। दूसरे शब्दों में यह वह प्रक्रिया है जो ऐन्द्रिय उद्विकास के उपरान्त

घटित होती है।

2. अन्य लोग इस संज्ञा का उपयोग यह बताने के लिए करते हैं कि सांस्कृतिक उद्विकास व्यक्ति के जैविकीय ढांचे पर निर्भर नहीं करता उनका संकेत मनुष्य की अद्‌भुत मनोवैज्ञानिक क्षमताओं की ओर है।

3. संस्कृति के संबोध के शीर्ष प्रवर्तक अल्फ्रेड क्रोबर इसे मनोवैज्ञानिक सीमान्त से भी परे ले जाते हैं। उनका कहना है कि संस्कृति परा जैविक या अतीन्द्रीय ही नहीं बल्कि वह परा मानसिक भी है। उनका तर्क था कि मानसिकता व्यक्ति के साथ जुड़ी है जबकि संस्कृति निर्वैयक्तिक होती है। सभ्यता अपने आप में कोई मानसिक कृत्य नहीं है बिना इसमें लिप्त हुए मनुष्य इसका वहन करते हैं।

यहाँ यह कहना होगा कि लंबे समय तक जैविकीय और भौगोलिक कारकों को भूमिका पर विवाद चलता रहा है जिसमें कुछ जैविकीय कारकों को तो कुछ भौगोलिक कारकों की अधिक महत्ता देते रहे है।

पर ये दोनों ही अतिवादी तर्क है और संस्कृति निर्माण में दोनों की हो अंतरंग भूमिका रही है। यह सही है, कि दोनों ही हमारे कृत्यों को निर्धारित तो नहीं करते, मर्यादित अवश्य करते हैं। संस्कृति भी उन्हें प्रभावित करती है। जैसा भोजन हम करते हैं उससे हमारी शरीर रचना (Anatomy) और हमारी कायिकी (Physiology) प्रभावित होती है। वर्तमान समाज में पाई जाने वाली कई बीमारियाँ मानव जनित है और आने वाले दिनों में बढ़ सकती हैं जिसके कारण किसी भी समाज में बीमारी के बोझ का खाका बदल सकता है। यदि तम्बाकू से कैंसर होने की संभावना से सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान करने में कमी आई है तो कम्प्यूटर पर लंबे समय तक और कॉल सेन्टरों पर देर रात काम करने से लोगों का जीवन और वैवाहिक संबंध भी प्रभावित होने लगे हैं। वैश्वीकरण की ओर बढ़ते हुए विश्व ने हमें एड्स स्वाइन फ्लू, नपुंसकता और जरावस्था को बीमारियों का तोहफा दिया है।

1.8 एकीकृत संस्कृति

संस्कृति अपने तत्वों और संश्लेषों के कुल योग से कहीं अधिक बढ़कर होती है। संस्कृति के विभिन्न तत्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक–दूसरे से जुड़ते हैं और उसका अभिन्न अंग बनते हैं। एक ही तत्व का विशेषतः भौतिक संस्कृति का किन्हीं दो संस्कृतियों में पाए जाने का यह अर्थ नहीं है कि दोनों ही में

उनका एक ही तरह उपयोग होता है या दोनों को एक ही तरह समझा जाता है। जब बाहर से आए पर्यटक किसी आदिवासी संस्कृति की वस्तु को खरीदकर अपने ड्राइंग रूम में सजाते है तो ये उस वस्तु के उद्‌गम स्थल को संस्कृति को साथ नहीं लाते। उनके लिए ये वस्तुएँ संग्रहालय में रखने या सजाने के उपकरण हैं। अपने उद्‌गम के समाज में हो सकता है ये धार्मिक कृत्यों से जुड़ी हों या फिर रसोईघर के काम से; उसे निर्यात करने वाले की संस्कृति में ये ही वस्तुए ड्राइंग रूम की सजावट के लिए उपकरण बन जाती हैं। इनकी खरीद प्रभावित होती है उनके आदिवासी समाज से जुड़े होने के कारण, या विजातीय और विभिन्न दिखने, या लोककला के उदाहरण होने के कारण वे गरीब कारीगरों की सहायता के उदार मनोविचार से प्रभावित होकर भी इन्हें खरीद सकते हैं या फिर वहाँ से सस्ते में खरीदकर भारी दामों में अन्य धन संग्राहकों को बेचने के लिए भी। यह भी हो सकता है कि आदिवासी वस्तुओं का क्रय–विक्रय होने से उस समाज की संस्कृति पर भी प्रभाव पड़े और समाज में धनवान–गरीब के वर्ग स्थापित कर उनमें वर्ग भेद उत्पन्न कर दें। यह इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है कि अंतःक्रियाओं के माध्यम से संस्कृतियों में परिवर्तन आते हैं। ये अंतःक्रियाएँ समाज के सदस्यों के बीच भी होती हैं और उनके साथ भी जो उस समाज के सदस्य नही होते जब बाहर के लोग पर्यटक के रूप में आते हैं या जब समाज के सदस्य अन्य समाजों में पर्यटन के लिए जाते हैं।

एकीकरण इस बात की ओर भी इशारा करता है कि संस्कृति के विभिन्न पक्ष एक–दूसरे से इस प्रकार बुदे हुए होते हैं कि संस्कृति के किसी एक भाग में होने वाले परिवर्तन के दूरगामी प्रभाव होते हैं जो संस्कृति के अन्य भागों को अलग–अलग प्रकार से और अलग–अलग अंशों में प्रभावित करते हैं। विदेशों में आविष्कृत लाउड स्पीकर और माइक्रोफोन जब इस देश में आए तो उनका प्रयोग राजनीतिक सभाओं को आयोजित करने के लिए ही नहीं हुआ वरन् उन्होंने हमारे मंदिरों और मस्जिदों के काम को भी प्रभावित किया। आज भारत में बड़े–बड़े धार्मिक और योग संबंधी सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं जहाँ धार्मिक संत–महात्मा को लाउड स्पीकर के माध्यम से सुना जाता है। और बड़े–बड़े पंडालों में जगह–जगह लगाए पदों पर उनकी तस्वीर दिखाई जाती है। उनकी इन सभाओं का साथ–साथ टेलीविजन पर प्रसारण भी होता है जिसे पूरे देश और अन्य देश में भी देखा जा सकता है। बाबा रामदेव और मुरारी बापू जैसे धर्म प्रचारकों की लोकप्रियता को बढ़ाने में टीवी (दूरदर्शन) का बड़ा हाथ रहा है और उनके प्रसारणों से धार्मिक भावनाएँ और योग के प्रति निष्ठा पुनः

जागरुक हुई है। जो अपने को पहले धर्म निरपेक्ष कहकर गर्व का अनुभव करते थे उनमें से कई अब इन कार्यक्रमों को भी चाव से देखते हैं और योग के प्रति उनका रुख बदला है। संस्कृति को एक एकीकृत संपूर्णता के रूप में देखा जाना चाहिए। छोटे बड़े सारे तत्व संस्कृति को एकीकृत रखने की भूमिका निभाते हैं।

बच्चों के खेल और नर्सरी में निस्संदेह संस्कृति के मूल्यों और सामान्यकों को पुष्ट करते हैं, उनमें अक्सर उचित और अनुचित व्यवहार के बारे में सीख दी जाती है। इसी प्रकार विवाह, अंत्येष्टि और दीक्षा जैसे धार्मिक अनुष्ठान लोगों को अपनी नयी सामाजिक भूमिकाओं के लिए तैयार करते हैं और परिवर्तन के सदमें को कम करते है जिसमें सामाजिक नैरन्तर्य का भय होता है। समाजशास्त्री इस बात पर एकमत हैं कि विश्लेषण के लिए किसी भी संस्कृति को तार्किक दृष्टि से अलग–अलग भागों में विभाजित कर ठीक से नहीं समझा जा सकता। संस्कृति का प्रत्येक भाग एक–दूसरे से गुंथा हुआ होता है और संस्कृति की संपूर्णता में योगदान देता है।

1.9 संस्कृति के घटक

तत्त्वों (Trait), सश्लेषों (Complete), सामान्यकों (Norms) और संस्थाओं (Institutions) से मिलकर संस्कृति का निर्माण होता है।

संस्कृति का सबसे छोटा एक तत्व है जिसे अंग्रेजी में ट्रेट (Trait) या एलिमेंट (Element) कहा जाता है। यह एक व्यवहार प्रकार भी हो सकता है या किसी व्यवहार की एक ऐसी भौतिक उपज जिसे सरलता से पहचाना जा सके। भौतिक संस्कृति की प्रत्येक वस्तु चाहे वह रसोईघर में हो या ड्राइंग रूम में या फिर बाजार में वह संस्कृति का एक तत्व होती है। उसके भौतिक आकार–प्रकार की दृष्टि से नहीं वरन् उससे जुड़े व्यवहार–प्रकार की दृष्टि से भी होता है। जैसे बेलन का प्रयोग भारत में ही नहीं पश्चिम की बेकरी की दूकानों पर भी होता है। किन्तु भारतीय घरों में उसका एक विशेष स्थान है। भारत में उसे पत्नी के संदर्भ में देखा जाता है क्योंकि वही रसोई की मालकिन होती है और पति–पत्नी के संबंधों से जुड़े कई मजाकों में उसका उल्लेख होता है। पति को पत्नी द्वारा पिटाई का बेलन प्रतीक हो गया है। वह संस्कृति एक–दूसरे से निकट से जुड़े कई तत्वों का तांता संस्कृति–संश्लेषण या संकुल कहलाता है। इसका नृत्य एक अच्छा उदाहरण है। इस संकुल में कई सांस्कृतिक तत्वों का मेल होता है जैसे पोशाक, आभूषण, संगीत, संगीतकार,

वाद्य–यंत्र, रंग मंत्र, प्रकाश व्यवस्था, दर्शक गण आदि।

इन सबकी विशेष प्रकार के संयोजन में उपस्थिति ही नृत्य को एक संस्कृति–संकुल या संश्लेष बनाती है। इससे ऊपर के स्तर में कई सामान्यक, व्यवहार प्रकार और सश्लेष जुड़ जाते हैं जिन्हें हम –संस्था' (Institution) की संज्ञा देते हैं।

इस अर्थ में विवाह एक संस्था है। विवाह की संस्था उसके सांस्कृतिक तत्वों और संश्लेयों के ढांचे और उनसे जुड़े सामान्यकों और मूल्यों के कारण अपनी सांस्कृतिक भिन्नता बनाए रखती है। विवाह मूल रूप से यौन कर्म और प्रजनन के लिए एक पुरुष और स्त्री का संयोग है पर जिस ढंग से यह स्थापित किया जाता है वह समाजानुसार भिन्न–भिन्न होता है। समाज के नियम ही जीवनसाथी के चयन को निर्धारित करते हैं। किन–किन में विवाह हो सकता है और किनमें नहीं, विवाह संस्कार की तिथि और समय और वे सभी कार्य जो विवाह को प्रभावित करते हैं।

किसी भी संस्कृति के घटकों की संरचना को एक स्तरीकरण के रूप में देखा जा सकता है। जो सामान्यक सभी पर लागू होते हैं उन्हें सर्वव्यापी (Universal) कहा जाता है जो किसी भी संस्कृति का क्रोड या मूल बनाते है। 'विकल्पों' (Alternatives) को क्रोड के बाहर की परिधि में रखा जाता है। जैसे एक भारतीय औपचारिक रूप से सूट–टाई पहन सकता है, या बंद गले का कोट, या शेरवानी या धोती–कुर्त्ता आदि ये सारे विकल्प उसके पास हैं। यदि इनमें से कोई पोशाक अनिवार्य हो तो वह क्रोड में प्रवेश कर जाएगी और सर्वव्यापी हो जाएगी। लंबे समय तक एक भारतीय नारी के लिए साड़ी पहनना अनिवार्य था पर वह अब एक विकल्प बन कर रह गया है क्योंकि महिलाएं अब साड़ी, सलवार–सूट, या जीन्स–शर्ट में से किसी एक का चयन कर सकती हैं। सर्वव्यापी होने के स्थान पर साड़ी एक विकल्प बनकर रह गई है। कुछ ऐसे तत्व या संश्लेष हैं जो किन्हीं सामाजिक पदों और उप–प्रणालियों के लिए विशेष होते हैं। इन्हें विशिष्टताएँ (Specialties) कहते हैं। जिस प्रकार एक नव विवाहित महिला शृंगार करती है और ढेर सारे गहने पहनती है बालों की मांग में सिन्दूर भरती है और चमकीली चूड़ियाँ पहनती है वे सब एक दुल्हन के सूचक चिन्ह है।

एक विशिष्टता समूह के अन्य सदस्यों को इन विशिष्टताओं का बोध होता है पर वे इन्हें इसलिए नहीं पहनते क्योंकि वे दुल्हन की भूमिका में नहीं

होते हैं। इस अर्थ में हम भारतीयों के अखिल भारतीय सर्वव्यापी तत्वों को चिन्हित कर सकते हैं क्योंकि वे भारतीय समाज और संस्कृति के एकीकरणकारी तत्व है। प्रादेशिक विशिष्टताएँ ही जैसे प्रादेशिक भाषाएँ, प्रादेशिक पकवान प्रादेशिक त्यौहार आदि उन्हें भिन्नता प्रदान करती है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि एकीकरण को प्रशस्त बनाने के लिये ही कई प्रादेशिक तत्वों का सर्वव्यापीकरण हुआ है।

आज अखिल भारतीय भोजन की सूची में पंजाब को तंदूरी डिरों, दक्षिण भारत का डोसा इडली सांभर, गुजरात का ढोकला और बंगाल का संदेश और रसगुल्ला आता है। किसी भी समाज की सशक्त शक्ति सर्वव्यापी तत्वों और विशिष्टताओं के सापेक्षिक अनुपात पर कई अंशों में निर्भर करती है। किसी भी समाज या संस्कृति के विश्लेषण के लिए स्पष्टता और यथार्थता (Accuracy) के हित में यह अत्यंत आवश्यक है कि समाज के किसी समूह में पाए गए सामान्यकों के आधार पर पूरे समाज के लिए उनका सामान्यीकरण न किया जाए। सामान्यीकरण तभी किया जाए जब किसी उपसमूह के लक्षण संपूर्ण समाज के भी लक्षण हो।

यहाँ पर हमें आदर्श और यथार्थ संस्कृति में भेद करना उचित होगा। समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के आगमन के पूर्व भारत में भारतीय समाज के अधिकांश वर्णन भारतशास्त्रियों (Ideologists) द्वारा किये जाते रहे हैं।

इन विद्वानों ने भारतीय समाज और हिन्दू समाज में कोई भेद नहीं किया। भारत को एक जातिवादी समाज बताया गया और जाति प्रथा को प्राचीन ऋषि मनु द्वारा लिखित मनुस्मृति के आधार पर समझाया गया। भारतीय समाज को इस प्रकार समझने वाले विदेशी लेखकों ने इस समाज को उनके यहाँ पाये जाने वाले वर्ग समाज के विपरीत पाया और जाति प्रथा को बुरा और अवांछनीय करार दिया।

प्राचीन ग्रन्थ विशेषकर स्मृतियाँ, वांछित और अवांछित व्यवहारों के प्रति आदेशात्मक भाषा में लिखी गई है जैसे यह करो यह मत करो। ये मीमांसाएँ और टीकाएँ उन कृतियों के लेखनकाल के समय के समाज का यथार्थपूर्ण वर्णन भी नहीं है। दूसरे शब्दों में उन्हें एक आदर्श संस्कृति का चित्रण मान सकते हैं। हमारे पूर्वजों के जीवनकाल के समाज के पदार्थ चित्रण के अभाव में केवल अटकले ही लगाई जा सकती है कि किस सीमा तक वह आदर्श यथार्थ में परिणत हुआ होगा। बाद के कुछ विद्वानों ने मनु को आदर्श मानकर वर्तमान के

समाज की तुलना करने का प्रयास किया। किन्तु अधिकांश ने यह गलती की जो राजनीतिक और समाज सुधारक आज भी करते आ रहे हैं कि उन्होंने प्रस्तावित आदर्श को अतीत का यथार्थ मान लिया और वर्तमान से उसके अंतर को परिवर्तन समझ लिया, जबकि नए अर्थों में वर्तमान का चित्रण सुझाए गए आदर्श से अपनी भिन्नता दर्शाता है अर्थात वह अंतर आदर्श के अस्वीकार का प्रतीक है, न कि अतीत से वर्तमान तक पहुँचने में आए हुए अंतर का। परिवर्तन को समझने के लिए हमें अतीत के यथार्थ को वर्तमान के साथ से तुलना करनी होगी तभी संस्कृति का सही अर्थों में स्पष्ट वर्णन किया जा सकता है।

1.10 सारांश

इतिहासकारों का यह मानना है कि जब आदर्शवादी साहित्य में निर्देश और निषेध (Prescriptions and Proscriptions) दिये जाते है तो उनसे यह अंदाज तो लगाया जा सकता है कि संभवतः निषिद्ध व्यवहार प्रचलित रहा होगा और उस पर रोक लगाने की चेष्टा की जा रही होगी। किन्तु जो नया करने के लिए निर्देश दिये जाते हैं उनकी पालना हुई मान हुई, या किस मात्रा में हुई इसके बारे में ठीक से नहीं कहा जा सकता। मांस मत खाओ या 'शाकाहारी बनो का निर्देश या निषेध ही लीजिये। ऐसे निषेध को देखकर यह तो कहा हो जा सकता है कि संभवतः उस समाज में मांसाहार का प्रचलन रहा होगा और उसे रोकने का आदेश दिया गया है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कितनों ने उस निर्देश का पालन किया और शाकाहारी बन गए।

यहाँ हम फिर से यह दोहरा दें कि भारतीय समाज केवल हिन्दू समाज का पर्याय नहीं है इसलिए वो हिन्दू समाज के विषय में कही जाती है वे अन्य उन सभी भारतवासियों पर लागू नहीं होती जो किसी दूसरे धर्म व संप्रदाय के सदस्य हैं। आदर्श और यथार्थ संस्कृति के अंतर को एक अन्य दृष्टि से भी समझा जा सकता है। जो लोग समाज का क्षेत्र अध्ययन करते हैं उन्होंने यह पाया है कि लोग जो सोचते हैं या जो कहते है और जो वास्तव में करते हैं इस तीनो में कभी साम्य नहीं होता। जब उत्तरदाता अपने समाज के किसी व्यवहार प्रकार पर कुछ कहते हैं तो वे बहु आदर्श या वांछनीय व्यवहार का उल्लेख करते है किन्तु अपने निरन्तर के जीवन में उसका पालन नहीं करते है।

ब्रोनिस्ला मॉलिनोस्की ने प्रशान्त महासागर के ट्रोब्रिएन्ड द्वीपों में बसे लोगों का जो अध्ययन किया उसमें से नीचे कुछ उदधृत करते हैं जो हमारे कथन को पुष्टि करेगा। मॉलिनोस्की की पुस्तक Crime and Custom in Savage

Society (1920) में गोत्र में पाए गए निकटाभिगमन निषेध (Incest taboo) पर बड़ा उपयुक्त उदाहरण दिया है। ब्रोनिस्ला मॉलिनोस्की कहते है अगर आप ट्रोब्रिएन्ड समाज में लोगों से पूछेंगे तो वे बर्हिविवाह के नियम को भंग करने से होने वाले भयंकर परिणामों का जिक्र करेंगे क्योंकि उनका विश्वास है कि गोत्र के भीतर ही यौन कर्म से फोड़े उठ सकते हैं, बीमारी लग सकती है या फिर अंततः मृत्यु हो जाती है। किन्तु बहिर्विवाह के नियम के उल्लंघन (जिसे सुर्वासावा कहा जाता है) से लोगों को बड़ा अनोखा मसालेदार सुख मिलता है। मेरे अधिकांश सूचनादाताओं बल्कि इस अपराध को गर्व से स्वीकारा और परस्त्रीगमन (Adultery) जिसे यहाँ की भाषा में केलासी कहते हैं न केवल स्वीकार किया की बात भी कही। मेरे अपने रेकार्ड में ऐसे कई सुप्रमाणित किस्से दर्ज है। भारतीय बच्चों को भी अपने बड़ों का आदर करना और अपने माता–पिता को देवतुल्य मानने का पाठ पढ़ाया जाता है। जब भारतीयों से पूछा जाए तो सभी एक सा उत्तर देते हैं। किन्तु इस सामान्यक का कितनी बार हनन होता है यह किसी से छुपा नहीं है। समाचार पत्रों में आए दिन ऐसे समाचार छपते रहते है।

1.11 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 संस्कृति के अर्थ, परिभाषा एवं उसके विभिन्न आयाम की व्यख्या कीजिए।

प्र. 2 अद्वितीय संस्कृति तथा समूह या समाज ही संस्कृति का वाहक है इसका मूल्यांकन कीजिए।

प्र. 3 जीवन्त संस्कृति, अतीन्द्रीय संस्कृति तथा संस्कृति के घटक की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र.1 संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा तथा समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समर्थताएँ सम्मिलित हैं यह किसने कहा?

(अ) शापिर (ब) टायलर (स) मैकाइवर (द) योगेन्द्र सिंह

प्र.2 संस्कृति मनुष्य की कृति है तथा एक साधन है जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है किसने कहा?

(अ) शापिर (ब) टायलर (स) मैकाइवर (द) मैलिनोव्स्की

प्र. 3 जब एक संस्कृति के प्रभाव से सभी जीवन शैली ही परिवर्तन की प्रक्रिया में हो तो उसे कहते है?

(अ) विलयन (ब) समाजीकरण (स) संस्कृति संक्रमण (द) प्रसरण

प्र. 4 संस्कृति प्रायः जानी जाती है?

(अ) अधिसावयवी (ब) सावयवी (स) धर्म (द) परम्परा

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (द)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (अ)

संदर्भ सूची

1. Apte, M. (1994). Language in sociocultural context. In: R. E. Asher (Ed.), The Encyclopedia of Language and Linguistics. Vol.4 (pp. 2000-2010). Oxford: Pergamon Press.
2. Avruch, K. (1998). Culture and Conflict Resolution. Washington DC: United States Institute of Peace Press.
3. Ferraro, G. (1998).The Cultural Dimension of International Business. 3rd Edition. New Jersey: Prentice Hall.
4. Hofstede, G. (1994). Cultures and Organizations: Software of the Mind. London: HarperCollinsBusiness.
5. Hofstede, G. (2001). Culture's Consequences. Comparing Values,

Behaviors, Institutions, and Organizations across Nations. 2nd ed. London: Sage.

6. Lustig, M. W., & Koester, J. (1999). Intercultural Competence. Interpersonal Communication across Cultures. 3rd ed. New York: Longman.

7. Matsumoto, D. (1996). Culture and Psychology. Pacific Grove, CA: Brooks/Cole.

8. Triandis, H. C. (1994). Culture and Social Behavior. New York: McGraw Hill.

इकाई 2 : धर्म के अर्थ परिभाषा धर्म एवं संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 धर्म की परिभाषा

2.2.1 अतिप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास

2.2.2 अतिप्राकृतिक शक्तियों के प्रति मनुष्य का अनुकूलन

2.2.3 कार्यों की परिभाषा

2.2.4 मुक्ति की विधि

2.3 धर्म के स्वरूप

2.3.1 अंधविश्वास

2.3.2 आत्मवाद

2.3.3 टोटमवाद

2.3.4 संस्कारवाद

2.3.5 जड़ देवतावाद

2.4 धर्म की सामाजिक भूमिका

2.4.1 व्यक्तिगत दुख की व्याख्या करता है

2.4.2 आत्म महत्व की वृद्धि करता है

2.4.3 सामाजिक संशक्ति का स्रोत

2.4.4 सामाजिक कल्याण

2.4.5 सामाजिक नियन्त्रण का अभिकरण

2.4.6 धर्म आर्थिक जीवन को भी प्रभावित एवं नियंत्रित करता है

2.4.7 धर्म की हानियाँ

2.5 धर्म एवं संस्कृति

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्न

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप धर्म का अर्थ एवं धर्म की परिभाषा की व्यख्या कर सकेंगे।
- धर्म के स्वरूप तथा उसके विभिन्न वर्णन की व्यख्या कर सकेंगे साथ ही साथ धर्म के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की व्यख्या कर सकेंगे।
- धर्म एवं संस्कृति का महत्व भारत के संदर्भ में आप इसकी व्यख्या कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

धर्म अंग्रेजी शब्द रेलिजन लैटिन शब्द लिजोर से बना है जिसका अर्थ है आपस में बाधना या एक सूत्र में पिरोना । धर्म को समाजशास्त्रीय उद्देश्यों से

परिभाषित करना अत्यंत कठिन है, क्योंकि इसके साथ अनेकानेक विश्वास एवं कर्मकांड जुड़े हुए हैं। यही नहीं धर्म की आदर्शात्मक महत्ता भी है जो इसकी एक वस्तुपरक परिभाषा में व्यवधान उत्पन्न करती है। धर्म एक सामाजिक संस्था है जिसका समस्त तानाबाना अधिदैविक या उत्पाकृतिक शक्ति अथवा शक्तियों तथा उनका मानव प्राणी के साथ सम्बन्ध के विचार के आधार पर चुना हुआ है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में धर्म को मुख्यतः दो रूपों में परिभाषित किया गया है तात्विक दृष्टि से तथा प्रकार्यात्मक दृष्टि से। तात्विक परिभाषाएं धर्म की व्याख्या 'क्या है' के आधार पर करती है, जब कि प्रकार्यात्मक परिभाषाएं धर्म की समाज में भूमिका अर्थात् धर्म 'क्या करता है' के रूप में करती है।

उन्नीसवी शताब्दी के मानवशास्त्रियों विशेषतः टायलर द्वारा की गई धर्म की व्याख्या तात्विक दृष्टिकोण को करती है। टायलर के अनुसार, धर्म देवी–देवताओं तथा अन्य अधि–मानवीय प्राणियों जैसे पूर्वज आत्माओं के प्रति विश्वास तथा उनसे सम्बन्धित कर्मकाण्ड की एक व्यवस्था है। धर्म की इस व्याख्या में अवैयक्तिक प्रकार को अधिप्राकृतिक शक्तियों एवं सत्ताओं को सम्मिलित नहीं किया गया है। सामाजिक संस्थाओं को अन्य व्याख्याओं की भांति समाजशास्त्र में धर्म की व्याख्या भी उसके प्रकार्य (फंक्शन्स) के आधार पर की गई है जो यह (धर्म) सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में सम्पन्न करता है। दुर्खाइम ने धर्म की व्याख्या को अस्वीकारते हुए इसे प्रकार्यात्मक ढंग से परिभाषित किया है। दुर्खाइम के अनुसार धर्म वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वास तक कर्मकों की एक संगठित व्यवस्था है जो उनको एक एकल सामाजिक नैतिक समुदाय में बाधता है जो इसका अनुसरण करते हैं। दुर्खाइम द्वारा दी गई धर्म की इस व्याख्या को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि इसमें पवित्र वस्तुओं सम्बन्धी धारणा के विषय में काफी मतभेद है।

संक्षेप में किसी अलौकिक प्राणी शक्ति अथवा सत्ता पर केन्द्रित विश्वासों, मूल्यों, आस्था जो पवित्रता की धारणा पर आधारित होते हैं तथा इनसे संबंधित कर्मकाण्डों के पुंज को धर्म कहते हैं। इसके तीन प्रमुख पक्ष हैः (1) दैविक शक्ति को प्रकृति एवं चरित्र सम्बन्धी एक धारणा (2) दैविक शक्ति तथा मानव प्राणी के बीच पारस्परिक दायित्वों एवं अधिकारों के संबंध में एक निश्चित विचारधारा (3) ईश्वर की इच्छा के अनुरूप धर्मावलम्बियों का एक विशिष्ट व्यवहार प्रतिमान। सामान्य रूप में धर्म मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अज्ञेय पक्षों जैसे जीवन, मृत्यु और उसके अस्तित्व के रहस्यों को जानने तथा उनके साथ व्यवहार करने का एक तरीका है।

2.2 धर्म की परिभाषा (Definition of Religion)

धर्म की कोई एक ऐसी परिभाषा देना कठिन है जो प्रत्येक को संतुष्ट कर सके। मुख्य कठिनाई यह है कि अनेक व्यक्ति धर्म को केवल अपने धर्म के संदर्भ में परिभाषित करते हैं तथा शेष सभी प्रकारों के धर्म इसे धर्मविहीन अंधविश्वास अथवा धर्म–विरोधी कहते हैं। लेखकों ने इसको विभिन्न रूप से परिभाषित किया है। कुछ प्रमख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

आगबर्न के अनुसार, धर्म अतिमानवीय शक्तियों के प्रति मनोवृत्ति है।

फ्लैडरट के अनुसार, धर्म संसार को शासित करने वाली शक्ति के साथ मानवीय जीवन का सम्बन्ध है जो उसके साथ मिलकर एक होना चाहता है।

सर जेम्स फेजर के अनुसार, धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखलाती और नियंत्रित करती है।

मैकाइवर के अनुसार, धर्म जैसा कि हम समझते आए हैं, से केवल मानव के बीच का सम्बन्ध ही नहीं एक उच्चतर शक्ति के प्रति मानव का सम्बन्ध भी सूचित होता है।

क्रिस्टोफर डासन के अनुसार, जब कभी और जहाँ कहीं मानव को ऐसी बाह्य शक्तियों पर आश्रित रहना पड़ता है जो उसकी अपनी शक्तियों से अधिक रहस्यपूर्ण व ऊँची हो तो धर्म की उत्पत्ति होती है और ऐसी शक्तियों के सामने मानव एक प्रकार के भय एवं तुच्छता की भावना से भर जाता है जिस भावना को धार्मिक भावना कहा जाता है। यह भावना उपासना और प्रार्थना की जड़ होती है।

डब्ल्यू० राबर्टसन के अनुसार, धर्म अनजान शक्तियों का अस्पष्ट भय नहीं है, न ही यह भय की उपज है अपितु किसी समुदाय के सभी सदस्यों के साथ उस समुदाय का हित चाहने वाली ऐसी शक्ति के साथ सम्बन्ध है जो उसके कानून एवं आचार व्यवस्था की रक्षा करती है।

दुर्खाइम के अनुसार, धर्म वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वास तक कर्मकों की एक संगठित व्यवस्था है जो उनको एक एकल सामाजिक नैतिक समुदाय में बाधता है जो इसका अनुसरण करते हैं।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अंतर्गत किसी समूह में अलौकिक से सम्बन्धित उद्देश्यपूर्ण विश्वास तथा इन विश्वासों से संबंधित बाह्य व्यवहार भौतिक वस्तुएँ और प्रतीक सम्मिलित होते हैं।

सपीर के अनुसार, धर्म दैनिक जीवन की परेशानियों एवं उसके खतरों से परे आध्यात्मिक शांति के मार्ग की खोज करने में मनुष्य का सतत् प्रयास है।

अर्नाल्ड ग्रीन के अनुसार, धर्म ऐसे विश्वासों की प्रतीकात्मक क्रियाओं एवं वस्तुओं की प्रणाली है जो ज्ञान की अपेक्षा विश्वास द्वारा शासित होती है और जो मनुष्य को अनदेखी एवं नियंत्रण–क्षेत्र से दूर अतिप्राकृतिक शक्ति के साथ सम्बद्ध कर देती है।

एच० एम० जानसन के अनुसार, धर्म अतिप्राकृतिक प्राणियों, शक्तियों, स्थानों तथा अन्य वस्तुओं से संबंधित विश्वासों एवं रीतियों की एक सुसंयत प्रणाली है।

मैलीनोव्स्की के अनुसार, धर्म क्रिया का एक तरीका है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ–साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।

टायलर के अनुसार, धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है।

इस प्रकार विभिन्न लेखकों ने धर्म की परिभाषा अपने–अपने दृष्टिकोण से दी है। वस्तुतः धर्म की अभिव्यक्ति इतने अधिक रूपों में होती है कि किसी सर्वमान्य परिभाषा पर सहमत होना कठिन है। कुछ लेखकों का विचार है कि धर्म अति–प्राकृतिक अथवा रहस्यमयी शक्तियों में विश्वास है जिसकी अभिव्यक्ति विभिन्न क्रियाओं में होती है। कुछेक के विचारानुसार धर्म आत्मा की अनश्वरता में विश्वास है। जबकि धर्म को ईश्वर अथवा किसी अतिप्राकृतिक शक्ति में विश्वास के रूप या अर्थ में परिभाषित करना सम्भव है, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'ईश्वरविहीन धर्म भी हो सकता है, यथा बौद्ध धर्म। बौद्ध धर्म आत्मा की अनश्वरता एवं इस जीवन के बाद अन्य जीवन में विश्वास का खंडन करता है। प्राचीन हिब्रू लोगों में भी अनश्वर आत्मा की कोई निश्चित अवधारणा वर्तमान न थी वे मरणोपरांत पुरस्कारों एवं दंडों में विश्वास नहीं रखते थे।

अन्य लेखक धर्म को पूर्णतः लौकिक एवं भौतिक समझते है जिसका उद्देश्य कुछ व्यावहारिक लक्ष्यों की प्राप्ति करना है। रूथ बेनेडिक्ट (Ruth Benedict) का कथन है, कि धर्म का आदर्शात्मक लक्ष्यों के अनुसरण के साथ

तादात्म्य करना उचित नहीं है। आध्यात्मिकता एवं नेकी दो ऐसे सामाजिक मूल्य हैं जिनकी खोज सामाजिक जीवन की प्रक्रियाओं में हुई है। जैसे मोती शक्ति को मूल्य प्रदान करता है, उसी प्रकार ये गुण भी धर्म के मूल्य का निर्माण करते हैं। तथापि मोती का निर्माण शुक्ति के जीवन में एक सह–उपज है यह शुक्ति के विकास की व्याख्या नहीं करता है।

समनर एवं कैलर (Sumnner and Keller) के अनुसार, धर्म आदिकाल से आज तक कभी भी नैतिकता से संबंधित नहीं रहा है यह तो संस्कारों रीतियों कर्मकांडों और अनुष्ठानों से संबंधित रहा है।

समाजशास्त्र में धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक ग्रंथों की अपेक्षा व्यापक अर्थ में किया गया है। एक अर्वाचीन समाजशास्त्रीय कृति में धर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि धर्म विश्वासों, प्रतीकों, मूल्यों एवं क्रियाओं की संस्थायीकृत प्रणालियाँ हैं जो मनुष्यों के समूहों को अपने परम जीवन के प्रश्नों का समाधान प्रदान करती है। सभी धर्मों में वर्तमान एक सामान्य विशेषता यह है कि वे जीवन की जटिलताओं एवं उसके रहस्यों की ओर मनोवृत्तियों एवं भावनात्मक अनुभूतियों के संमिश्रण का प्रतिनिधित्व करते हैं इस प्रकार धर्म में दो तत्व सम्मिलित हैं।

प्रथम मनोवृत्तियों विश्वासों प्रतीकों की प्रणालियाँ जो इस मान्यता पर आधारित हैं कि सामाजिक सम्बन्धों के कुछ रूप पवित्र तथा नैतिक हैं। एवं द्वितीय इन प्रणालियों द्वारा प्रभावित अथवा शासित क्रियाओं की संरचना।

रैडिन के अनुसार धर्म के दो भाग होते हैंः (i) शरीर क्रिया सम्बन्धी (Physiological) (ii) मनोवैज्ञानिक (Psychological) शरीरक्रियाविज्ञान–सम्बन्धी भाग स्वयं को ऐसी क्रियाओं यथा घुटने टेकना आँखें बंद करना चरण स्पर्श करना मंदिर जाना पूजापाठ करना दक्षिणा देना संस्कार करना आदि द्वारा अभिव्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिक भाग में कुछेक विश्वासों एवं परम्पराओं के प्रति सामान्योपरि भावुकता सम्मिलित है। जबकि अतिप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास सभी धर्मों में मूलभूत समझा जाता है। जिसे गोल्डन वेबर (Golden Weiber) ने धार्मिक स्पंदनशीलता (Religious thrill) कहा है।

एंडरसन एवं पार्कर के अनुसार, प्रत्येक धर्म में चार प्रमुख तत्व सम्मिलित होते हैं।

2.2.1 अतिप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास (Belief in supernatural powers)

प्रत्येक धर्म किसी अतिप्राकृतिक शक्तियों जो मनुष्य एवं उसके पर्यवेक्षणीय संसार से परे हैं उसमें विश्वास करता है ये शक्तियाँ मानवी घटनाओं एवं परिस्थितियों को प्रभावित करती है। कुछ इनको ईश्वर कुछ देवता कहते हैं तो अन्य इन शक्तियों का कोई नामकरण नहीं करते।

2.2.2 अतिप्राकृतिक शक्तियों के प्रति मनुष्य का अनुकूलन (Man's adjustment tosupernatural powers)

चूँकि मनुष्य इन शक्तियों पर आश्रित है अतः उसे स्वयं को इनके प्रति अनुकूलित करना चाहिए। परिणामस्वरूप प्रत्येक धर्म में कुछ बाह्य क्रियाओं यथा प्रार्थना उपासना कीर्तन यज्ञ एवं भक्ति के अन्य प्रकारों की व्यवस्था होती है। इन क्रियाओं को न करना पाप समझा जाता है।

2.2.3 कार्यों की परिभाषा (Acts defined as sinful)

प्रत्येक धर्म कुछ कार्यों को पाप कहता है। ऐसे कार्य ईश्वर अथवा देवताओं के साथ मनुष्य के मधुर सम्बन्धों को नष्ट करते हैं एवं उसे उनका क्रोध सहन करना पड़ता है।

2.2.4 मुक्ति की विधि (Method of salvation)

मनुष्य को किसी ऐसी विधि की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा वह अपने दोष को दूर कर ईश्वर के साथ समरसता को पुनः प्राप्त कर सके । इस प्रकार बौद्ध धर्म निर्वाण तथा हिन्दू धर्म कर्म के बंधन से छुटकारा दिलाने के रूप में मुक्ति की व्यवस्था करता है।

2.3 धर्म के स्वरूप (Forms of Religion)

धर्म मनुष्य के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण की शक्तियों के साथ उसके सम्बन्धों को नियंत्रित एवं उनकी व्याख्या करने का प्रयास करता है। इन शक्तियों को किसी अतिप्राकृतिक सत्ता के अधीन समझा जाता है। इन शक्तियों के प्रति मनुष्य के सम्बन्धों की व्याख्या ने धर्म के कुछ रूपों, यथा अंधविश्वास, आत्मवाद, टोटमबाद, जादू संस्कारवाद एवं जड़देवतावाद को जन्म दिया। धर्म की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए इन रूपों की संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक है।

2.3.1 अंधविश्वास (Superstition)

अन्धविश्वास एक दृढ़ विश्वास है कि किन्हीं कारणों के घटित हो जाने

से कोई घटना अवश्य होगी, यद्यपि ऐसे कारणों का घटना से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरणतया ऐसा विश्वास कि यदि बिल्ली रास्ता काट जाए तो यात्रा में अथवा इसके अंत में कोई कष्ट होगा; अथवा यह विश्वास कि आकाश से कोई तारा टूट जाने के कारण कोई विपदा आएगी; अथवा यह विश्वास कि शनिवार को वधू को नेहर भेजना शुभ नहीं है हिन्दू धर्म ऐसे अन्धविश्वासों से भरपूर है।

2.3.2 आत्मवाद (Animism)

आत्मवाद प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर के अन्दर किसी पराभौतिक वस्तु की अवस्थिति में विश्वास करता है। यह पराभौतिक वस्तु भौतिक शरीर की मृत्यु के उपरांत भी जीवित रहती है। मनुष्य की मृत्यु के बाद वह पराभौतिक वस्तु भौतिक सीमाओं से मुक्त हो जाती है और समय तथा स्थान की परवाह न करते हुए चक्कर काटती रहती है। इस पराभौतिक वस्तु को 'आत्मा' कहा जाता है। इस प्रकार आत्मवाद मृत व्यक्ति की आत्मा में विश्वास है। यह भी ध्यान रहे कि आत्मवाद के अनुसार, मनुष्यों की आत्मा के अतिरिक्त अन्य प्रकार की आत्माएँ भी हैं जिनमें प्रेतात्माओं से लेकर शक्तिशाली देवताओं की श्रेणी तक की सभी आत्माएँ सम्मिलित हैं। इस प्रकार आत्मवाद में एक आत्मा नहीं, अपितु अनेक हैं। ये आत्माएँ भौतिक संसार की सब घटनाओं तथा मनुष्यों के वर्तमान एवं पारलौकिक जीवन को प्रभावित या नियंत्रित करती है। इन आत्माओं में विश्वास मनुष्य को ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित करता है जिससे ये आत्माएँ प्रसन्न रहें। प्रायः विश्वास किया जाता है कि निद्रावस्था में मनुष्य के पास ऐसी आत्माएँ आती हैं कभी–कभी मनुष्य यह अनुभव करता है कि आत्मा घर के किसी कोने में बोल रही है। यदि हिन्दू लोग अपने पूर्वजों का श्राद्ध नहीं कराते तो उनकी आत्माए परलोक में सुखी नहीं रहेंगी।

2.3.3 टोटमवाद (Totemism)

टोटमवाद के अन्तर्गत कोई जनजाति स्वयं को किसी वस्तु मुख्यतया पशु अथवा पौधे से सम्बद्ध मानती है जिस वस्तु के प्रति उसमें श्रद्धाभाव होता है। वह जाति उस वस्तु के नाम को अपना लेती है और उसकी आराधना करती है। टोटम साधारणतया कोई पशु अथवा पौधा होता है जिसके नाम को गोत्र (Clan) अपना लेता है अथवा उससे अपने को सम्बद्ध समझता है । गोत्र स्वयं को उस पशु अथवा पौधे की संतान समझता है जिससे उसे वस्तु एवं गोत्र के मध्य पवित्र बंधन उत्पन्न हो जाते हैं। इरोक्विस (Iroquis) गौत्रों को कच्छप, रीछ, भेड़िया एवं बाज कहा जाता था। वे इन पशुओं की आकृति को अपने घरों के दरवाजों पर तराशा करते थे। गोत्र के लोग अपने टोटम पशु को मारना अथवा

उसका मांस खाना वर्जित समझते थे वे इसे परानुभाविक महत्व देते हैं।

मजूमदार के अनुसार टोटमवाद के तीन आधारभूत लक्षण है: (i) पशु या वनस्पति के प्रति एक विशिष्ट मनोभाव (ii) गोव–संगठन (iii) गोत्र बहिर्विवाह । जब गोत्र पशु की आराधना करता है अथवा उसे बलि भेंट करता है तो टोटमवाद को धर्म के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है, यद्यपि अब यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है कि टोटमवाद अधिकांशतया जादू अथवा अंधविश्वास के साथ संयुक्त एक सामाजिक परिघटना है।

2.3.4 संस्कारवाद (Ceremonialism)

संस्कारवाद धर्म से प्रायः संबद्ध एक सामूहिक क्रिया है। इस प्रकार आराधना करना, उपवास करना, नृत्य करना, संगीत गाना, घुटने टेकना, आदि संस्कारवाद के उदाहरण हैं। सभी धर्मों में दूसरे व्यक्तियों के साथ बहुधा सांस्कारिक सम्पर्क, जो एक प्रकार की समूह अन्तः प्रेरणा है, की व्यवस्था होती है। इस अर्थ में सांस्कारिक क्रिया को धर्म का बाह्य रूप कहा जा सकता है। विश्वास के समान ही इसके साथ भी पवित्रता का गुण सम्बद्ध हो जाता है। कुछ लेखक धार्मिक मनोवृत्तियों को बनाए रखने में धार्मिक विश्वास की अपेक्षा संस्कार को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। संस्कार व्यक्ति को पवित्र शक्ति का स्मरण कराने तथा उसमें उसके विश्वास को पुनर्जीवित एवं दृढ करने में सहायता देता है। यहूदी धर्म की जीविता का कारण संस्कारवाद पर इसका बल है। यही बात हिन्दू धर्म के बारे में सत्य है जन्म, विवाह एवं मृत्यु के समय हिन्दू परिवार में अनेक संस्कार किए जाते हैं। गिरजाघर की धार्मिक सभा में अनेक संस्कारों का पालन किया जाता है। इशारा मिलने पर व्यक्ति उठता है, नतमस्तक होता है, घुटने टेकता है, आगे बढ़ता है और अन्य क्रियाएँ करता है।

अनेक संस्कार कभी–कभी अनावश्यक रूप से जटिल मालूम होते हैं, परन्तु इनमें से कुछ संस्कारों का आविष्कार आदिम लोगों द्वारा किसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर किया गया होगा जो उद्देश्य वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि के कारण अब लुप्त हो गए हैं। संस्कारों के पीछे अवश्य ही कुछ तर्क होता है यदि और कोई तर्क नहीं होता तो भावनात्मक संतुष्टि का तर्क हो सकता है। सामाजिक एकता के लिए भावनात्मक अनुभूतियों की संतुष्टि आवश्यक है तथा यदि कोई संस्कार इस उद्देश्य की पूर्ति करता है तो यह उसके पालनार्थ यथेष्ट आधार है।

विश्वास एवं संस्कार के अन्तर को भी समझ लेना उचित होगा। विश्वास पवित्र वस्तुओं के प्रति एक मनोवृत्ति है। यह साक्ष्य की अपेक्षा श्रद्धा पर आधारित होता है यह धर्म का संज्ञात्मक स्वरूप है इस प्रकार गाय एक पवित्र

वस्तु है यह मनोवृत्ति श्रद्धा पर आधारित है। पवित्र गाय को अन्य गायों से विभेदित करने वाला कोई तत्व नहीं है सिवाय उन लोगों के विश्वास या श्रद्धा के जो इसे पवित्र मानते हैं। संस्कार जैसा हमने पूर्व देखा है यह एक धार्मिक किया है यह पवित्र वस्तुओं के प्रति एक व्यवहार है व्यवहार की पवित्रता पवित्र वस्तुओं के प्रति अपनाई गई मनोवृत्ति से उत्पन्न होती है।

2.3.5 जड़ देवतावाद (Fetishism)

यह सम्भवतः धर्म का सर्वाधिक प्रारम्भिक रूप है। यह भौतिक वस्तुओं की उनकी रहस्यमयी शक्ति के कारण पूजा है। शब्द Fetishes पुर्तगाली अन्वेषकों द्वारा दिया गया जिन्होंने इसका प्रयोग पश्चिमी अफ्रीका के नीग्रो को लकड़ी की मूर्तियों के लिए किया। परन्तु आवश्यक नहीं कि वे कृत्रिम वस्तुएँ हों। कोई पत्ता अथवा असामान्य आकृति का पत्थर भी पूजा की वस्तु बन सकता है ठीक उसी प्रकार जैसे कोई तराशी हुई आकृति। फैटिश का सार यह है कि इसके साथ किसी अलौकिक सत्ता का संबंध समझा जाता है जिसमें अच्छा अथवा बुरा करने की शक्ति है। इस शक्ति को आदिम लोग माना (डंदं) कहते थे। माना शारीरिक शक्ति नहीं है, यद्यपि यह एक अलौकिक शक्ति है। इस शक्ति का प्रभाव अच्छा और बुरा, दोनों प्रकार का होता है। यदि इसका प्रभाव अच्छा है तो लोग इसकी आराधना करते थे, परन्तु यदि इसका प्रभाव बुरा है तो इसे अपमानित किया जाता था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आदिम काल में यह समझा जाता था कि संसार में आत्माओं एवं भूत–प्रेतों का निवास है जो लाभदायक अथवा हानिकारक प्रकृति के हैं। इन भूत–प्रेतों को शांत रखने के लिए विभिन्न प्रकार की विधियाँ अपनाई गईं, जिन्होंने आत्मवाद, टोटमवाद, संस्कारवाद आदि को जन्म दिया। धर्म प्रायः सभी समाजों में विद्यमान है परन्तु धार्मिक विश्वास एवं क्रिया के रूप अनन्त एवं विभिन्न हैं। समाज में इस रूप का निर्धारण अनेक जटिल तत्वों द्वारा होता है। विभिन्न समाज धर्म के विभिन्न तत्वों पर बल देते हैं। कुछ संस्कारवाद को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार हिन्दू समाज में संस्कारवाद का अत्यधिक महत्व है। जन्म–विवाह एवं मृत्यु के अवसरों पर मंत्रों का उच्चारण किया जाता है यद्यपि उनका अर्थ ज्ञात नहीं होता।

दूसरे धर्मों में सादी उपासना–विधि होती है उनमें संस्कारों पर बल नहीं दिया जाता और न कोई अंधविश्वास होता है आराधक एवं दैवी शक्ति के मध्य कोई व्यावसायिक मध्यस्य भी नहीं होता है।

कुछ समाजों में धर्म एवं अन्य संस्थाओं के बीच सम्बन्ध अन्य समाजों की अपेक्षा अधिक निकटीय होता है। इस प्रकार अमेरिकन समाज की अपेक्षा चीनी समाज में यह सम्बन्ध अधिक निकटीय है। इसके अतिरिक्त जीवन के उन क्षेत्रों के चयन में भी पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है जो धर्म के क्षेत्राधिकार में आते हैं अथवा धर्म–निरपेक्ष रहेंगे। विवाह हिन्दुओं की भाँति धार्मिक संस्कार समझा जा सकता है अथवा पाश्चात्य लोगों की भाँति धर्म–निरपेक्ष कार्य धर्मो की अपने केन्द्रीय विषय–वस्तु होती है जिसका निर्धारण लोगों के जीवन– हितों के आधार पर किया जाता है। पाश्चात्य धर्मों की केन्द्रीय विषय–वस्तु कृषिक अर्थ–व्यवस्था से औद्योगिक अर्थ–व्यवस्था में परिवर्तन के कारण एवं परिणामस्वरूप जीवन के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तनों के कारण बदल गई है।

2.4 धर्म की सामाजिक भूमिका (The Social Role of Religion)

यद्यपि धर्म एक नितान्त वैयक्तिक वस्तु है तथापि इसका सामाजिक स्वरूप एवं सामाजिक भूमिका है। यह समाज में शक्तिशाली अभिकरण रहा है एवं इसने अनेक महत्वपूर्ण कार्यों की पूर्ति की है। सैल्बी (Selbie) का कथन है कि पवित्र समाज अथवा चर्च ईश्वर बन जाता है अथवा ईश्वर का स्थान ले लेता है अपितु वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य यह अनुभव करता है कि वह अपने ईश्वर को समुदाय के सदस्य रूप में दूसरों के साथ मिलकर प्राप्त कर सकता है वह समुदाय उस उद्देश्य की पूर्ति हेतु निर्मित होता है जिसके लिए ईश्वर की अवस्थिति है। अर्नाल्ड डब्लू ग्रीन ने धर्म के तीन सार्वभौमिक कार्य बताये है:

2.4.1 व्यक्तिगत दुख की व्याख्या करता है (Euplains individual sufferings)

मनुष्य केवल ज्ञान के आधार पर ही जीवित नहीं रहता वह एक भावुक प्राणी भी है। धर्म निराशाओं एवं दुखों के समय मनुष्य की भावनाओं को सान्त्वना एवं उसके व्यक्तित्व के समाकलन में योगदान देता है। संसार में मनुष्य को उपलब्धियों एवं आशाओं के मध्य भी निराशाओं का सामना करना पड़ता है। जिन वस्तुओं को प्राप्त करने का वह प्रयास करता है वे उसे नहीं मिल पातीं जब मानवी आशाओं का तुषारापात हो जाता है जब सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं तब मनुष्य को स्वाभाविकतया सान्त्वना एवं हानिपूर्ति हेतु कोई वस्तु चाहिए जिस धैर्य एवं सम्भव से धार्मिक व्यक्ति दुर्भाग्य एवं दुखों को सहन करते हैं वह धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं की शक्ति की प्रमुख अभिव्यक्ति है। जब पुत्र की मृत्यु हो जाती है तो मनुष्य सहानुभूति के सांस्कारिक विनिमय में अपने दुख को

भूल जाने का प्रयास करता है। वह ईश्वर पर श्रद्धा रखता है एवं उसके मन में यह विश्वास उत्पन्न होता है कि कोई अदृश्य व्यक्ति रहस्यमय ढंगों से कार्य करती है जो उसकी हानि को भी अर्थपूर्ण बना देती है। ईश्वर में विश्वास उसकी हानिपूर्ति करता है जीवन में उसकी रुचि को बनाए रखता है एवं इसे सहनीय बनाता है। समाज एक निश्चित सीमा से परे बौद्धिकता से शासित नहीं हो सकता। इस प्रकार धर्म शोक एवं भय से मुक्ति दिलाता है यह व्यक्ति को किसी संकट को मध्यकालीन एवं गौण समझने के योग्य बनाता है। यह व्यक्ति को निराशाओं के सहन करने एवं उसके व्यक्तित्व को समाकलित करने में सहायता करता है।

2.4.2 आत्म महत्व की वृद्धि करता है (Enhances self&importance)

धर्म मनुष्य को उसके अनन्त विस्तार पर ले जाता है। मनुष्य स्वयं को अनन्त के साथ संयुक्त करता है एवं गौरवान्वित महसूस करता है। अनन्त के साथ संयुक्तीकरण द्वारा आत्म गौरवशाली एवं विजयी बनता है। धार्मिक व्यक्ति की आत्मा संपूर्ण पृथ्वी के साम्राज्य से अधिक मूल्यवान् मनुष्य स्वयं को ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति समझता है जिसके साथ उसका मिलन होगा एवं इस प्रकार उसकी आत्मा महान् एवं दिव्य बन जाती है। समाज को भी धर्म द्वारा इस प्रकार प्रदत्त आत्मचारी से लाभ होता है। धर्म मनुष्य को दूसरे जीवन में सांसारिक असफलताओं की हानिपूर्ति के रूप में पुरस्कार का विश्वास दिलाता है। ऐसा विश्वास अधिकांश निराशा को दूर कर देता है एवं मनुष्यों को समाज में अपनी भूमिका उचित रूप में निभाते रहने हेतु प्रोत्साहन मिलता है।

2.4.3 सामाजिक संशक्ति का स्रोत (A source of social cohesion)

धर्म सामाजिक संशक्ति का परम स्रोत है। समाज की प्राथमिक आवश्यकता सामाजिक मूल्यों की सामान्य अधिकृति है जिसके द्वारा समाज जीवित रहता है। इन सामाजिक मूल्यों को वैज्ञानिक ढंग पर प्रमाणित नहीं किया जा सकता इनका उद्‌गम धार्मिक विश्वास से होता है। धर्म इन मूल्यों का आधार है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी इन मूल्यों को निर्मित नहीं कर सकते। वस्तुतः ये मूल्य तभी प्रभावी होते हैं यदि इनकी व्याख्या न की जाए तो बच्चों को माता–पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए उन्हें असत्य नहीं बोलना चाहिए अथवा धोखा नहीं देना चाहिए स्त्रियाँ अपने पति के प्रति श्रद्धावान हो व्यक्ति ईमानदार एवं नेक हों आदि कुछ ऐसे सामाजिक मूल्य हैं जो सामाजिक संशक्ति को बनाए रखते हैं। धर्म मनुष्य को असामाजिक कार्यों का परित्याग करने का

आह्वान करता है और उसे अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को सीमित करने का उपदेश देता है। प्रेम एवं सेवा धर्म की दो महान् शिक्षाएँ हैं। सभी धर्मों ने इनकी शिक्षा दी है। धर्म ने सदा समाज में सहभावना को जन्म दिया है। ब्लैकमार एवं गिलिन (Blackmar and Gillin) ने समाजीकरण की प्रक्रिया में एवं समाज में नियंत्रण के साधन रूप में धर्म के मूल्य पर बल देते हुए इसका शक्तिपूर्ण समर्थन किया है धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कदाचित् अनुशासनात्मक था। धर्म ने ही पाशविक अराजकता को दूर कर आज्ञापालन एवं भक्ति का पाठ पढ़ाया इसके अतिरिक्त, धर्म पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं के रूप को प्रभावित करता है। अनेक अवसरों, यथा जन्म, विवाह, मृत्यु, शिकार, पशुपालन पर धार्मिक संस्कार किए जाते हैं जो परिवार, नातेदारी, हितों एवंराजनीतिक संस्थाओं से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध होते हैं। धर्म सभ्यता के जीवन में केन्द्रीय तत्व रहा है। यह एक प्रकार की आध्यात्मिक व्याकुलता ही होती है जो सभ्यता का निर्माण करती है और जीवन को ऐसा रूप प्रदान करने का प्रयास करती है जो जिज्ञासा की संतुष्टि कर सके ।

2.4.4 सामाजिक कल्याण (Social welfare)

धर्म ने मनुष्य की अन्य सेवाएँ भी की हैं, जिनमें समनर एवं कैलर ने कार्य की व्यवस्था, पूँजी के संचय, विलासी वर्ग के जन्म, कला एवं संस्कृति के प्रति उत्साहशील पुरोहित वर्ग की उत्पत्ति को सम्मिलित किया है। पुरोहित वर्ग ने औषधि की आधारशिला रखी। पुरोहितों ने विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के कार्यों की भी पूर्ति की जादू ने पर्यवेक्षण एवं प्रयोगीकरण को आधार प्रदान किया जिससे विज्ञान का विकास हुआ। धर्म ने शिक्षा के प्रसार द्वारा मानवता की सेवा की है। धार्मिक ग्रन्थ महान् साहित्यिक कृतियाँ एवं ज्ञान के भंडार हैं। इसने परोपकारिता एवं संयम पर बल दिया है। इसने लोगों में दान की भावना को उत्पन्न किया जो अनेक परोपकारी संस्थाएँ, यथा अस्पताल, विश्रामगृह, मन्दिर आदि खोले जिनसे निर्धनों एवं जरूरतमन्द लोगों को सहायता मिली ।

2.4.5 सामाजिक नियन्त्रण का अभिकरण (Agency of social control)

धर्म किसी न किसी रूप में अच्छे अथवा बुरे व्यवहार के परिणामों पर बल देता है। पुरस्कार अथवा दण्ड अच्छे अथवा बुरे कार्यों का परिणाम होता है। धर्म लोकरीतियों एवं प्रथाओं का उनके पीछे अतिप्राकृतिक शक्ति की संपुष्टियों की ओर ध्यान दिला कर समर्थन करते हैं वे कुछ कार्यों को न केवल समाज अपितु ईश्वर के प्रति अपराध घोषित करते हैं। अवज्ञा का परिणाम आध्यात्मिक

शक्तियों द्वारा निन्दा होगा अपने सकारात्मक रूप में धर्म जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता है। यह कुछेक आदर्शों एवं मूल्यों में विश्वास रखता है। धार्मिक व्यक्ति इन आदर्शों एवं मूल्यों को अपने जीवन में स्थान देता है। धर्म हमारे युवकों को नैतिक, अनुशासित एवं समाज के समाजीकृत नागरिक बनने में सहायता दे सकता है। जानसन (श्रवीदेवद) का कथन है कि धर्म कभी भी केवल मात्र एक एकीकरण–शक्ति नहीं है अपितु यह एकीकरण में योग देता है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित है। इस प्रकार नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों प्रकार से धर्म सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन है।

2.4.6 धर्म आर्थिक जीवन को भी प्रभावित एवं नियंत्रित करता है (Religion controls and affects economic life also)

मैक्स वैबर (Max Weber) का विचार था कि धर्म अपने आराधकों की आर्थिक व्यवस्था को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार उसके अनुसार, पूँजीवाद का जन्म प्रोटेस्टेंट राष्ट्रों, यथा इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं हालैण्ड में हुआ। यह इटली एवं स्पेन में विकसित नहीं हुआ जहाँ कैथोलिक धर्म प्रचलित है। हिन्दू धर्म भौतिक प्रगति की अपेक्षा आध्यात्मिक प्रगति पर अधिक बल देता है अतएव भारत में भौतिकवाद का विकास न हो सका।

2.4.7 धर्म की हानियाँ (Disservices of religion)

इस प्रकार धर्म मानव समाज में एक महान् संगठनकारी शक्ति है। परन्तु इसके साथ ही यह विनाशकारी भी सिद्ध हुआ है। मार्क्स ने धर्म को लोगों के लिए अफीम (Opiate of the masses) कहा है जिसने उनको हीनावस्था में रखा है। जनता को अपने भाग्य से संतुष्ट रहने की शिक्षा दी जाती है जो उन्हें भाग्यवादी बना देती है और उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। धर्म का इतिहास अधिकांशतया अत्याचारों का इतिहास है। इसके नाम पर युद्ध लड़े गए हैं। धर्म के नाम पर उन्नति को रोक दिया गया है। यह कट्टरता एवं अंधविश्वास का रूप धारण कर लेता है तथा विचार–स्वातंत्र्य को दबाता है। इसने युद्ध एवं निर्धनता, शोषण एवं भाग्यवाद, वैश्यावृत्ति एवं निठल्लेपन का समर्थन किया है एवं ऐसी क्रियाओं, यथा मानव–भक्षण, आत्म हत्या, दासता, अस्पृश्यता एवं लैंगिक संकरता का पक्ष लिया है। कदाचित् ही कोई ऐसी बुराई हो जिसका किसी न किसी समय धर्म ने समर्थन न किया हो। ब्लैकमार एवं गिलिन ने लिखा है, ''धर्म की कट्टरता एवं हठधर्मिता ने बार–बार सत्य की

खोज में बाधा पहुँचाई है एवं जिज्ञासु व्यक्तियों को तथ्यों की खोज करने से रोका है। इसने विज्ञान की प्रगति को अवरुद्ध किया, विद्वानों द्वारा स्वतन्त्र खोज में हस्तक्षेप किया तथा सामान्य लोगों की प्रजातंत्रीय आकांक्षाओं का दमन किया।'' भारत में देश का विभाजन धर्म के नाम पर हुआ एवं आज भी धर्म साम्प्रदायिकता के रूप में राष्ट्रीय अखंडता के लिए भय बना हुआ है। अयोध्या कांड ने 1947 की स्मृति को ताजा कर दिया है। मंदिर मस्जिद विवाद ने राष्ट्र को सांप्रदायिक हत्याओं के दौर में धकेल दिया है। राजनीतिक दल धार्मिकता का वोट–बैंक खड़े करने हेतु शोषण कर रहे हैं। वरिष्ठ नेताओं ने धार्मिक उग्रवाद के सम्मुख घुटने टेक दिये हैं। सच्चे धर्म का लोप हो गया है। धर्म का राजनीतिकरण एवं व्यापारीकरण कर दिया गया है। सांप्रदायिक संगठनों की उत्पत्ति हुई है जो अन्य के प्रति घृणा का उपदेश देते हैं। विचित्र बात तो यह है कि धार्मिक गुरु भी राजनीति के क्रीड़ा स्थल में प्रवेश कर गये हैं।

परन्तु विभिन्न हानियों, जो धर्म के नाम पर हुई हैं, के बावजूद युगों तक इसकी स्थिरता इसके मूल्य का प्रमाण है। यह आधारभूत मूल्यों एवं नैतिक नियमों का प्रतिपादक रहा है जो समाज को संगठन एवं व्यक्तित्व को समाकलन प्रदान करते हैं। समनर एवं कैलर ने निम्नलिखित शब्दों में धर्म पर अपने निर्णय का साररूप दिया यदि कोई धर्म के विरुद्ध आक्षेपों का निष्पक्षतापूर्वक अवलोकन करें एवं उन सभी को सर्वांगीण अथवा कुछ मात्रा में स्वीकार कर ले तथा तदुपरांत धार्मिक प्रणालियों द्वारा मानव जाति पर किए गए अत्याचारों एवं हानियों को भी स्वीकार कर ले, तब भी अन्त में उसे यह मानना पड़ेगा कि धर्म की जो कीमत दी गई है, वह इसके योग्य थी। चाहे धर्म मँहगा पड़ा है तथापि इसके अच्छे प्रभाव भी रहे हैं।

2.5 धर्म एवं संस्कृति

सबसे सामान्य शब्दावली जिसमें संस्कृति को समझाया जा सकता है वह कुछ इस प्रकार होगी किसी समाज में निहित उच्चतम मूल्यों की चेतना जिसके अनुसार वह समाज अपने जीवन को ढालना चाहता है। इससे स्पष्ट होता है कि यह संस्कृति के एक आदर्श पहलू को प्रकट करता है। अब सामुदायिक जटिलताएं (राज्य, समाज, कला, विज्ञान) जो उच्चतम मूल्य उत्पन्न करने के प्रयत्नों के स्थायी परिणाम हैं उन्हें वस्तुनिष्ठ मानसिक पहलू माना जा सकता है और इन मूल्यों की प्रेरणा से उत्पन्न व्यक्तिगत गुणों और प्रवृतियों को व्यक्तिनिष्ठ पहलू कहा जा सकता है। भौतिक वस्तुएं जिन पर ये मूल्य साकार होते हैं। मुख्य रूप से देखा जाय तो हम कह सकते हैं संस्कृति किसी एक समाज में

पायी जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ–साथ, उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त है। यह परिभाषा सुकरात के तर्कों के सामने भले न ठहर सके किंतु इसने हमें एक व्यापक सिद्धांत दिया है जिसमें उन सभी अभिप्रायों का अंश है जिनमें संस्कृति शब्द का उपयोग किया जाता है। इस विचार को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम दो सहायक अवधारणाओं धर्म और सभ्यता से उसका अंतर बताने का प्रयत्न करेंगे। धर्म अपने विस्तृत अर्थों में संस्कृति के समान है और उससे बाहर भी है तथा संकुचित अर्थों में उसका महत्वपूर्ण अंग बनता है। जहां धर्म आंतरिक अनुभूतियों के महत्व को प्रकट करता है जिससे जीवन के अर्थ और उद्देश्य का ज्ञान हो, वहीं संस्कृति की मूल आत्मा है, किंतु जहां धर्म का प्रयोग बाह्य रूप में होता है, जिसमें आंतरिक अनुभूतियां प्रतिबिंबित होती हैं, वहीं संस्कृति का एक अंश मात्र रह जाता है। धर्म उच्चतम सत्य की आंतरिक उपलब्धि के रूप में कभी संस्कृति का विरोधी नहीं बन सकता, किंतु जब वास्तविक धर्म का ह्रास होता है और वह सारहीन बन जाता है तब अक्सर संस्कृति से उसका टकराव होता है।

संस्कृति के लिए दूसरे शब्द की तरह कभी कभी सभ्यता का उपयोग किया जाता है किंतु सामान्यतया संस्कृति के ऊंचे स्वरूप के अर्थों में यथार्थ में सभ्यता मनुष्यों के सांस्कृतिक विकास की वह स्थिति है जिसमें नगर कहे जाने वाले जनसंख्या के क्षेत्रों में वे रहना प्रारंभ कर देते हैं तथा उच्च श्रेणी के भौतिक जीवन या उच्च जीवन स्तर के प्रतीक बन जाते हैं। किंतु उच्च स्तर के भौतिक जीवन में संस्कृति का अंश तभी आता है जबकि वह उसमें संश्लिष्ट हो या उच्च नैतिक मूल्यों को प्राप्त करने का कोई माध्यम बने। जब ऐसा जीवन नैतिक मूल्यों में से किसी एक के प्रतिकूल होता है या ऐसे किसी नैतिक मूल्य से दूर रहता है तब वह सांस्कृतिक विकास में अवरोध बन जाता है। इस तरह सभ्यता हमेशा संस्कृति की मित्र नहीं होती बल्कि कभी–कभी शत्रु बन जाती है। इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि पुरानी सड़ी सभ्यता को उखाड़ फेंकना पड़ा जिससे कि संस्कृति का नये रूप में उदय हो सके ।

संस्कृति मनुष्यों के समुदाय में रहती है जिसे कि समाज कहा जाता है। ऐसे जिस समाज में राजनैतिक और सांस्कृतिक एकता पायी जाती है या वह समाज ऐसी एकता का इच्छुक होता है तो उसे राष्ट्र माना जाता है।

राजनैतिक धारणा के रूप में राष्ट्रीयता एकदम नयी बात नहीं है किंतु

आधुनिक योरोप में उसे एक नया महत्व प्राप्त हुआ है। पूर्व में धर्म, जाति और संस्कृति के साथ साथ राज्य को एक शक्ति माना जाता था, जो लोगों को एक दूसरे के निकट लाने और एक सूत्र में बांधकर रखने का कार्य करता था, किंतु जब योरोप में लोगों के मस्तिष्क से धर्म का प्रभाव घटा तथा चर्चों में लोगों को एकता में रखने की क्षमता नहीं रह गयी जैसाकि पूर्व में था तब राज्य एकता और राष्ट्रीयता का वास्तविक माध्यम हो गया अर्थात् एक ही राज्य का नागरिक होना एकता का सबसे शक्तिशाली सूत्र बन गया। राष्ट्र का साधारण अर्थ एक समुदाय के लोगों का एक ही राज्य में समान राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत रहना है। यदि विभिन्न समुदायों के लोग एक ही राज्य में किसी ऐतिहासिक घटना के कारण या विवशता में रहते हैं तो उसे राष्ट्र की संज्ञा देना न्याय संगत नहीं होगा। यथार्थ में राष्ट्रीयता के आधुनिक सिद्धांत का आधार किसी रूप में लोगों के द्वारा एक विशेष राजनैतिक व्यवस्था स्वीकार किया जाना है। इस तरह एक ही राज्य में एक ही राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत स्वेच्छा से रहने या रहने का प्रयत्न करने को, एक राष्ट्र की परिभाषा मानना होगा। इस परिभाषा से राष्ट्रीयता की दो आवश्यक शर्तें पूरी होती हैं। अन्य दूसरे लक्षण जो हम वर्तमान राष्ट्रों में देखते हैं, वे राष्ट्र निर्माण का मार्ग प्रशस्त करने वाली पूर्व दशाएं हैं।

2.6 सारांश

शक्तिशाली के हाथों में धर्म एक बहुत शक्तिशाली उपकरण है और इसका उपयोग सांप्रदायिक संबंधों को तोड़ने और बनाने के लिए किया जाता है, लेकिन भारत में आम तौर पर सांप्रदायिक तनाव के उदाहरणों की तुलना में धार्मिक शांति के अधिक वर्ष रहे हैं। धर्मों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध सहिष्णुता को बढ़ाते हैं और धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देते हैं। अंतर–धार्मिक संवाद के माध्यम से विभिन्न धर्मों और धर्म के विभिन्न संप्रदायों के बीच एकता सहयोग और बेहतर समझ के कुछ स्तर को बढ़ावा देना चाहिए।

2.7 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 धर्म का अर्थ एवं उसकी परिभाषा का अध्ययन कीजिए?

प्र. 2 टोटमवाद क्या है आदिम सामाजिक जीवन में इसके महत्व का वर्णन कीजिए?

प्र. 3 धर्म के स्वरूप का मूल्यांकन कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 धर्म लोगों के लिए अफीम है किसने कहा?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) मैक्स वेबर (स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 धर्म अतिमानवीय शक्तियों के प्रति मनोवृत्ति है किसकी परिभाषा है?

(अ) आगबर्न (ब) जेम्स फ्रेज़र (स) पार्कर (द) एंडरसन

प्र. 3 किसने धर्म को एक सामाजिक तथ्य या घटना माना है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर (स) दुर्खीम (द) पार्सन्स

प्र. 4 किसके अनुसार धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है?

(अ) मैक्समूलर (ब) टायलर (स) कोई नही (द) वेबर

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (अ)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (द)

संदर्भ सूची

1. Haralombus, M. 1980; Sociology - Themes and Perspectives, Oxford University Press.
2. Madan, T. N. 1991; Religion in India, Oxford University Press.
3. Madan, T. N. 1997; Modern Myths, Locked Minds, Oxford University Press. 4. Macionis J. J. 1997; Sociology, Prentice Hill, Inc.
4. Schaeffer, R. T. & Lamm, R. P. 1992; Sociology, McGraw Hill Inc.
5. Giddens, A. 1989; Sociology, Blackwell Publisher Ltd.

6. Gore, M. S. 1991; Secularism in India, Indian academy of social science.

7. Jain, M.S. 2000; Muslim ethos, Rawat Publication.

8. Weber, M; Sociology of Religion.

9. Chattopadyaya, D. P. 1959;Lokyat : A Study in Ancient Indian Materialism People's Publishing House.

इकाई 3 : संस्कृति एवं ज्ञान, शिक्षा : औपचारिक एवं अनौपचारिक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पीयर बूरदीए का सांस्कृतिक ज्ञान

3.3 सांस्कृतिक हानि

3.3.1 सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन

1.3.2 सांस्कृतिक पूँजी

3.3.3 हेबिटस

3.4 संस्कृति एवं शिक्षा

3.5 शिक्षा और संस्कृति के बीच संबंध

3.6 अनौपचारिक शिक्षा

3.7 औपचारिक शिक्षा

3.8 सारांश

3.9 बोध प्रश्न

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संस्कृति एवं ज्ञान तथा पीयर बूरदीए की सांस्कृतिक पूंजी, सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन एवं हेबिटस की व्यख्या कर सकेंगे।

- संस्कृति एवं शिक्षा और शिक्षा और संस्कृति के बीच संबंध की समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की व्यख्या कर सकेंगे।

- शिक्षा एवं औपचारिक शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा की व्यख्या कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

संस्कृति एवं ज्ञान (Knowledge of Culture)

सांस्कृतिक ज्ञान मूल्यों, रीति–रिवाजों, विश्वासों और प्रथाओं की सामूहिक समझ है जो एक विशेष समूह या समाज के भीतर साझा किए जाते हैं। इसमें भाषा, इतिहास और मूल्यों सहित विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, और इसे शिक्षा, अनुभव और पारस्परिक आदान–प्रदान जैसे विभिन्न माध्यमों से प्राप्त किया जा सकता है। सांस्कृतिक ज्ञान लगातार विकसित हो रहा है और बदल रहा है क्योंकि यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पारित होता है। यह वह जानकारी है जो किसी व्यक्ति द्वारा औपचारिक शिक्षा के कारण नहीं, बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी जीने, रिश्तेदारों से बात करने, परिवेश का अवलोकन करने या पारिवारिक परंपराओं का पालन करने के परिणामस्वरूप जानी जाती है। इस प्रकार का ज्ञान प्रायः अवचेतन होता है। इसका मतलब यह है कि सांस्कृतिक ज्ञान उन लोगों द्वारा पहचाना नहीं जा सकता है जो ज्ञान रखते हैं और (हो सकता है) उन लोगों द्वारा इसका मूल्यांकन नहीं किया जाता है जो निर्णय लेने के लिए वैज्ञानिक या शैक्षणिक तर्क पर अधिक भरोसा करते हैं। सांस्कृतिक ज्ञान बैक–अप करने और हमारे द्वारा किए गए निर्णयों को सूचित करने के लिए महत्वपूर्ण है। अक्सर किसी समस्या के प्रति हमारी पहली प्रतिक्रिया उस सांस्कृतिक ज्ञान पर आधारित होती है जिसका हमें एहसास नहीं होता कि हमारे पास है।

हमारे सांस्कृतिक ज्ञान के आधार पर हमारी तात्कालिक प्रतिक्रियाएँ उतनी ही अच्छी हो सकती हैं जितनी वर्षों के शोध के बाद पेशेवरों द्वारा लिए गए निर्णय हो सकते है। सांस्कृतिक ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए अद्वितीय है और हमें पहचान की भावना महसूस करने की अनुमति दे सकता है क्योंकि हम एक निश्चित तरीके से समस्याओं का जवाब देते हैं। यह समझने के लिए सांस्कृतिक ज्ञान के एक उदाहरण की जांच करना उपयोगी है कि इसे उत्पादक रूप से कैसे उपयोग किया जा सकता है वांगारी मथाई ने अपने बचपन के

दौरान सीखा कि अंजीर का पेड़ उनके समुदाय में आध्यात्मिक रूप से महत्वपूर्ण था। इस कारण से अंजीर के पेड़ को संरक्षित और सुरक्षित रखा गया था। बाद में, वांगारी मथाई को पता चला कि पेड़ भी मिट्टी को एक साथ बांधने, सतह पर पानी लाने और क्षेत्र में उपजाऊ फसलों को बढ़ने देने के लिए वैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण था। वह व्यक्तिगत और व्यावहारिक स्तर पर पेड़ की सराहना कर सकती थी।

यदि इस सांस्कृतिक समझ को महत्व दिया जाता, तो वैज्ञानिक तर्क उपलब्ध होने से पहले, शायद अंजीर के पेड़ को उखाड़ा नहीं जाता, जिससे उसकी मातृभूमि को नुकसान होता। सभी उपलब्ध ज्ञान का उपयोग करने से हम पूर्ण निर्णय लेने में सक्षम होते हैं। वांगारी मथाई की चौरिटी द ग्रीन बेल्ट मूवमेंट अब इन विचारों और व्यक्तिगत रूप से आयोजित, सांस्कृतिक ज्ञान द्वारा प्रदान किए गए दृढ़ विश्वास के आधार पर केन्या भर में वृक्षारोपण सुनिश्चित करती है। सांस्कृतिक ज्ञान में उस वातावरण को आकार देने की क्षमता है जिसमें हम रहते हैं और जब आधुनिक निर्णय लेने में अन्य ज्ञान के साथ उपयोग किया जाता है तो यह अत्यधिक सकारात्मक अंतर ला सकता है। सामुदायिक पहचान बनाने में सांस्कृतिक ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है।

3.2 पीयर बूरदीए का सांस्कृतिक ज्ञान

पीयर बूरदीए की मान्यता थी कि हमें सामाजिक वस्तुओं को नए सिरे से परिभाषित करना चाहिए। ऐसा करने के लिए हमें व्यावहारिक बुद्धिसंगतता (Applied Rationalism) को काम में लेना चाहिए। जैसा कि दुर्खीम ने कहा है समाजशास्त्रीय तथ्य समाज तैयार करके देता है, बूरदीए इसे स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार हमें ज्ञान का नए सिरे से निर्माण करना चाहिए। इस निर्माण के लिए हमें वस्तुओं के मापने (Measurement) के तरीके खोजने पड़ेंगे। यह सब कहने का उनका तात्पर्य यह है कि हमें तत्काल तैयार समाजशास्त्र को स्वीकार नहीं करना चाहिए। समाजशास्त्र तो आनुभविकता के माध्यम से बनाया जाना चाहिए। मापने की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि हमें एक साथ अध्ययन की कई विधियाँ (Methodological Polytheism) अपनानी चाहिए तभी हम सामाजिक यथार्थता को समझ सकेंगे। बूरदीए की सबसे बड़ी विशेषता वस्तुनिष्ठावाद और व्यक्तिनिष्ठावाद से ऊपर उठना है। परम्परा से समाजशास्त्र वस्तु और व्यक्ति को पृथक–पृथक् करता है। अगर हम वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं तो ये दोनों अलग–अलग हैं।

3.3 सांस्कृतिक हानि (Cultural Deprivation)

समाजशास्त्र में सांस्कृतिक हानि (Cultural Deprivation) पर एक सिद्धान्त प्रचलित है। इसमें कहा गया है कि उच्च वर्गों की संस्कृति श्रमिक वर्गों की संस्कृति से सदा ऊँची होती है। इसका मतलब यह हुआ कि निम्न संस्कृति वाले श्रमिक वर्ग के लोग ही अपनी निम्न संस्कृति के लिए उत्तरदायी है। होता यह है कि निम्न वर्ग के बच्चे ठीक तरह से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते और इसलिए उनकी संस्कृति निम्न स्तर पर ही बनी रहती है। समाजशास्त्र के बहुचर्चित सिद्धान्त के आधार पर ही बूरदीए ने फ्रांस की संस्कृति का विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में वे शिक्षा पद्धति का प्रयोग करते हैं। बूरदीए का यह सिद्धान्त जिसे वे सांस्कृतिक पूँजी सिद्धान्त (Cultural Capital Theory) कहते हैं, मार्क्सवाद से प्रभावित है।

ऐसी अवस्था में वे यह स्वीकार नहीं करते कि उच्च वर्गो की संस्कृति किसी भी अर्थ में निम्न वर्गों की संस्कृति से ऊँची होती है। बूरदीए का तर्क है कि वास्तविकता यह है कि इसमें निम्न वर्गों का कोई दोष नहीं है। यह दोष तो शिक्षा पद्धति का है। सच्चाई यह है कि शिक्षा पद्धति इस तरह से बनी हुई है कि वह उच्च वर्गो के लिए है। यह शिक्षा पद्धति तात्विक रूप से निम्न वर्गों की संस्कृति को हीन दृष्टि से देखती है। जब शिक्षा पद्धति उच्च वर्गों के लिए होती है, तब परिणामस्वरूप उच्च और मध्यम वर्ग के लोग ऊँची संस्कृति को प्राप्त कर लेते हैं।

मतलव हुआ उच्च शिक्षा से उच्च संस्कृति और उच्च संस्कृति से अधिक धन था पूँजी यही सब उनके सांस्कृतिक पूँजी में निहित है।

3.3.1 सांस्कृतिक पुर्नउत्पादन (Cultural Reproduction)

पीयर बूरदीए के अनुसार शिक्षण व्यवस्था का बहुत बड़ा कार्य यह है कि यह संस्कृति का पुनर्उत्पादन करती है। इसका यह मतलब नहीं है कि शिक्षा सम्पूर्ण समाज की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाती है। इस सिद्धान्त को दुर्खीम ने प्रतिपादित किया था व्यावहारिक रूप से यह होता है कि शिक्षा उच्च वर्गों की संस्कृति को पुनः बनाती है इस संस्कृति का पुनर्उत्पादन करती है। इन उच्च वर्गों में इतनी क्षमता या शक्ति होती है कि वे अपनी संस्कृ ति को निम्न संस्कृतियों पर थोप देते हैं और निम्न संस्कृतियाँ उच्च वर्गों की इस संस्कृति को वैधता देती हैं। विडम्बना यह है कि निम्न संस्कृतियाँ उच्च वर्ग

की संस्कृतियों को अपनी संस्कृति कहते हैं। बूरदीए ने सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन की जो व्याख्या की है वह स्वेच्छाचारी है। किसी भी संस्कृति को ऊँचा या नीचा बताने के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। यहाँ पर पहुँचकर पीयर बूरदीए एक नई अवधारणा देते है। इसे वे सांस्कृतिक पूँजी (Cultural Capital) कहते हैं। संस्कृति पूँजी इसलिए है कि यह शिक्षा पद्धति के माध्यम से ही है कि व्यक्ति अधिक धन प्राप्त कर सकता है।

3.3.2 सांस्कृतिक पूँजी (Cultural Capital)

सांस्कृतिक पूँजी सम्पूर्ण समाज में समान रूप से बंटी हुई नहीं होती। कई लोग उच्च शिक्षा को प्राप्त करके भी गरीब बने रहते हैं, लेकिन कुछ लोगों की पृष्ठभूमि ऐसी होती है कि वे इसका लाभ ले जाते हैं और इस तरह समाज में गैर–बराबरी आ जाती है। होता यह है कि कुछ लोग जो उच्च शिक्षा पाते हैं, वे पहले से ही ऐसे वातावरण में होते हैं जो उच्च शिक्षा का भरपूर लाभ ले लेते हैं। धनिक वर्ग के विद्यार्थी अच्छी शिक्षण संस्थाओं में पढ़े हुए होते हैं और इसका लाभ उन्हें उच्च शिक्षा से मिलता है। होता यह है कि जिनकी सांस्कृतिक पूँजी सशक्त होती है, वे ही शिक्षा के माध्यम से अधिक पूँजी और शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। पीयर बूरदीए ने यह स्थापित किया है कि शिक्षा, गरीबी को दूर करने के लिए नहीं होती।

शिक्षा गैर–बराबरी बढ़ाने के लिए होती है। जो उच्च वर्गों की संस्कृति है बराबर इस संस्कृति में इजाफा होता है। यह इजाफा ही सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन है। गरीब जैसे गरीब थे बने रहते हैं और उच्च वर्गों की संस्कृति का निर्माण बराबर चलता रहता है। अतः जब हम सांस्कृतिक पूँजी की चर्चा करते हैं, तब इस सम्बन्ध में बराबर शिक्षा की पुनर्उत्पादन शक्ति को समझ लेना आवश्यक होता है।

3.3.3 हेबिटस (Hebitus)

पीयर बूरदीए ने अपनी पुस्तक रीप्रोडक्शन इन एज्युकेशन (Reproduction In Education, 1977) में हेबिटस की अवधारणा को रखा है। इसे परिभाषित करते हुए वे लिखते हैंरू हेबिटस का सम्बन्ध जीवन पद्धति से है। इसके अन्तर्गत किसी विशिष्ट सामाजिक समूह के मूल्य और आकांक्षाएँ आती हैं। लोग अपने अनुभव के आधार पर अपना हेबिटस विकसित करते हैं। वे सीख जाते हैं कि उन्हें अपने अनुभव के आधार पर किन वस्तुओं की अपेक्षा करनी चाहिए, वे यह भी समझ जाते हैं कि इन अपेक्षाओं को कैसे पूरा करना चाहिए और इन्हें

प्राप्त करने की कौन सी विधियाँ हैं। प्रत्येक समूह के अपने– अपने अनुभव होते हैं और इसलिए प्रत्येक समूह के अलग–अलग हेविटस (Hebitus) होते हैं। हमारे यहाँ गुजरातियों को लीजिए, इनका अपना एक हेबिटस होता है। उद्यम उनका अपना अनुभव होता है। वे दुनिया के किसी भी भाग में जाकर व्यापार–धन्धा करेंगे। खाने–पीने के इनके अपने शौक होते हैं। वे अपनी भाषा यानी गुजराती को दुनिया के किसी भी भाग में पहुंचकर भूलना नहीं चाहेंगे। यह उनका हेबिटस है। पंजाबी भी एक कौम है इनका भी हेबिटस होता है। हेबिटस का यह तात्पर्य नहीं है कि लोग इसमें कोई परिवर्तन न करते हो यह भी बनती–बिगड़ती रहती है लेकिन बूरदीए का कहना है कि सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन में हेबिटस की भूमिका भी किसी अर्थ में कम नहीं होती है।

बूरदीए ने अपनी पुस्तक डिस्टीक्शन (Distinction, 1984) में विभिन्न अभिरुचियों का उल्लेख किया है। जैसे स्वाद, जायका, कला, फिल्म, संगीत, भोजन, आदि बुरदीए कहते है कि सांस्कृतिक व्यवहारों के आधार पर स्वाद या पसन्दगी को देखते हैं। वे स्वाद जो है, उसे सभी स्वीकार करते हैं। वैध स्वादों या अभिधियों में शास्त्रीय संगीत या फिल्में हैं। हल्की कावृत्तियों में आम लोगों की अधिक होती है। कला, साहित्य, संगीत आदि के साथ में बूरदीए संस्कृति और शिक्षा को जोड़ते हैं। यह तथ्य व्यक्ति स्वयं के चिन्तन और अभिव्यक्ति से जुड़ा हुआ है। उनकी दृष्टि में समाज विज्ञान ज्ञान का एक उद्यम है और समाजशास्त्र जैसा समाज विज्ञान बुद्धिसंगतता के माध्यम से सामाजिक यथार्थता को समझ सकता है। देखा जाए तो आज सामाजिक संस्थाएँ बर्बर हो गई हैं। वे भ्रष्ट ज्यादा हो गई हैं और इस समाज में बाजार ने सभी की नाक में नकेल डाल रखी है। स्थिति यह हो गई है कि दुनिया भर के राष्ट्र व राज्यों (National-State) की सांस फूल गई है। उनका मानना है कि हमें एक संयुक्त समाज विज्ञान (United Social Science) का निर्माण करना चाहिए जो की सेवा (Public Service) कर सके।

3.4 संस्कृति एवं शिक्षा

सांस्कृतिक शिक्षा एक विशेष संस्कृति के रीति–रिवाजों, परंपराओं, मूल्यों, विश्वासों और प्रथाओं के बारे में शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया है। सांस्कृतिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अपनी संस्कृति के साथ–साथ अन्य संस्कृतियों का ज्ञान, समझ और प्रशंसा प्राप्त करना है। संस्कृति और उनके आसपास की दुनिया की व्यापक समझ विकसित करने और विविध संस्कृतियों और दृष्टिकोणों के लिए सम्मान और प्रशंसा को बढ़ावा देने के लिए सांस्कृतिक शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण

है। यह संस्कृति को संरक्षित करने और इसे अगली पीढ़ी तक पहुंचाने में मदद करता है। यह व्यक्तियों को सांस्कृतिक बाधाओं को तोड़ने और अधिक समावेशी और समझदार समाज को बढ़ावा देने में भी मदद करता है। सांस्कृतिक शिक्षा किसी को भी लाभान्वित कर सकती है जो विभिन्न संस्कृतियों की गहरी समझ और प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है, जिसमें विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति, शिक्षक, छात्र और व्यापक समुदाय के सदस्य शामिल हैं।

सांस्कृतिक शिक्षा के उदाहरणों में सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम, सामुदायिक कार्यक्रम, कला और संगीत, औपचारिक कक्षा निर्देश, भाषा कक्षाएं आदि शामिल हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने से विभिन्न संस्कृतियों के रीति–रिवाजों, परंपराओं और विश्वासों के बारे में सीख सकते हैं।

3.5 शिक्षा और संस्कृति के बीच संबंध

शिक्षा और संस्कृति के बीच संबंध का पता पृथ्वी पर मानव जीवन की उत्पत्ति से लगाया जा सकता है। संस्कृति और शिक्षा के बीच बहुत घनिष्ठ संबंध है। दोनों इतने स्वतंत्र हैं कि दोनों में से कोई भी दूसरे की सहायता के बिना क्रियान्वित नहीं हो सकता है। संस्कृति और शिक्षा दोनों एक–दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं कि दोनों का एक सामान्य लक्ष्य है अर्थात किसी व्यक्ति के व्यवहार में सुधार या संशोधन संस्कृति और शिक्षा दोनों का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को जीने लायक बनाना है। औपचारिक और अनौपचारिक एजेंसियों के माध्यम से शिक्षा उन सभी मूल्यों, रीति–रिवाजों, परंपरा, विश्वास, उपयोग, अभ्यास ज्ञान और अनुभवों, उपलब्धियों और गैर–भौतिकवादी क्षेत्र के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जो वर्तमान युग में सार्थक हैं। शिक्षा की सभी एजेंसियां संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

शिक्षा की भूमिका के कारण ही हजारों साल पुरानी संस्कृति को काफी हद तक वर्तमान युग में स्थानांतरित किया जा सका है। शिक्षा न केवल पुरानी संस्कृति को उसी रूप में संरक्षित और आने वाली पीढ़ी तक पहुंचाती है बल्कि यह संस्कृति में नए अनुभवों, ज्ञान, आविष्कारों और खोजों को जोड़कर संस्कृति को समृद्ध या बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र और समाज द्वारा संस्कृति को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने से पहले की गई अन्य उपलब्धि संस्कृति का परिष्कार शिक्षा उन रीति–रिवाजों, परंपराओं और प्रथाओं को हटाकर सदियों पुरानी संस्कृति में भी परिष्कार लाती

है, जो या तो अपनी उपयोगिता खो चुकी हैं या वैज्ञानिक रूप से खारिज कर दी गई हैं। शिक्षा देश के भीतर ही नहीं बल्कि दुनिया के विभिन्न देशों के समाज के विभिन्न वर्गों की संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा की एक अनौपचारिक एजेंसी के रूप में मास मीडिया दुनिया के विभिन्न देशों की संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। शिक्षा गतिविधियों और कार्यक्रम विकास के माध्यम से भौतिक और अभौतिक संस्कृति के बीच मौजूद अंतर को पाटती है। शिक्षा व्यक्तियों को समाज की बदलती संस्कृति के अनुकूल बनाने में मदद करती है। शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के व्यक्तित्व का विकास करना है, इसके लिए यह सोच, व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्यों की वस्तुओं के विविध सांस्कृतिक पैटर्न को नियोजित करता है ताकि बच्चे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से अधिकतम सीमा तक विकसित हो सकें ।

3.6 अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा हमारे सामने आने वाले किसी भी प्रकार के अनौपचारिक सीखने के माहौल में होती है। जैसा कि आप जानते हैं, हम अपने परिवार की विभिन्न गतिविधियों को देखकर और परिवार के सदस्यों के साथ बातचीत करके अपने परिवार की परंपराओं और संस्कृतियों को सीखते हैं। इसी तरह, हम अपने समाज के बारे में बहुत कुछ सीखते हैं जैसे सामाजिक जीवन, संस्कृति और परंपराएं आदि सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को देखकर और साथ ही समाज के सदस्यों के साथ बातचीत करके हम विभिन्न चीजो को सिखाते है। जब हम बस या ट्रेन से यात्रा करते हैं, तो हम कई लोगों के संपर्क में आते हैं, उनसे बातचीत करते हैं और बहुत कुछ सीखते हैं जो हम पहले नहीं जानते थे। सभी किसान इस बात से परिचित हैं कि किसान विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती के बारे में अपने पूर्वजों से ज्ञान कैसे प्राप्त करते हैं।

किसान किसी भी प्रकार का औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना सभी प्रकार की फसलों की खेती करते हैं। उपरोक्त सभी चर्चाएँ अनौपचारिक शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करती हैं। अपनी चर्चा के आधार पर, हम निम्न प्रकार से अनौपचारिक बाल शिक्षा की विशेषताओं की पहचान कर सकते हैं।

- अनौपचारिक शिक्षा एक बच्चे/एक शिक्षार्थी के बीच उसके सामाजिक वातावरण के साथ अंतःक्रिया का परिणाम है।

- अनौपचारिक शिक्षा संगठित और संरचित नहीं होती है।
- अनौपचारिक शिक्षा में केवल वांछनीय शिक्षा को ही अनौपचारिक शिक्षा कहा जा सकता है।
- अनौपचारिक शिक्षा उद्देश्यपूर्ण लेकिन कई बार आकस्मिक होती है।
- अनौपचारिक शिक्षा विभिन्न प्रकार की शारीरिक और सामाजिक स्थितियों में हो सकती है; कोई नियमित या निर्धारित रूप नहीं होता है।
- अनौपचारिक शिक्षा प्रकृति में प्रयोग है। इसका अर्थ है कि शिक्षार्थी सीखने के माहौल के साथ बातचीत करके बहुत कुछ सीखता है।
- अनौपचारिक शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया है जो जन्म के समय से शुरू होती है और मनुष्य की मृत्यु तक जारी रहती है।

अनौपचारिक शिक्षा में बच्चे के सभी प्रकार के जीवन के अनुभव शामिल होते हैं जो वह विभिन्न स्थितियों, स्थानों, व्यक्तियों, वातावरण आदि से प्राप्त करता है। इसके अलावा, अनौपचारिक शिक्षा शिक्षार्थी को औपचारिक शिक्षा से लाभान्वित होने के लिए तैयार करती है। इसलिए, सीखना अनौपचारिक रूप से शुरू होता है और शिक्षा की अनौपचारिक प्रणाली को संरचित करता है।

3.7 औपचारिक शिक्षा

समाज द्वारा वांछनीय अधिगम अनुभवों के प्रसारण के लिए एक औपचारिक और संरचित अधिगम के वातावरण की आवश्यकता होती है। स्कूल और कॉलेज जैसे शैक्षिक संस्थान औपचारिक शिक्षण वातावरण या शिक्षा की व्यवस्था हैं। उन्हें शिक्षा की औपचारिक प्रणाली कहा जाता है क्योंकि वे बच्चे को शिक्षित करने के लिए एक औपचारिक प्रक्रिया लागू करते हैं। आइए समझते हैं कि औपचारिक शिक्षा का क्या अर्थ है।

प्रोफेसर कॉम्ब्स और अहमद (1973) ने परिभाषित किया कि औपचारिक शिक्षा पदानुक्रमित संरचित कालानुक्रमिक रूप से ग्रेडेड शिक्षा प्रणाली है जो विश्वविद्यालय के माध्यम से प्राथमिक विद्यालय से चल रही है और इसमें सामान्य शैक्षणिक अध्ययन के अलावा पूर्णकालिक तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार के विशेष कार्यक्रम और संस्थान शामिल हैं। औपचारिक शिक्षा की उपरोक्त परिभाषा दर्शाती है कि शिक्षा की औपचारिक

प्रणाली के माध्यम से प्रदान किए जाने वाले सीखने के अनुभव लंबवत और क्षैतिज रूप से संरचित होते हैं। शिक्षा की लंबवत प्रणाली का मतलब है कि यह प्राथमिक स्कूली शिक्षा से विश्वविद्यालय शिक्षा तक शुरू होती है और शिक्षा की क्षैतिज प्रणाली का मतलब है कि यह शिक्षा के सभी रूपों को पूरा करती है जिसमें सामान्य शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, पेशेवर और व्यावसायिक शिक्षा शामिल है। शिक्षा की औपचारिक प्रणाली के विभिन्न पहलू इस प्रकार हैं –

- शिक्षा की औपचारिक प्रणाली का एक विशेष उद्देश्य होता है। स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर और विभिन्न प्रकार की शिक्षा में भी शिक्षा के उद्देश्य अलग–अलग होते हैं। इसलिए शिक्षा की किसी भी औपचारिक प्रणाली की योजना बनाने से पहले लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं।

- शिक्षा की किसी भी औपचारिक प्रणाली को लागू करने के लिए एक विशेष समय–सारणी है। हम कह सकते हैं कि प्राथमिक शिक्षा की अवधि आठ वर्ष है, माध्यमिक शिक्षा की अवधि दो वर्ष है, वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा की अवधि दो वर्ष है और कॉलेज की शिक्षा की अवधि तीन वर्ष है। फिर, शिक्षण–अधिगम गतिविधियों की योजना बनाने और निर्धारित समय के भीतर पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए एक औपचारिक समय–सारणी होती है।

- प्रत्येक औपचारिक शिक्षा में अध्ययन के निश्चित पाठ्यक्रम होते हैं। छात्रों को निर्धारित पाठ्यक्रम के माध्यम से आवश्यक ज्ञान, दृष्टिकोण और कौशल प्राप्त होते हैं।

- छात्रों के लिए औपचारिक शिक्षा के एक विशेष स्तर में प्रवेश के लिए आवश्यक शर्तें हैं। उदाहरण के लिए, माध्यमिक कक्षा में प्रवेश लेने के लिए, प्राथमिक शिक्षा पूरी करनी चाहिए। इसी तरह, तीन वर्षीय डिग्री शिक्षा में प्रवेश लेने के लिए, वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा पूरी करनी चाहिए।

- शिक्षा की अनौपचारिक प्रणाली, शिक्षक शिक्षण–अधिगम रणनीतियों का उपयोग करता है जिसमें कक्षा शिक्षण, व्यावहारिक अनुभव, क्षेत्र–आधारित अनुभव, सह–शैक्षिक गतिविधियों में भागीदारी आदि शामिल होती हैं।

- शिक्षा की औपचारिक प्रणाली एक केंद्रीकृत निकाय के माध्यम से संचालित होती है जो एक बोर्ड या एक विश्वविद्यालय हो सकता है।

उदाहरण के लिए, स्कूल शिक्षा के संचालन के लिए विभिन्न राज्यों में राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड हैं। इसी तरह, केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) केंद्रीय स्तर पर माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए काम करता है। उच्च शिक्षा के संचालन के लिए, विश्वविद्यालय परिचालन निकायों के रूप में कार्य करते हैं। वे पाठ्यक्रम तैयार करते हैं, इसके कार्यान्वयन के लिए दिशानिर्देश विकसित करते हैं, परीक्षा आयोजित करते हैं और छात्रों को प्रमाणित करते हैं।

- प्रत्येक औपचारिक शिक्षा कुछ सीखने के परिणामों पर आधारित होती है। विशिष्ट सीखने के परिणाम प्राप्त करना शिक्षा की औपचारिक प्रणाली का लक्ष्य है। सीखने के परिणामों का मूल्यांकन शिक्षा बोर्डों या विश्वविद्यालयों द्वारा औपचारिक मूल्यांकन प्रणाली के माध्यम से किया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा की औपचारिक प्रणाली शिक्षण–अधिगम गतिविधियों के आयोजन की एक संरचित प्रक्रिया है जिसमें एक पूर्व–निर्धारित पाठ्यक्रम, इसके संचालन की उचित योजना और निर्दिष्ट समय अनुसूची पर कार्यान्वयन, छात्रों के साथ शिक्षकों की दैनिक बातचीत, इसे संचालित करने के लिए केंद्रीकृत निकाय, छात्रों के प्रदर्शन का मूल्यांकन और प्रमाणन शामिल है।

3.8 सारांश

शिक्षा का अर्थ और उद्देश्य समाज के सांस्कृतिक विचारों, मूल्यों और प्रतिमानों द्वारा निर्धारित किया जाता है। जैसी समाज की संस्कृति में होती है, वैसा ही उसका शिक्षा का उद्देश्य होगा। पाठ्यक्रम समाज की संस्कृति के अनुसार तैयार किया जाता है। शिक्षा की प्रणाली पाठ्यक्रम के माध्यम से समाज की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को महसूस करने की कोशिश करती है जो सभी शैक्षिक गतिविधियों और कार्यक्रमों की स्थिति बनाती है। ज्ञान का व्यर्थ विस्फोट होता है और इसलिए समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए पाठ्यक्रम का उन्नयन किया जाता है।

संस्कृति और शिक्षण के तरीके घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। समाज के बदलते सांस्कृतिक पैटर्न शिक्षण के तरीकों पर अपना प्रभाव डालते हैं। पहले शिक्षण शिक्षक–केंद्रित था जहाँ शिक्षक बच्चे को ज्ञान देता था। अब यह एक

छात्र केंद्र बन गया है। शिक्षक केवल प्रशिक्षक को मानता है। सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ शिक्षण के तरीकों और तकनीकों को शक्तिशाली तरीके से उत्पन्न करती हैं। शिक्षण को अधिक यथार्थवादी बनाने के लिए शिक्षण के विभिन्न तरीके शिक्षण के क्षेत्र में नए चलन हैं।

सांस्कृतिक मूल्य अनुशासन की अवधारणाओं को प्रभावित करते हैं। सोच और रहन–सहन के वर्तमान सांस्कृतिक पैटर्न हमारे अनुशासन की अवधारणा से सीधे जुड़े हुए हैं जहां दुनिया भर में लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक व्यक्तिगत शिक्षक उस समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और विचारों से आत्मसात होता है जिसका वह एक अभिन्न सदस्य होता है। केवल ऐसा शिक्षक ही अपने मिशन को सफलतापूर्वक प्राप्त करता है। वे बच्चों में उच्च विचारों और नैतिक मूल्यों का संचार करते हैं। विद्यालय समाज का मुख्य लघुरूप है। एक स्कूल की कुल गतिविधियों और कार्यक्रमों को समाज के सांस्कृतिक विचारों और मूल्यों के अनुसार आयोजित किया जाता है जो स्कूल की स्थापना और आयोजन करता है। इसलिए, स्कूल समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों को बढ़ावा देने, ढालने, सुधारने और विकसित करने का केंद्र है।

3.9 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 संस्कृति एवं ज्ञान तथा पीयर बूरदीए की सांस्कृतिक पूंजी, सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन एवं हेबिटस की व्यख्या कीजिए?

प्र. 2 संस्कृति एवं शिक्षा और शिक्षा और संस्कृति के बीच संबंध की समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य का वर्णन कीजिए?

प्र. 3 औपचारिक शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा का मूल्यांकन कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 सांस्कृतिक पूंजी की अवधारणा किसने दी है?

(अ) पीयर बूरदीए (ब) मैक्स वेबर (स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन की अवधारणा किसने दी है?

(अ) पीयर बूरदीए (ब) जेम्स फ्रेज़र (स) पार्कर (द) एंडरसन

प्र. 3 परिवार द्वारा सिखाई गयी शिक्षा है?

(अ) औपचारिक (ब) अनौपचारिक (स) कोई नही (द) दोनों

प्र. 4 विद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा सिखाई गयी शिक्षा है?

(अ) औपचारिक (ब) अनौपचारिक (स) कोई नही (द) दोनों

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (अ)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (ब)

प्र. 4 (अ)

संदर्भ सूची

1. Aggrawal, J.C. (2008). Theoryand PrinciplesofEducation, 12thed, New Delhi; Vikas Publishing House Pvt. Ltd.

2. Bhattacharya, S. (2006). Philosophical Foundation of Education. New Delhi: AtlanticPublishersandDistributors.

3. Govt. ofEducation (1952-53).SecondaryEducation Commission. New Delhi: MinistryofEducation.

4. IGNOU, (2007). Scope ofEducation: Natureand Purposes (MES-012). M.A. EducationProgramme. IGNOU: New Delhi.

5. Keegan, D. (1986). The Foundations of Distance Education(2nd ed.). London, CroomHelm.

6. KulandaiSwamy, V.C. (1991). DistanceEducationinthe IndianContext. Indian Journal of Open Learning, (1)1, .4-1, IGNOU: New Delhi.

7. KulandiSwamy,V.C. (2004). VocationalOrientationto Education, inJ.S. Rajput (ed.), Encyclopaedia ofIndianEducation, New Delhi: NCERT.

8. Lemann, Nicholas (2004). Liberal Education and Professionals. Quoted from MES-012, Education: Nature and Purposes, Unit-3, IGNOU.

9. MHRD (1948-49). The UniversityEducation Commission (1948-49). Govt. of India: New Delhi.

10. Moore, M.G. (1990). Correspondence Study, in M.W. Galbraith (ed.), Adult Training Methods, Krieger, Malabar, Fla.

11. Rather,A.R. (2014). Theoryand Principles ofEducation. NewDelhi: Discovery PublicationsHouse.

इकाई 4 : सांस्कृतिक बहुलवाद, पॉपुलर (प्रसिद्ध) संस्कृति एवं मास (समूह) संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सांस्कृतिक बहुलवाद क्यों महत्वपूर्ण है

4.3 सांस्कृतिक भौतिकतावाद

4.4 सांस्कृतिक सापेक्षतावाद

4.5 लोकप्रिय संस्कृति

4.5.1 लोकप्रिय संस्कृति का उदय

4.5.2 लोकप्रिय संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ

4.6 जन संस्कृति

4.6.1 मास कल्चर वास्तव में क्या है

4.7 जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति का विश्लेषण

4.8 सारांश

4.9 बोध प्रश्न

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सांस्कृतिक बहुलवाद एवं सांस्कृतिक बहुलवाद क्यों महत्वपूर्ण है इसकी व्यख्या कर सकेंगे।

- सांस्कृतिक भौतिकतावाद, सांस्कृतिक सापेक्षतावाद, लोकप्रिय संस्कृति तथा लोकप्रिय संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ की व्यख्या कर सकेंगे।

- जन संस्कृति का अर्थ मास कल्चर वास्तव में क्या है तथा जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति का विश्लेषण की व्यख्या कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सांस्कृतिक बहुलवाद (Cultural Pluralism)

सांस्कृतिक बहुलवाद एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक अल्पसंख्यक समूह एक अलग, प्रभावशाली संस्कृति वाले समाज में भाग लेते हुए अपनी विशिष्ट संस्कृति को बनाए रखता है। सांस्कृतिक बहुलवाद तब होता है जब एक अल्पसंख्यक समूह अपनी संस्कृति को बनाए रखता है और फिर भी बड़े समाज में भाग लेता है। उदाहरण के लिए जबकि फ्रांस ज्यादातर ऐसे लोगों से आबाद है जो खुद को फ्रेंच मानते हैं विभिन्न संस्कृतियों के कई लोग भी वहां रहते हैं। यदि इतालवी अप्रवासियों ने फ्रेंच के बजाय इतालवी बोलना चुना और फ्रांस में काम करने और रहने के दौरान अपनी इतालवी परंपराओं का पालन करना जारी रखा तो यह सांस्कृतिक बहुलवाद का एक उदाहरण होगा। सांस्कृतिक बहुलवाद मौजूद होने के लिए एक प्रमुख संस्कृति होनी चाहिए और अल्पसंख्यक संस्कृति को इसके भीतर अलग रहते हुए समाज में भाग लेना चाहिए। एक देश जो कई समान आकार के सांस्कृतिक समूहों से बना है जो सभी एक साथ रहते हैं बहुसंस्कृतिवाद का उदाहरण है, सांस्कृतिक बहुलवाद का नहीं। न ही यह सांस्कृतिक बहुलवाद है जब अल्पसंख्यक संस्कृति प्रमुख संस्कृति के साथ संघर्ष में आती है या प्रमुख समूह द्वारा दबा दी जाती है।

सांस्कृतिक बहुलवाद के साथ एक सांस्कृतिक समूह प्रमुख संस्कृति में आत्मसात करने के बजाय एकीकृत करता है तो इस प्रक्रिया को हम सांस्कृतिक बहुलवाद के नाम जानते है।

4.2 सांस्कृतिक बहुलवाद क्यों महत्वपूर्ण है

सांस्कृतिक बहुलवाद के विचार का श्रेय दार्शनिक होरेस कलेन को जाता है जिन्होंने इसके बारे में 1910 के दशक में लिखा था। कल्लन विशेष रूप से अमेरिकी यहूदियों को अपनी संस्कृति और धर्म को एक देश में बनाए रखने के बारे में चिंतित थे उनका मानना था कि आक्रामक रूप से अल्पसंख्यक समूहों

को आत्मसात करने और अमेरिकी बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है यानी अमेरिकियों के लिए सामान्य रीति–रिवाजों और व्यवहारों को अपनाने के लिए कल्लन ने तर्क दिया कि यहूदियों को अमेरिका में आर्थिक सफलता मिली थी जो अन्य अप्रवासियों को नहीं मिली थी क्योंकि वे अपनी खुद की यहूदी संस्कृति और पहचान को दृढ़ता से बनाए रखते हुए प्रमुख संस्कृति के साथ सफलतापूर्वक सह–अस्तित्व में कामयाब रहे थे। कल्लन के सांस्कृतिक बहुलवाद के विचार अन्य समाजशास्त्रियों और दार्शनिकों द्वारा समर्थित और आलोचना दोनों थे और जारी रहेंगे। कुछ लोग तर्क देते हैं कि सांस्कृतिक बहुलवाद बहुत सरल है यह सांस्कृतिक समूहों को एक दूसरे से बचने और एक दूसरे से अलग रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। सांस्कृतिक बहुलवाद के विचार का समर्थन करने वाले लोग अक्सर तर्क देते हैं कि यह विविधता को बढ़ावा देने और संस्कृतियों को एक दूसरे के साथ संघर्ष में आने से रोकने का सबसे अच्छा तरीका है।

सांस्कृतिक बहुलवाद में अंतर इजरायल, जापान, दक्षिण कोरिया जैसे सजातीय समाजों के बीच देखा जा सकता है, जिनकी केवल एक प्रमुख संस्कृति है और इसलिए अन्य संस्कृतियों और विषम समाजों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, यूनाइटेड किंगडम, आदि को समायोजित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हालांकि, जबकि बहुत सारे समाज विषम हैं यानी उनकी कई संस्कृतियाँ हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि वे सांस्कृतिक रूप से बहुवचन भी हैं क्योंकि सांस्कृतिक बहुलवाद के लिए न केवल एक समाज के भीतर विभिन्न संस्कृतियों के अस्तित्व की आवश्यकता होती है बल्कि प्रमुख संस्कृति द्वारा इन संस्कृतियों के लिए सम्मान की भी आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, सऊदी अरब में, जबकि बहुत सारे प्रवासी अपनी संस्कृति को साथ लाते हैं और देश में अब काफी दक्षिण एशियाई डायस्पोरा है, उनकी संस्कृतियों को दबा दिया गया है और निजी क्षेत्र में चला गया है, यानी उन्हें अपनी संस्कृति का खुले तौर पर अभ्यास करने की अनुमति नहीं है। इस प्रकार सऊदी अरब एक विषम समाज हो सकता है लेकिन सांस्कृतिक रूप से बहुलतावादी नहीं ।

अक्सर सांस्कृतिक बहुलवाद और बहुसंस्कृतिवाद का परस्पर उपयोग किया जाता है, हालाँकि इन दोनों में एक अंतर है। बहुसंस्कृतिवादी समाजों में कोई प्रमुख संस्कृति नहीं होती है। यह विभिन्न छोटी संस्कृतियों का शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व है। भारत को अपने सांस्कृतिक रूप से बहुलवादी समाज पर हमेशा से गर्व रहा है। भारत में एक प्रमुख उत्तर भारतीय, हिंदू, हिंदी भाषी संस्कृति है, हालांकि दक्षिण और पूर्वोत्तर भारत की संस्कृतियाँ जैसे व्यंजन

(इडली, वड़ा, उत्तपम), नृत्य रूप (भरतनाट्यम, कथकली, बिहू), साहित्य (संगम साहित्य) का न केवल सम्मान किया जाता है बल्कि देश के बाकी हिस्सों में लेकिन गणतंत्र दिवस पर सांस्कृतिक प्रदर्शन में एक समान स्थान प्राप्त करता है। मस्जिदों, गुरुद्वारे, बौद्ध, जैन और पारसी मंदिरों के प्रसार के रूप में धार्मिक बहुलवाद और उनके खुले धार्मिक उत्सव में अक्सर उनके हिंदू मित्र शामिल होते हैं, जो भारत के धार्मिक बहुलवाद का एक वसीयतनामा है।

बहुलवाद को सरकार द्वारा कानूनों के माध्यम से मजबूर नहीं किया जा सकता है यह समाजों में शामिल हो जाता है क्योंकि वे नई संस्कृतियों को समायोजित करना और उनका सम्मान करना सीखते हैं। भारत की संस्कृतियों का स्वागत करने की लंबी ऐतिहासिक परंपरा रही है जो इसके किनारों पर उतरती है आज के सांस्कृतिक रूप से बहुलवादी समाज की उपस्थिति की अनुमति देती है।

भारत और अमेरिका के सांस्कृतिक बहुलवाद के बीच अंतर स्पष्ट है। अमेरिका खुद को संस्कृतियों का मेल्टिंग पॉट कहता है जहां सभी संस्कृतियां पिघल कर एक आम अमेरिकी पहचान बनाती हैं। राष्ट्रीय पहचान की प्रधानता के लिए संस्कृतियाँ गौण हैं। हालाँकि, भारत श्भारतीय पहचान के एकात्मक विचार को बाध्य नहीं करता है क्योंकि भारतीय होने का क्या मतलब है इसकी कोई एक परिभाषा नहीं है। संस्कृतियों के प्रति अपने सम्मान के कारण, भारत नागरिकों को खुले तौर पर अपनी संस्कृति का अभ्यास करने और भारत की अपनी परिभाषा के साथ आने की अनुमति देता है। भारत के एक प्रमुख विचार का पालन करने के लिए दूसरों पर थोपा नहीं जाता है।

इस प्रकार पश्चिम सांस्कृतिक बहुलवाद के एक नकारात्मक विचार का अनुसरण करता है अर्थात यह संस्कृति को निजी दायरे में छोड़ देता है इसलिए एक व्यक्ति की संस्कृति दूसरे व्यक्ति की संस्कृति में हस्तक्षेप नहीं करती है और कई संस्कृतियां शांतिपूर्वक सह–अस्तित्व में रह सकती हैं। हालाँकि भारत में सांस्कृतिक बहुलवाद का एक सकारात्मक विचार है जहाँ यह सार्वजनिक क्षेत्र में संस्कृति की पूर्ण अभिव्यक्ति की अनुमति देता है और इसके बजाय विभिन्न संस्कृतियों के सम्मान के विचार को बढ़ावा देता है। यह सांस्कृतिक रूप से बहुल भारत है जिस पर हम गर्व करते हैं और आने वाले युगों के लिए इसकी रक्षा करना चाहते हैं।

4.3 सांस्कृतिक भौतिकतावाद (Cultural Materialism)

सांस्कृतिक समालोचना की परम्परा में कुछ विद्वानों ने सांस्कृतिक

भौतिकतावाद की अवधारणा को विकसित किया है। इन विद्वानों में जोनाथन डोल्लीमोर (Jonathan Dollimore) एवं अलान सिनफिल्ड (Alan Sinfield) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों की मूल मान्यता यह है कि संस्कृति मनुष्य की उत्पादन प्रणाली एवं इतिहास के निर्धारण में उसकी भूमिका से पृथक नहीं है बल्कि इन भौतिक परिस्थितियों से संस्कृति की रूपरेखा निर्धारित होती है। इस मान्यता का दूसरा चरण यह है कि संस्कृति राजनीति से पृथक नहीं है। उनके अनुसार संस्कृति राजनीतिक (culture is political) है।

दूसरे शब्दों में सांस्कृतिक भौतिकतावाद राजनीति प्रेरित संस्कृति की भौतिकतावादी व्याख्या करता है। इसी संदर्भ में डोल्लीमोर ने औरत एवं मर्द समलिंगियों की संस्कृति की व्याख्या प्रस्तुत की है तथा उनकी राजनीति में स्थिति पर चर्चा की है। उत्तरआधुनिकता वादियों की परम्परा में डोल्लीमोर की मान्यता है कि स्व या आत्मबोध (self) का कोई अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है जैसा कि पश्चिमी चिंतन परम्परा में उसे चित्रित किया गया है बल्कि स्व या आत्मबोध सामाजिक संबंधों से उत्पन्न होता है। इसलिए मनुष्य के सांस्कृतिक व्यवहारों की वस्तुनिष्ठ व्याख्या एक भ्रान्ति है क्योंकि उनका अपना राजनीतिक आयाम होता है जिसकी वस्तुनिष्ठ व्याख्या संभव नहीं है। इस मान्यता पर डोल्लीमोर तथा अन्य सांस्कृतिक भौतिकतावादियों ने हाशिए पर जीने वाले व्यक्ति एवं समूहों तथा समलिंगियों की तरह समाज से बहिष्कृत लोगों का अध्ययन किया है। उत्तरआधुनिकतावादियों की परम्परा में उनका विश्लेषण मार्क्स के दबित समूहो व्याख्या की अपेक्षा फूको के विश्लेषण के ज्यादा नजदीक है।

4.4 सांस्कृतिक सापेक्षतावाद (Cultural Relativism)

सांस्कृतिक सापेक्षतावाद संस्कृतियों की विलक्षणता एवं उनकी स्वायतता पर बल देता है तथा बतलाता है कि किसी एक मान्य विश्व संस्कृति की मान्यता असंभव है। इस सिद्धान का प्रारंभ बिन्दु ग्रीक चिंतक हेरोडोटस (Herodotus) की प्रसिद्ध पुस्तक Historiesमें पाय जाता है जिसमें उसने बतलाया है कि प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट प्रथाएं एवं परम्पराएं होती है इसलिए उनका व्यावहार में अनुपालन करना स्वाभाविक है किन्तु इस मान्यता का पश्चिमी चिंतन परम्परा में 19वीं सदी तक तिरस्कार किया जाता रहा है। पश्चिमी चिंतकों ने अफ्रीकन, पूर्वी देशों एवं खुद अमेरिकन आदिवासियों की संस्कृति की स्वायत्तता को स्वीकार नहीं किया है।

पश्चिमी चिंतन परम्परा में इन संस्कृतियों का सही मूल्यांकन पश्चिमी बुद्धिवादी (western rationality) मान्यताओं के आलोक में ही किया जा सकता है। क्लिफर्ड गियर्ज (Clifford Geertz) ने इसी संकीर्ण मान्यता को नृजातीय केन्द्रीयतावाद (Ethnocentricism) कहा है। 20वीं सदी के दौरान कई अमेरिकन नृजातीयशास्त्रियों ने इस संकीर्ण मान्यता का परित्याग कर विभिन्न समाजों की संस्कृतियों का अध्ययन उनकी स्वायत्तता एवं विशिष्ट मान्यताओं के संदर्भ में किया है। इन लोगों ने इन संस्कृतियों की विश्वास पद्धतियों मूल्यों एवं परम्परा का गहराई से अध्ययन किया है जिसका एक महत्वपूर्ण परिणाम सांस्कृतिक सापेक्षतावाद है। इस सांस्कृतिक सापेक्षतावाद का मूलमंत्र यह है कि दो संस्कृतियों की तुलना के लिए किसी सर्वमान्य वस्तुनिष्ठ संधार की आवश्यकता नहीं है, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों की मान्यताओं का अध्ययन उनके भीतर प्रचलित नैतिकता के नियमों एवं परम्पराओं के संदर्भ में किया जाना चाहिए। सांस्कृतिक सापेक्षतावाद का प्रभाव उत्तरआधुनिकतावाद पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है जिसने उनके विभेदों एवं 'अन्यत्व' (difference and otherness) के सिद्धान्त का पोषण किया है।

4.5 लोकप्रिय संस्कृति (Popular Culture)

लोकप्रिय संस्कृति (या पॉप संस्कृति) सामान्य रूप से किसी विशेष समाज की परंपराओं और भौतिक संस्कृति को संदर्भित करती है। आधुनिक पश्चिम में, पॉप संस्कृति संगीत, कला, साहित्य, फैशन, नृत्य, फिल्म, साइबर संस्कृति, टेलीविजन और रेडियो जैसे सांस्कृतिक उत्पादों को संदर्भित करती है जो समाज की अधिकांश आबादी द्वारा उपभोग की जाती है। लोकप्रिय संस्कृति उस प्रकार का मीडिया है जिसकी व्यापक पहुंच है। लोकप्रिय संस्कृति शब्द को 19वीं शताब्दी के मध्य में गढ़ा गया था और यह राज्य या शासक वर्गों की आधिकारिक संस्कृति के विपरीत लोगों की सांस्कृतिक परंपराओं को संदर्भित करता है। आज व्यापक उपयोग में इसे गुणात्मक शब्दों में परिभाषित किया जाता है।

4.5.1 लोकप्रिय संस्कृति का उदय

विभिन्न विद्वान लोकप्रिय संस्कृति के उदय की उत्पत्ति को औद्योगिक क्रांति द्वारा उत्पन्न मध्य वर्ग के निर्माण में खोजते हैं। जो लोग कामकाजी वर्गों में कॉन्फ़िगर किए गए थे और अपने पारंपरिक कृषि जीवन से दूर शहरी वातावरण में चले गए थे उन्होंने अपने माता–पिता और मालिकों से अलग होने

के एक हिस्से के रूप में अपने सहकर्मियों के साथ साझा करने के लिए अपनी संस्कृति बनाना शुरू कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद मास मीडिया में नवाचारों के कारण पश्चिम में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए। उसी समय, पूंजीवाद विशेष रूप से लाभ उत्पन्न करने की आवश्यकता ने विपणन की भूमिका निभाई नए आविष्कृत माल को विभिन्न वर्गों के लिए विपणन किया जा रहा था। लोकप्रिय संस्कृति का अर्थ तब जन संस्कृ ति, उपभोक्ता संस्कृति, छवि संस्कृति, मीडिया संस्कृति और बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए निर्माताओं द्वारा बनाई गई संस्कृति के साथ विलय होने लगा।

4.5.2 लोकप्रिय संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ

अपनी प्रसिद्ध पाठ्य पुस्तक कल्चर थ्योरी एंड पॉपुलर कल्चर में ब्रिटिश मीडिया विशेषज्ञ जॉन स्टोरी ने लोकप्रिय संस्कृति की छह अलग–अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं।

- लोकप्रिय संस्कृति केवल ऐसी संस्कृति है जिसे बहुत से लोग पसंद करते हैं इसका कोई नकारात्मक अर्थ नहीं है।

- लोकप्रिय संस्कृति वह है जो आपके द्वारा उच्च संस्कृति की पहचान करने के बाद बची है इस परिभाषा में पॉप संस्कृति को हीन माना जाता है और यह स्थिति और वर्ग के रूप में कार्य करती है।

- पॉप संस्कृति को व्यावसायिक वस्तुओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो गैर–भेदभाव वाले उपभोक्ताओं द्वारा बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए उत्पादित की जाती हैं। इस परिभाषा में लोकप्रिय संस्कृति अभिजात वर्ग द्वारा जनता को दबाने या लाभ उठाने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला उपकरण है।

- लोकप्रिय संस्कृति लोक संस्कृति है कुछ ऐसा जो लोगों पर थोपे जाने के बजाय उनसे उत्पन्न होता है पॉप संस्कृति व्यावसायिक (वाणिज्यिक उद्यमों द्वारा उन पर जोर) के विपरीत प्रामाणिक (लोगों द्वारा बनाई गई) है।

- पॉप संस्कृति पर बातचीत की जाती है आंशिक रूप से प्रमुख वर्गों द्वारा लगाया जाता है और अधीनस्थ वर्गों द्वारा आंशिक रूप से विरोध या परिवर्तित किया जाता है। प्रमुख संस्कृति का निर्माण कर सकते हैं लेकिन अधीनस्थ तय करते हैं कि वे क्या रखते हैं या त्यागते हैं।

स्टेरी द्वारा चर्चा की गई पॉप संस्कृति की अंतिम परिभाषा यह है कि उत्तर आधुनिक दुनिया में, आज की दुनिया में, प्रामाणिक बनाम वाणिज्यिक के बीच का अंतर धुंधला है। आज पॉप संस्कृति में, उपयोगकर्ता कुछ निर्मित सामग्री को गले लगाने, अपने स्वयं के उपयोग के लिए इसे बदलने, या इसे पूरी तरह से अस्वीकार करने और अपना स्वयं का निर्माण करने के लिए स्वतंत्र हैं। 21वीं सदी की शुरुआत के बाद से मास मीडिया–जिस तरह से पॉप संस्कृति को वितरित किया जाता है इतने नाटकीय रूप से बदल गया है कि विद्वानों को यह स्थापित करना मुश्किल हो रहा है कि वे कैसे कार्य करते हैं। हाल ही में 2000 तक, मास मीडिया का अर्थ केवल प्रिंट (समाचार पत्र और किताबें), प्रसारण (टेलीविजन और रेडियो), और सिनेमा (फिल्में और वृत्तचित्र) था। आज, यह सोशल मीडिया और रूपों की एक विशाल विविधता को गले लगाता है लेकिन एक बड़ी हद तक, लोकप्रिय संस्कृति आज आला उपयोगकर्ताओं द्वारा स्थापित है।

4.6 जन संस्कृति (Mass Culture)

जन संस्कृति का तात्पर्य मानकीकृत, सूत्रबद्ध, बड़े पैमाने पर उत्पादित सांस्कृतिक उत्पादों से है जो मनोरंजक और सरलीकृत होने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं ताकि इसे बड़े पैमाने पर दर्शकों द्वारा उपभोग किया जा सके। जो बड़े पैमाने पर संस्कृति का उत्पादन कंपनियों द्वारा लाभ कमाने के लिए किया जाता है और इसे जानबूझकर सरलीकृत बनाया जाता है ताकि यह सबसे सरल से सरल व्यक्ति तक पहुँच सके। जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति को अक्सर एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किया जाता है लेकिन ये दो शब्द वास्तव में एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। उनका अर्थ आज के समाज में सांस्कृतिक उत्पादन और खपत के चौराहे पर है।

एडोर्नो और होर्खाइमर द्वारा अपनी पुस्तक 'द डायलेक्टिक ऑफ एनलाइटनमेंट' में वर्णित 'संस्कृति उद्योग' के गठन के लिए उन्होंने तर्क दिया कि 'संस्कृति' शब्द लोक संस्कृति (सामान्य लोगों और समुदायों द्वारा प्रचलित प्रथाओं) के विपरीत है, इसके बजाय, संगीत, कला, सिनेमा और फैशन सहित सांस्कृतिक उत्पादों के संग्रह को संदर्भित किया गया है। बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए मास मीडिया द्वारा निर्मित और विपणन किया जाता है। अर्थात् निर्मित की जा रही संस्कृति की यह अवधारणा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उठी जिसमें मास मीडिया, उद्योगों के तेजी से मशीनीकरण और तकनीकी प्रगति के दायरे में उछाल देखा गया। मास मीडिया में नवाचारों ने पश्चिम में सांस्कृतिक और

सामाजिक परिवर्तन को उत्प्रेरित किया। इसके साथ ही पूंजीवाद ने लाभ के लिए विभिन्न वर्गों के लिए नए आविष्कार किए गए सामानों को बाजार में लाने के लिए प्रौद्योगिकी और जनसंचार माध्यमों का उपयोग करना शुरू कर दिया।

जनसंस्कृति पैदा करने वाले और लोकप्रिय संस्कृति के उपभोग को प्रेरित करने वाले तरीके लगातार विभिन्न लोग अपना रहे हैं। सामान्य शब्दों में, दोनों के बीच का अंतर इस तथ्य में निहित है कि जन संस्कृति उत्पादन के साथ व्यस्त है जबकि पॉप संस्कृति उपभोग से संबंधित है। यह सुविधा पॉप संस्कृति को फीडबैक के अनुसार खुद को ढालने की अनुमति देती है जिससे उपभोक्ता बाजार अपनी इच्छाओं को अनुकूलित कर सकते हैं। इस प्रकार लोकप्रिय संस्कृति को जन संस्कृति के ढांचे के भीतर मौजूद होने का तर्क दिया जा सकता है। दोनों के बीच संबंध जन संस्कृति के व्यावसायिक हितों और लोकप्रिय हितोंश के बीच परिणामी संबंध में निहित है।

जॉन फिस्के जिन्होंने अपनी पुस्तक 'अंडरस्टैंडिंग पॉपुलर कल्चर' में इस विषय के बारे में विस्तार से लिखा है वे कहते हैं कि लोकप्रिय संस्कृति का निर्माण लोगों के हितों द्वारा किया जाता है। वे लोग जो संस्कृति उद्योग द्वारा उत्पादित प्रदर्शनों की सूची को ऐसे उत्पादों को खोजने के लिए स्कैन करते हैं जिनका उपयोग वे अपने स्वयं के सांस्कृतिक उद्देश्यों के लिए कर सकते हैं। उद्योग इसी तरह लोगों के स्वाद और हितों को लगातार स्कैन करता है ताकि यह पता चल सके कि यह अपने लाभ के लिए बदल सकता है। यह रिश्ता हमेशा गतिशील रहता है और लोकप्रिय मांग के अनुसार खुद को ढालता रहता है।

4.6.1 मास कल्चर वास्तव में क्या है

सामूहिक संस्कृति तो एक ऐसी संस्कृति है जो बड़े पैमाने पर उत्पादित, वितरित और विपणन की जाती है। लोकप्रिय संस्कृति वह है जो बहुसंख्यक मत के अनुसार जन संस्कृति से उभरती है। एक औद्योगिक पैमाने पर उत्पादित संगीत और ऐप्पल म्यूजिक, स्पॉटिफी और साउंड क्लाउड जैसे ढेर सारे ऐप्स और साइटों के माध्यम से उपलब्ध कराया गया संगीत जन संस्कृति का संकेत है लेकिन शीर्ष पर पहुंचने वाले विशिष्ट कलाकार और गीत लोकप्रिय संस्कृति का संकेतक हैं।

मास संस्कृति एकीकृत सामग्री का उत्पादन करती है जिसे अधिक से अधिक प्राप्तकर्ताओं तक पहुंचने के लिए डिज़ाइन किया गया है। इसमें संस्कृति

के सभी रूप शामिल हैं, जिसमें प्रति–संस्कृति और भूमिगत उप–संस्कृतियां भी शामिल हैं। यह सबके लिए कुछ के सिद्धांत पर काम करता है। यहाँ अंतर यह है कि जन संस्कृति एक सर्वव्यापी बहाना है जो बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों के लिए उत्पादों का उत्पादन करती है जबकि पॉप संस्कृति वह है जो अधिकांश दर्शकों द्वारा उपभोग की जाती है।

4.7 जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति का विश्लेषण

मास संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जो बड़े पैमाने पर मीडिया के माध्यम से व्यापक रूप से प्रसारित होती है, जो बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकियों का उपयोग करती है और फिल्म, टीवी, और हाल ही में रोज़मर्रा की संस्कृति के लिए इंटरनेट जैसे बड़े पैमाने पर संचार के माध्यम से लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। टेलीविजन, रेडियो, विज्ञापन, इंटरनेट द्वारा आबादी को सांस्कृतिक और शैलीगत मूल्यों से पोषित किया जाता है ताकि हमें यह निर्धारित करने में मदद मिल सके कि संस्कृति के किन पहलुओं को लोकप्रिय बनाना है। मास मीडिया तब सांस्कृतिक मूल्यों और विचारों का निर्माण करता है जो एक आबादी के समान सांस्कृतिक गतिविधियों, संगीत, फिल्म, टेलीविजन और कला के सामान्य प्रदर्शन से उत्पन्न होते हैं। लोकप्रिय संस्कृति तब इस बुलबुले से उत्पन्न होती है, जिसमें बहुसंख्यक राय लोकप्रिय होती है, उदाहरण के लिए, मार्वल एवेंजर्स फ़्रैंचाइज़ी प्रतीत होता है कि भूमिगत फिल्मों के विरोध में जो बड़े पैमाने पर खपत के लिए भी बनाई जाती हैं। इसमे बड़े पैमाने पर पूंजीवाद संस्कृति के एकाधिकार की अनुमति देता है। यूएस में उत्पादित सभी मीडिया का 90 प्रतिशत समूहों के स्वामित्व में है।

यह उन तंत्रों का प्रतिनिधि है जो सामूहिक संस्कृति को रेखांकित करते हैं। विशिष्ट मीडिया जैसे कि एक लोकप्रिय टीवी श्रृंखला इन समूहों और उनके स्वामित्व वाली कंपनियों द्वारा निर्मित, पॉप संस्कृति का एक उदाहरण है जो जन संस्कृति से उभरा है।

4.8 सारांश

मास संस्कृति द्वारा उत्पादित सामग्री को अभूतपूर्व पैमाने पर लोकप्रिय बनाने के लिए इंटरनेट ने सबसे कुशल उपकरणों में से एक के रूप में भी काम किया है। जनसंस्कृति के उद्भव ने उच्च संस्कृति और मनोरंजन के समान उत्पाद बनाए हैं। एक पॉप कलाकार को एक ओपेरा गायक के बराबर रैंक

दिया जाता है, एक इंस्टाग्राम मॉडल को प्रचलन में दिखाया जा सकता है जो सुपरमॉडल की अपनी पसंद में विशिष्ट था। इस प्रकार, अभी हाल ही में पॉप संस्कृति और जन संस्कृति आपस में जुड़ने लगी हैं। अपने 1935 के निबंध, 'द वर्क ऑफ आर्ट इन द एज ऑफ मैकेनिकल रिप्रोडक्शन' में, वाल्टर बेंजामिन व्यक्तिगत कलात्मक स्पर्श के अवशेषों को नष्ट करने के लिए जन संस्कृति की आलोचना करते हैं। जल्द ही, कला ने बड़े पैमाने पर उत्पादन के उत्पादों की नकल करना शुरू कर दिया। यह एंडी वारहोल के काम में सबसे स्पष्ट रूप से देखा गया है, जिनके टुकड़े पॉप संस्कृति में घुसपैठ कर चुके हैं, एकमात्र कारण यह है कि उन्होंने बड़े पैमाने पर संस्कृति, बड़े पैमाने पर उपभोग और वस्तु के परिणामी उदय द्वारा उत्पादित मानकीकरण को सौंदर्यपूर्ण रूप से चित्रित किया।

इस प्रकार दो अवधारणाएं संस्कृति उद्योग के एक ही समोच्च के भीतर मौजूद हैं, जिसने 20वीं और 21वीं सदी में जड़ें जमा ली हैं। जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति दोनों आज पूंजीवाद के वैश्विक आधिपत्य प्रभाव के तहत जीवन में व्याप्त हैं, दोनों उत्पादन और खपत के द्वंद्व को सुनिश्चित करने में अपनी भूमिका निभा रहे हैं।

मास कल्चर पॉप कल्चर को स्पॉटिफाई गतिविधियों के माध्यम से छद्म व्यक्तिवाद बनाने में सक्षम बनाता है, जैसे कि सबसे हालिया, कोई भी आपकी तरह नहीं सुनता है कैप्सूल जिसमें हैशटैग और प्रत्येक व्यक्ति के गीतों के बेतुके संयोजन को दिखाया गया है, एक के बाद एक स्ट्रीम किया गया। पॉप संस्कृति और जन संस्कृति दोनों की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से एक, छद्म व्यक्तित्व, संस्कृति उद्योग की अपनी आलोचना में एडोर्नो और होर्खाइमर द्वारा छुआ गया था, "संस्कृति उद्योग में, व्यक्ति केवल भ्रम के कारण नहीं है उत्पादन के साधनों का मानकीकरण। उसे केवल तभी तक सहन किया जाता है जब तक सामान्यता के साथ उसकी पूर्ण पहचान पर कोई प्रश्न नहीं उठता। छद्म व्यक्तित्व व्याप्त है। मैक्स होर्खाइमर ने अपनी पुस्तक 'एक्लिप्स ऑफ रीज़न' में इसे जोड़ते हुए कहा है कि, 'मनुष्य की आत्म–अभिव्यक्ति प्रचलित प्रणाली में उसके कार्य के समान हो गई है।' यह तब इस दावे की पुष्टि करता है कि बड़े पैमाने पर संस्कृति और पॉप संस्कृति लाभ को अधिकतम करने के लिए पारस्परिक रूप से काम करते हैं और जनता की क्षणिक इच्छाओं को संतुष्ट करके उनको शांत करते हैं।

4.9 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 सांस्कृतिक बहुलवाद एवं सांस्कृतिक बहुलवाद क्यों महत्वपूर्ण है इसकी व्यख्या कीजिए

प्र. 2 सांस्कृतिक भौतिकतावाद, सांस्कृतिक सापेक्षतावाद, लोकप्रिय संस्कृति तथा लोकप्रिय संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ का वर्णन कीजिए?

प्र. 3 जन संस्कृति का अर्थ मास कल्चर वास्तव में क्या है तथा जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति का मूल्यांकन कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक अल्पसंख्यक समूह एक अलग, प्रभावशाली संस्कृति वाले समाज में भाग लेते हुए अपनी विशिष्ट संस्कृति को बनाए रखता है?

(अ) सांस्कृतिक बहुलवाद (ब) सांस्कृतिक पुनर्उत्पादन

(स) सापेक्षवाद (द) मास संस्कृति

प्र. 2 सांस्कृतिक बहुलवाद के विचार का श्रेय दिया जाता है?

(अ) होरेस कलेन (ब) जेम्स फ्रेज़र

(स) एंडरसन (द) पार्कर

प्र. 3 लोकप्रिय संस्कृति शब्द को गढ़ा गया था?

(अ) 20वीं शताब्दी (ब) 19वीं शताब्दी

(स) 17वीं शताब्दी (द) 18वीं शताब्दी

प्र. 4 द डायलेक्टिक ऑफ एनलाइटनमेंट कृति है?

(अ) एडोर्नो और होर्खाइमर (ब) जेम्स फ्रेज़र

(स) एंडरसन (द) पार्कर

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (अ)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (ब)

प्र. 4 (अ)

संदर्भ सूची

1. Fiske, John. *Understanding Popular Culture.* Routledge, 2011.

2. Horkheimer, *Max. Eclipse of Reason.* Bloomsbury, 2019.

3. Horkheimer, Max, and Theodor W. Adorno. *Dialectic of Enlightenment.* Seabury Press, 1972.

4. Bottomore, T.B. (1975), Sociology, Blackie and Son (India) Ltd., New Delhi.

5. Herskovits, M.L. (1969), Cultural Anthropology, Oxford and IBH Publishing Co., New Delhi.

6. Keesing, Roger M. and Keesing, Felix M. (1968), New Perspectives in Cultural Anthropology. Rinehart and Winston, London.

7. Kroeber, A.L. (1967) (Indian Ed.) Anthropology, Oxford IBH Publishing Co., New Delhi.

8. Kroeber, A.L. and Clyde Kluckhohn, (1985) Culture, Vintage Books, New York.

9. Majumdar, D.N and T.N. Madan, (1956), An Introduction to Social Anthropology, Asian Press, Bombay.

10. Smelser, Neil l. (1993), Sociology, Prentice Hall of India, New Delhi

●

इकाई 5 : जादू धर्म एवं विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 धर्म के तत्व

5.2.1 भावनाओं की उत्तेजना

5.2.2 विश्वास

5.2.3 संगठन

5.2.4 प्रतीक और मिथक

5.2.5 निषेध

5.3 जादू

5.4 जादू क्या है

5.5 जादू के तत्व

5.6 जादू के सिद्धांत

5.7 जादू के प्रकार

5.7.1 जादू टोने

5.8 जादू और विज्ञान

5.9 जादू और धर्म

5.10 सारांश

5.11 बोध प्रश्न

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है।
- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप धर्म जादू और विज्ञान की वैचारिक रूपरेखा की व्यख्या कर सकेंगे।
- धर्म के तत्व सिद्धांत और जादू के प्रकार की व्यख्या कर सकेंगे।
- जादू और विज्ञान जादू और धर्म के बीच संबंध तथा अंतर की व्यख्या कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

कुछ लेखकों का विचार है कि जादू धर्म का एक रूप है परन्तु दूसरे लेखक इसे धर्म के साथ सम्बद्ध करना उचित नहीं समझते । मैलिनोस्की के अनुसार जादुई क्रियाएँ धार्मिक क्रियाओं से भिन्न होती हैं क्योंकि पूर्वोक्त का कोई निश्चित लक्ष्य सम्मुख होता है जो तात्कालिक व्यावहारिक एवं प्रायः निजी होता है। उनका उद्देश्य किसी निश्चित प्रभाव को उत्पन्न करना है। दूसरी ओर धर्म का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता यह स्वयं एक लक्ष्य होता है जो उपासकों को आध्यात्मिक शक्तियों के संपर्क में लाना है। धर्म में व्यक्ति की मनोवृत्ति विनम्र होती है उपासक आराधना के द्वारा ईश्वर से कुछ प्राप्त करने का प्रयास करता है। दूसरी ओर जादू उस शक्ति को दबाकर अपने अधिकार में करके अपने उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न करता है। गोउन वीजर (Golden Weiser) के शब्दों में धर्म में आत्म–समर्पण या अधीनता निहित है जबकि जादू में दृढ़ आत्म–संकल्प या नियंत्रण जादुई क्रिया व्यापारिक व्यवहार है जिसमें धोखे की सम्भावना होती है। धर्म मनुष्य एवं ईश्वर के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है जादू में ऐसा नहीं होता है।

5.2 धर्म के तत्व

सामाजिक मानवशास्त्रियों विशेष रूप से ब्रिटिश लोगों ने आदिम धर्म पर भारी मात्रा में आंकड़े तैयार किए हैं। जो भारत अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया के आदिम और आदिवासी लोगों से संबंधित है। हालांकि अमेरिकी मानवविज्ञानियों ने आदिम धर्म पर कम चिंता दिखाई है। उपलब्ध नृवंशविज्ञान डेटा के बल पर

हम नीचे इस खंड में धर्म के कुछ तत्वों को प्रस्तुत करते हैं जो कई आदिवासी समूहों के धर्म की विशेषता भी बताते हैं।

दुर्खीम ने कर्मकांड को धर्म के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में वर्णित किया है। कर्मकांड धर्म का एक अभ्यास है या कहें कि धर्म का एक क्रियात्मक भाग है। वैचारिक रूप से कर्मकांड धार्मिक घटनाओं या मान्यताओं से अलग है जो एक विचार या विश्वास हैं और अनुष्ठान उनका कार्यान्वयन है। किसी भी धर्म के अनुभवजन्य आधार पर आदिम या अन्यथा ग्रामीण को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता है। सामाजिक क्रिया की संरचना में पार्सन्स ने निम्नलिखित शब्दों में धर्म और कर्मकांडों के संबंध की व्याख्या की है।

पार्सन्स का मानना है कि धर्म और कर्मकांड के बीच मूलभूत अंतर यह है कि धार्मिक घटनाओं की दो श्रेणिया है विश्वास और संस्कार इनमे पहला विचार का एक रूप है, दूसरा क्रिया का। लेकिन दोनों अलग–अलग हैं और हर धर्म के केंद्र में हैं। इसकी मान्यताओं को जाने बिना किसी धर्म का अनुष्ठान समझ से बाहर है। हालांकि दोनों अविभाज्य हैं प्राथमिकता का कोई विशेष संबंध नहीं है। धार्मिक मान्यताएँ पवित्र वस्तुओं, उनकी उत्पत्ति, व्यवहार और मनुष्य के लिए महत्व से संबंधित मान्यताएँ हैं। संस्कार पवित्र चीजों के संबंध में की जाने वाली क्रियाएं हैं। यदि बिहार का कोई संथाल अपने स्थानीय देवता को मुर्गी भेंट करता है तो यह उसकी मान्यता या विचार के अनुसार एक अनुष्ठान है कि देवता को समुदाय पर लगाए गए बुराइयों को दूर करने के लिए प्रसन्न किया जाना चाहिए। इस प्रकार मुर्गे की बलि एक कर्मकांड है और ईश्वर की शक्ति में विश्वास विचार है। हम देखते हैं कि अनुभवजन्य स्थिति में विश्वास और अनुष्ठान दोनों एक साथ काम करते हैं।

5.2.1 भावनाओं की उत्तेजना

धर्म या विश्वास के अस्तित्व के बारे में चेतना प्राप्त करने के लिए कुछ भावनाओं को भी जगाया जाता है। ईश्वर का भय बुरे काम करने से डरना, दान देना, पवित्र जीवन जीना ये सभी व्यवहार के आधार हैं जो एक धर्म के लिए भावनाओं को जगाते हैं। हालांकि कभी–कभी अनुयायियों में आतंक पैदा करने के लिए भी यह भावनाएं जगाई जाती हैं।

5.2.2 विश्वास

धर्म की इमारत विश्वासों के ढाँचे पर टिकी है। पहले के सामाजिक

मानवशास्त्रियों ने धर्म को केवल विश्वासों के संदर्भ में परिभाषित किया। टायलर ने तर्क दिया कि विश्वास के बिना कोई धर्म नहीं हो सकता और विश्वास के बारे में जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि इस पर तर्क नहीं दिया जा सकता यह अनुभवजन्य रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। यह केवल समझने की बात है। हाल के मानवशास्त्रीय साहित्य में धर्म में विश्वास के तत्व की कड़ी आलोचना की गई है। कहा जाता है कि धर्म को समाजशास्त्रीय और तार्किक दृष्टि से समझना होगा। विश्वास का कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि यह वास्तविकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

5.2.3 संगठन

धर्म के प्रारंभिक इतिहास में हमारे पास यह कहने के प्रमाण हैं कि एक विशेष संप्रदाय की गतिविधियों को विनियमित करने के लिए कुछ संगठन थे। मैक्स वेबर जिन्हें आधुनिक समाजशास्त्र का संस्थापक कहा जाता है, ने देखा कि दुनिया के सभी महान धर्म– ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, इस्लाम और हिंदू धर्म का किसी न किसी प्रकार का संगठन था। संगठन का कार्य धर्म की गतिविधियों और कामकाज को विनियमित करना था। ईसाई धर्म का अपना चर्च है जो ईसाइयों को एक साथ रखने के लिए एक केंद्रीय निकाय के रूप में काम करता है। इसी तरह हिंदू धर्म के अपने चार धाम हैं जहां शंकराचार्य प्रमुख के रूप में काम करते हैं और हिंदुओं की गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं।

5.2.4 प्रतीक और मिथक

प्रत्येक धर्म के अपने प्रतीक और मिथक होते हैं। उदाहरण के लिए चर्च, मंदिर, मस्जिद, झंडा और एक विशिष्ट प्रकार की पोशाक और पूजा विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के प्रतीक हैं। इसी तरह हर धर्म से जुड़ी पौराणिक कथाएं हैं। जीववाद में विश्वास करने वाले आदिवासियों के अपने कुलदेवता होते हैं जो जानवरों पौधों और पेड़ों में परिलक्षित होते हैं। कुलों की उत्पत्ति का वर्णन पौराणिक कथाओं से भी मिलता है।

5.2.5 निषेध

खुद को अलग करने के लिए प्रत्येक धार्मिक आस्था की अपनी वर्जनाएं होती हैं। ये निषेध भोजन की आदतों और जीवन शैली से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए जैन धर्म का दावा है कि उसके अनुयायियों को सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना चाहिए और उन्हें सख्ती से शाकाहारी होना चाहिए। अनुयायियों के

व्यवहार पैटर्न भी धर्म द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। धर्म के तत्वों की उपरोक्त सूची में कुछ और जोड़े जा सकते हैं। यह याद रखना चाहिए कि ये तत्व स्थानीय स्तर पर परिवर्तन से गुजरते हैं। विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के कामकाज के साथ तत्वों में नई व्याख्याएँ भी जुड़ती हैं। कुछ नए तत्व भी प्रकट होते हैं।

5.3 जादू

यदि हम समाजशास्त्र और सामाजिक मानव विज्ञान में अनुसंधान का एक त्वरित सर्वेक्षण करते हैं तो हमें पता चलता है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान सामाजिक मानवविज्ञानी द्वारा जादू पर कोई अनुभवजन्य अध्ययन नहीं किया गया है। सच्चिदानंद ने ग्रामीण अध्ययनों पर एक विस्तृत ग्रंथ सूची तैयार की है और हमारे आश्चर्य के लिए भारतीय जनजातियों के बीच जादू के प्रभाव पर कोई अध्ययन नहीं किया गया है। इसी तरह पीपल्स ऑफ इंडिया परियोजना इस बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं करती है। दूसरी ओर सामाजिक मानव विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में निरपवाद रूप से जनजातीय जादू पर एक अध्याय होता है। स्पष्ट रूप से आज हम जो पाते हैं और पाठ्यपुस्तकों में जो दिया गया है उसमें बहुत बड़ा अंतर है। यह समझ से परे है कि पाठ्यपुस्तकों के लेखकों ने कबीलाई जादू के सजीव वर्णनों के लिए कितने पृष्ठ समर्पित किए हैं। शायद,दोष पाठ्यपुस्तक के लेखकों का नहीं है। जादू को शामिल करने की जिम्मेदारी पाठ्यक्रम के निर्माताओं की है। भारत में जादुई प्रथाएं मध्यकालीन और पूर्व–पूंजीवादी समाज में वापस जाती हैं। हमारे संस्थानों के विकास में जादू की एक विशिष्ट भूमिका है। मलिनॉस्की इवांस–प्रिचर्ड और फ्रेज़र विकास सूचियाँ थीं। यह विकासवादी परिप्रेक्ष्य है जिसने इन मानवविज्ञानियों को जनजातीय जादू के बारे में लिखने के लिए प्रेरित किया था। धर्म भी किसी अन्य सामाजिक संस्था की तरह विकास की एक लंबी प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुआ है। जादू शायद धर्म के विकास के विकासवादी चरण में पहला चरण था। आदिवासियों के अलावा गैर–आदिवासी समूह जो अलगाव में रह रहे थे उनका भी जादू में दृढ़ विश्वास था। उपचार की एलोपैथिक प्रणाली तब अस्तित्व में नहीं आई थी और लोग लगातार विभिन्न बीमारियों के शिकार हो रहे थे। वे अमित्र वातावरण में रह रहे थे जहाँ अकाल एवं विभिन्न महामारी थी और लोगों के पास जादू–टोना करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। मलिनॉस्की और फ्रेजर जिन्होंने नाटकों के बीच काम किया वे 19वीं और 20वीं शताब्दी के मध्य में आदिवासी समाज में जादू की

भूमिका की सूचना दी। मलिनॉस्की के ट्रोब्रिएंडर्स और इवांस–प्रिचर्ड के अज़ांडेस ने अब आधुनिकीकरण करना शुरू कर दिया तो इन सभी ने आधुनिक चिकित्सा पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

भारत में सभ्य जातियों ने भी जादुई प्रथाओं को अपना लिया और कुछ मामलों में ये आदिवासियों की तुलना में अधिक परिष्कृत साबित हुईं। जब सोमनाथ मंदिर (गुजरात) पर आक्रमण हुआ तो हिंदू राजाओं ने ब्राह्मणों के एक समूह को जादू–टोना करने के लिए आमंत्रित किया ताकि आक्रमण को निष्प्रभावी बनाया जा सके। आज भी हम देखते हैं कि जब राजनीतिक नेता या उच्च स्थिति के अभिजात वर्ग मृत्यु के साथ संघर्ष कर रहे होते हैं तो ब्राह्मणों और तांत्रिकों को मृत्युंजय जाप करने के लिए बुलाया जाता है अंधविश्वासों में विश्वास का एक स्पष्ट उदाहरण। जिस बिंदु पर हम यहां जोर देना चाहते हैं वह यह है कि जादू केवल नाट्यशालाओं द्वारा अभ्यास की जाने वाली एक विशिष्ट कला थी। पूरा उपमहाद्वीप जादुई प्रथाओं में विश्वास करता था। यदि फ्रेज़र और मलिनॉस्की ने जनजातीय जादू का उल्लेख किया है तो वे केवल उस जनजातीय स्थिति पर चर्चा कर रहे थे जो मध्यकालीन और पूर्व–पूंजीवादी काल के दौरान न केवल भारत बल्कि पूरे यूरोप में पाई गई थी।

5.4 जादू क्या है

यह एक ऐसा शब्द है जो एक विशेष प्रकार के व्यवहार को दर्शाता है जो आवश्यक रूप से धार्मिक नहीं है, जो एक या दूसरे प्रकार के अलौकिकवाद में विश्वासों की स्वीकृति से उत्पन्न होता है। यदि लोग जीववाद में विश्वास करते हैं तो वे ऐसा कार्य करते हैं ताकि कुछ चीजें उन आत्मिक प्राणियों की मदद से की जा सकें जिनके बारे में वे विश्वास करते हैं कि वे मौजूद हैं। यदि लोग मान या एनिमेटिज़्म में विश्वास करते हैं तो वे कुछ अलग तरीके से कार्य कर सकते हैं ताकि वे अवैयक्तिक प्रकार की शक्ति की मदद से वांछित परिणाम प्राप्त कर सकें जिसे वे मानते हैं कि रिकार्ड किया जा सकता है। वे यह भी मानते हैं कि कुछ चीजें अनिवार्य रूप से घटित होंगी क्योंकि शक्ति हमेशा उसी तरह से संचालित होती है। यदि लोग देवताओं में विश्वास करते हैं तो उनमें से एक या दूसरे उन देवताओं को प्रसन्न किया जाएगा बलिदान किया जाएगा अन्य वांछित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किसी तरह से मारा जाएगा। हालांकि जादू की आवश्यक विशेषता यह है कि इसकी प्रक्रियाएं यंत्रवत होती हैं और स्वचालित रूप से कार्य करती है। धर्म और जादू वैकल्पिक तकनीकें हैं कभी–कभी एक दूसरे का पूरक होता है। मानवशास्त्रियों ने अपने अनुभव क्षेत्र

के बल पर जादू को परिभाषित किया है हालांकि कुछ परिभाषाएं अनुभवजन्य टिप्पणियों से सीधे संबंधित नहीं हैं। हालाँकि हम यहाँ जादू को व्यवस्थित तरीके से परिभाषित करने का प्रयास करेंगे।

जॉन लुईस के अनुसार, जादू अलौकिक शक्ति में विश्वास का उपयोग करके ज़बरदस्ती की तकनीक है। सहानुभूतिपूर्ण या अनुकरणीय जादू यह मानता है कि किसी व्यक्ति या वस्तु के लिए खड़े होने वाली किसी वस्तु पर की गई कार्रवाई पर व्यक्ति या वस्तु वांछित रूप से प्रभावित होगा।

मलिनॉस्की ने जादू को बहुत सटीक तरीके से परिभाषित किया है जादू विशुद्ध रूप से व्यावहारिक कार्यों का एक समूह है जिसे अंत तक एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

हर्सकोविट्स के अनुसार, जादू संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है लोग अक्सर प्रार्थना को पूजा के रूप में इस्तेमाल करते हैं। एक प्रार्थना पुरुषों के मामलों में ब्रह्मांड की शक्तियों के अनुकूल हस्तक्षेप को लाने के लिए शब्दों का उपयोग करती है। जादू प्रार्थना के विपरीत खड़ा है। यह अवधारणा पहली बार इवांस–प्रिचर्ड द्वारा अज़ंडेस के बीच जादू की चर्चा में किया गया था। हर्सकोविट्स ने इवांस–प्रिचर्ड और फ्रेज़र से जादू की अपनी समझ विकसित की है। जादू के बारे में उनकी समझ को नीचे समझाया गया है उनका मानना है कि आकर्षण और मंत्र जादू में व्यापक रूप से फैले हुए उपकरण हैं। एक विशिष्ट वस्तु में निवास करने के लिए रखी गई एक विशिष्ट शक्ति एक सूत्र के उच्चारण द्वारा संचालन में निर्धारित की जाती है जो स्वयं शक्ति का संचालन कर सके। इसमें अक्सर वस्तु का कुछ हिस्सा शामिल होता है जिस पर इसकी शक्ति का प्रयोग किया जाता है या कुछ तत्व जो बाहरी समानता या आंतरिक चरित्र के कारण वांछित परिणाम प्राप्त करता है।

यद्यपि मानवविज्ञानियों द्वारा दी गई धर्म की परिभाषाएँ उनके रूप और सामग्री में भिन्न हैं मूल विचार कमोबेश एक ही है। आदिवासियों का मानना है कि यह एक अलौकिक शक्ति है। इसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। यह सार्वभौमिक है यह अलौकिक शक्ति पर्याप्त शक्ति से संपन्न है जो सकारात्मक (श्वेत) और नकारात्मक (काली) दोनों है। जो व्यक्ति जादू–टोने की कला में निपुणता प्राप्त करना चाहता है वह अलौकिक शक्ति को प्रसन्न कर उसे कुछ शक्ति प्रदान करता है। अलौकिक इस प्रकार कुछ जादुई प्रदर्शनों के माध्यम से अपनी कुछ शक्ति के साथ भाग लेने के लिए बाध्य हो सकता है ये प्रदर्शन

समाज से समाज में भिन्न होते हैं।

5.5 जादू के तत्व

जादू एक कला है और इसे हासिल करना होता है। जादू के कौशल को विकसित करने के लिए व्यवसायी को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। जादू के कुछ महत्वपूर्ण तत्व नीचे दिए गए हैं–

(1) टाइलर ने जादू की प्रथाओं को वर्गीकृत किया है ये प्रथाएं वैज्ञानिक हैं। एक व्यवसायी वैज्ञानिक के रूप में काम करता है। उदाहरण के लिए टाइलर का कहना है कि जो वस्तुएँ एक जैसी दिखाई देती हैं उन्हें एक श्रेणी में रखा जाता है। जैसे पीलिया का रंग पीला होता है और सोने का भी यही रंग होता है। जादू इन दोनों के बीच एक जैसे रंग के कारण संबंध स्थापित करता है। बोहनन इस सिद्धांत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि जादुई प्रथाओं में संगति का कोई तर्क लागू नहीं होता।

(2) जादू व्यक्ति उन्मुख हॉट है एक व्यक्ति किसी चीज़ को एक विशेष तरीके से देखता है यह धारणा उनकी जादुई प्रथाओं में काम करती है।

(3) मलिनॉस्की जादू को तीन उद्देश्य बताये है उनके के अनुसार पहला मंत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है मंत्रों में प्राकृतिक आवाज की नकल करने की शक्ति होती है और इसलिए जादुई अभ्यास के सफल परिणाम के लिए मंत्र महत्वपूर्ण हैं। दूसरा जादूगर इसी भाषा में वर्तमान स्थिति की व्याख्या करता है और अपनी इच्छाओं की पूर्ति का आदेश देता है। तीसरा मंत्र उन पूर्वजों के नाम का उल्लेख करते हैं जिन्होंने जादुई कौशल प्रदान किया है।

(4) मंत्रों का जाप करते समय जादूगर लगातार कुछ क्रियाएं करता है उदाहरण के लिए वह अपने हाथ हिलाता है चेहरे बनाता है और इशारे करता है माना जाता है कि ये शारीरिक गतिविधियां जादू की शक्ति को मजबूत करती हैं।

(5) जादूगर आहार और यौन संबंधों के मामले में उन दिनों में कुछ संयम बरतता है जब वह खुद को जादुई प्रथाओं में संलग्न करता है।

(6) जादूगर के विवेक पर जादुई अभ्यास नहीं किया जा सकता है। कुछ

निश्चित दिन ऐसे होते हैं जो इसके लिए उपयुक्त माने जाते हैं। उदाहरण के लिए महीने के अंधेरे आधे या अमावस्या का अंतिम दिन जादू सीखने और करने के लिए सबसे उपयुक्त है। फिर दशहरे के दिन विशेष रूप से नवरात्रि के दिन जादुई साधनाओं के लिए अच्छे हैं।

(7) मलिनॉस्की का कहना है कि जादू के अभ्यास में अनुशासन सबसे महत्वपूर्ण है। एक जादूगर के लिए पहली चीज जो आवश्यक है वह जादू के उद्देश्यों को स्पष्ट करना है उसे उन्हें बड़ी सावधानी से निभाना होता है जरा सी गलती जादूगर पर ही भारी पड़ सकती थी यही कारण है कि जादूगर अपने बुढ़ापे में दयनीय जीवन व्यतीत करता है।

(8) जादुई अभ्यास के उद्देश्यों के अनुसार जादूगर अपने जादू को सशक्त बनाने के लिए शारीरिक इशारे करता है। फ्रेज़र और मलिनॉस्की ने ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका के आदिवासियों के बीच जादुई प्रथाओं के बारे में दिलचस्प उदाहरण देखे हैं। नडेल ने नुप धर्म के अपने वर्णन में जादू का भी उल्लेख किया है। इवांस–प्रिचर्ड जादुई प्रथाओं और अजांडे के बीच इसके तत्वों के बारे में विस्तृत विवरण देता है।

5.6 जादू के सिद्धांत

कुछ मानवशास्त्रियों ने जादू के सिद्धांत विकसित किए हैं। टाइलर ने विशेष रूप से जादू को धर्म से अलग किया है। उन्होंने जादू के तीन बुनियादी सिद्धांतों का निर्माण किया है जो इस प्रकार हैं–

(1) जादू एक तरह के व्यवहार से संबंधित है जो सामान्य ज्ञान पर आधारित है।

(2) जो कुछ प्रकृति द्वारा किया जाता है वह जादू द्वारा भी किया जा सकता है। ऐसे में लोग प्रकृति और जादू की कार्यप्रणाली में फर्क नहीं कर पाते।

(3) यदि जादू विफल हो जाता है तो इसे मंत्रों के दोषपूर्ण जप या अभ्यासी के नियमित जीवन में कुछ चूक के कारण माना जाता है। इस प्रकार टाइलर का जादू का सिद्धांत दो महत्वपूर्ण बिंदु बनाता हैरू पहला, जादू एक विचारधारा है और इस पर निर्भर रहना पड़ता है। दूसरा, जादू तर्क पर आधारित है यदि इन दो सिद्धांतों पर जादुई अभ्यास किया जाता है

तो परिणाम हमेशा सामने आएंगे। इवान्स प्रिचार्ड का मानना है कि जादू और धर्म सभी समाजों में पाए जाते हैं।

सभी समाजों में जादू, विज्ञान और धर्म का प्रभाव है। लेकिन प्रभाव की सीमा समान नहीं है। उदाहरण के लिए यदि कोई समाज संस्कृति के निचले स्तर पर रहता है जैसे कि आदिवासी और पिछड़ा वर्ग तो जादू और धर्म का दायरा बड़ा होगा। इस समाज के बड़े सदस्य जादुई प्रथाओं और अनुष्ठानों पर बहुत अधिक निर्भर होंगे। हालाँकि यदि समाज में उच्च स्तर की संस्कृति है तो जादू और धर्म के लिए कम जगह होगी और विज्ञान के लिए अधिक स्थान होता है।

दूसरे शब्दों में उन्नत समाजों में विज्ञान का प्रमुख स्थान है जबकि पिछड़े समाजों में जादू और धर्म का अधिक अभ्यास हैं। टाइलर के जादू के सिद्धांत को फ्रेज़र द्वारा सुधारा गया है। सामाजिक मानव विज्ञान पर साहित्य में टाइलर अपने दो शास्त्रीय कार्यों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकों में टायलर ने सिद्धांत के रूप में जो कुछ भी प्रतिपादित किया है उसे फ्रेज़र द्वारा चर्चा और विश्लेषण के लिए लिया गया है। टाइलर की व्याख्या करते हुए फ्रेज़र सिद्धांत ने कहा कि सहानुभूति का नियम जो कहता है कि जनजातीय लोग भौतिक चीज़ों को दो समान चीज़ों के बीच सहानुभूति के रूप में देखते हैं। सहानुभूति दो प्रकार की होती है। (1) बाहरी समानता के आधार पर, उदाहरण के लिए, पीलिया के रंग और सोने के रंग के बीच; और (2) संपर्क के आधार पर। इन दो सहानुभूति के आधार पर फ्रेज़र ने जादू के तीन सिद्धांत दिए हैं। (1) सहानुभूति का सिद्धांत (2) समानता का सिद्धांत और (3) संपर्क का सिद्धांत। फ्रेजर के जादू के सिद्धांत का मानना है कि जब एक आदिवासी जादू का अभ्यास करता है तो वह इसे वैसे ही करता है जैसे उसने इसे सीखा है और उसे जादू के सिद्धांतों से कोई लेना–देना नहीं है उसका सरोकार केवल परिणाम से है। यही कारण है कि फ्रेज़र जादू को अर्ध–कला और अर्ध–विज्ञान मानते हैं। जादू के दो मूल उद्देश्य हैं। पहला जादू के माध्यम से कुछ उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है और दूसरा कुछ अवांछित घटनाओं को टाला जा सकता है। पहला उद्देश्य टोना–टोटका और दूसरा टोना कहा जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि टायलर ने जादू के कुछ मूलभूत सिद्धांत दिए हैं जो आदिवासियों में पाए जाते हैं। फ्रेज़र द्वारा इन मूल सिद्धांतों को और अधिक विस्तृत पुनर्व्याख्या और पुनर्पाठ किया गया है। जादू–टोना और टोना–टोटका में विभाजित करने का श्रेय इस क्षेत्र में एक और महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी परिकल्पना यह है कि जादू और धर्म समाज को राजनीतिक एकजुटता प्रदान

करते हैं। फ्रेज़र और दुर्खीम दोनों जादू और धर्म को राजनीतिक एकता के स्रोत के रूप में देखते हैं।

5.7 जादू के प्रकार

सामाजिक नृविज्ञान के छात्र अक्सर दो प्रकार के जादू में अंतर करते हैं। पहला प्रकार जिसे फ्रेज़र द्वारा नाम दिया गया है उसे इमिटेटिव या होम्योपैथिक जादू कहा जाता है जबकि दूसरे को संक्रामक जादू कहा जाता है। दो प्रकार के जादू का वर्णन करते हुए हर्स्कोविट्स लिखते हैं दोनों को लाइक टू लाइक के सिद्धांत के अनुसार संचालित करने के लिए आयोजित किया जाता है जिसे सहानुभूति का सिद्धांत भी कहा जाता है।

संक्रामक जादू का उदाहरण तब मिलता है जब कोई शिकारी उसकी चालाकी या उसकी ताकत हासिल करने के लिए उसकी हत्या का खून पीता है।

अनुकरणात्मक जादू एक ऐसे नृत्य के प्रदर्शन में पाया जा सकता है जिसमें शिकार में सफलता सुनिश्चित करने के लिए एक जानवर की नकली हत्या की गई थी। उपरोक्त दोनो प्रकार के जादू न तो पूरे क्षेत्र का गठन करते हैं और न ही वे उन कुछ प्रथाओं से अनुपस्थित हैं जिन्हें धार्मिक शब्द प्रथागत रूप से दिया जाता है। फिर भी जादू की एक और टाइपोलॉजी है जिसे 'ब्लैक' और श्व्हाइटश जादू भी कहा जाता है।

काले जादू के कुछ बुरे इरादे होते हैं। इसके अनुसार पीड़ित को कुछ चोट लगी है।

सफेद जादू अपने इरादे में लाभकारी है। सामाजिक मानवशास्त्रीय साहित्य में काले जादू पर बहुत जोर दिया जाता है। इसका कारण टूफोल्ड है इसमे अन्वेषक के लिए यह चुनौती उजागर करने की है कि उसके मुखबिर कम से कम प्रकट करने के इच्छुक हैं। हालांकि इससे भी अधिक लोगों के लिए काले जादू की नाटकीय अपील करने की होती है। एक बार इसके बारे में बात करने की इच्छा स्थापित हो जाने के बाद मुखबिर इस विषय पर आनंदित और विपुल विस्तार के साथ ध्यान केन्द्रित करेंगे और सफेद जादू को छोड़ दिया जाएगा। टेलीविज़न पर अलग–अलग नामों से प्रस्तुत किए जाने वाले डरावने शो काले जादू की कई प्रथाओं को दर्शाते हैं। अगर बदला लेना ही है तो जादूगर पीड़ित की मिट्टी की मूर्ति बना कर उसे तरह–तरह की पीड़ा देता है।

बदले में इन दर्दों को पीड़ित द्वारा अनुभव किया जाता है। हमारे पास दुनिया के विभिन्न हिस्सों से जादू के असंख्य उदाहरण हैं। हालाँकि सफेद जादू के उदाहरण बहुत कम हैं। जादू की इस श्रेणी में बहुत सी देशी दवाओं को शामिल करने के लिए भी विस्तार किया गया है। आश्चर्य की बात यह है कि साक्षर लोगों में भी सफेद और काले जादू का प्रचलन है। हालाँकि साक्षरता और शिक्षा में वृद्धि कई जादुई प्रथाएँ प्रचलन से बाहर हो रही हैं।

5.7.1 जादू टोने

रोग और कठिनाइयाँ मानव जाति के लिए आम हैं इन शारीरिक व्याधियों या सामाजिक संकटों को दूर करने के लिए लोगों के पास उपायों की एक सूची है। चिकित्सा के धर्मनिरपेक्ष अभ्यास के लिए परिसर अलौकिकता से अप्रभावित इसलिए सभी समाजों में पाया जाता है। ऐसा ज्ञान जो निश्चित रूप से अनुभवजन्य था और जिसका वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण नहीं किया गया था आमतौर पर सभी लोगों के लिए उपलब्ध और उपयोग किया जाता था। इस तरह की बीमारियों के इलाज के लिए जादुई प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है जैसे कि किसी दुष्ट शमन या जादूगर द्वारा इंजेक्ट की गई जहरीली शक्ति को अपने शिकार में लौटाना। जिन व्यक्तियों ने अलौकिक शक्ति प्राप्त या विरासत में प्राप्त की थी या खरीदी थी और उन पर आधारित प्रक्रियाओं को इन गैर–भौतिक कारणों से बीमार होने वाले व्यक्तियों की मदद करने के लिए कहा गया था। सभी समाजों में शमन केवल अंशकालिक कार्यकर्ता थे जो लोगों का इलाज करने या कुछ समारोहों में लगे हुए थे जिसके लिए उनकी शक्ति भी उन्हें फिट करती थी। आदिम समाजों में लोगों के बीच चिकित्सा पद्धति इस प्रकार हर जगह कुछ वास्तव में उपयोगी उपकरणों और दवाओं की विशेषता है लेकिन अधिक घातक बीमारियों के कारण और बाद के इलाज के लिए अलौकिक का सहारा लेने का यह सिद्धांत था। प्रत्येक समाज के अपने विशेषज्ञ होते हैं जो अपने कौशल से रोगों का इलाज करते हैं। इन्हें जादू टोना, शमन, ओझा या भोपा कहा जाता है। शमन या ओझा वे होते हैं जिनके पास जादू–टोने का पता लगाने और जादू–टोना करने वाले व्यक्ति को ठीक करने की शक्ति होती है। वे भविष्य में देखने, नुकसान से बचने, खुद को बदलने और अलौकिक कार्यों को पूरा करने में सक्षम होने का दावा करते हैं।

इवांस–प्रिचर्ड जिन्होंने 1926–36 के दौरान दक्षिणी सूडान के अज़ांडों के बीच काम किया है, उन्होंने जादू–टोना और भविष्यवाणी के बारे में विस्तृत जानकारी दी है। अज़ांडे जनजाति में कोई भी दुर्भाग्य हो सकता है और आम

तौर पर जादू टोना के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। अज़ांडे इसे वास्तविक मानते हैं। उनका मानना है कि डायन दूसरों को नुकसान पहुंचाने के लिए अपने जादू टोने की आत्मा को भेजती है। पीड़ित यह पता लगाता है कि कौन उसे चोट पहुँचा रहा है फिर वह तांत्रिक या भविष्यवक्ता से सलाह लेता है। यह काफी लंबी और जटिल प्रक्रिया हो सकती है। जब अपराधी का खुलासा हो जाता है तो उससे अनुरोध किया जाता है कि वह अपने दुर्भावनापूर्ण प्रभाव को वापस ले ले। यदि बीमारी के मामले में वह ऐसा नहीं करता है और व्यक्ति मर जाता है तो मृत व्यक्ति के रिश्तेदार भविष्य में मामले को प्रमुख और सटीक प्रतिशोध में ले जा सकते हैं या वे आज के रूप में एक काउंटर बना सकते हैं। जादू टोना को नष्ट करने के लिए आदिवासी समुदाय मुख्य रूप से देखे जाते है उदाहरण के लिए यदि मक्का की फसल रोगग्रस्त है तो इसे जादू टोना माना जाता है। यदि दुधारू गाय सूख जाती है तो यह जादू–टोना के कारण है। जादू टोना की घटना को विभिन्न कारणों से समझाया गया है। हालांकि प्राकृतिक कारण है लेकिन दुर्घटना हुई ही क्यों और उस व्यक्ति विशेष को क्यों हुई? बैल की चपेट में आने से एक व्यक्ति घायल हो गया। यह आदमी क्यों? और यह बैल क्यों? जादू टोना विशेष समय में विशेष स्थानों पर और विशेष व्यक्तियों के संबंध में हानिकारक घटनाओं के उत्पादन में एक प्रेरक कारक है। अगर कोई पेड़ गिरकर किसी आदमी को मार देता है तो यह स्वाभाविक है लेकिन जब वह गुजर रहा था तो वह क्यों गिर गया। यह निर्धारित करने के लिए एक दैवज्ञ से परामर्श किया जाता है कि क्या कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति पर जादू कर रहा है। दैवज्ञ के सबसे लोकप्रिय प्रकारों में से एक विष दैवज्ञ है। मुर्गों को झाड़ी में ले जाया जाता है और उन्हें थोड़ी मात्रा में जहर दिया जाता है। अगर बहेलिया जिंदा रहती है तो आदमी को डायन करार दिया जाता है। जादू–टोना करने वाले वे जादूगर नहीं हैं जो बीमारियों को ठीक करते हैं। अन्य प्रकार के विशेषज्ञ हैं जो जादू का प्रतिकार करते हैं।

5.8 जादू और विज्ञान

टाइलर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने जादू को एक विज्ञान के रूप में वर्णित किया। जिस सवाल ने उन्हें परेशान किया और उनकी जिज्ञासा उन्होंने जगाई वह यह थी कि जब वैज्ञानिक रूप से धर्म का कोई आधार नहीं है तो आदिवासी इसका पालन क्यों करते हैं? सवाल वाजिब था और जवाब मांगा। टाइलर ने देखा कि आदिवासी स्वयं जानते थे कि जादू सच नहीं होता फिर भी उनके जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। उन्होंने प्रश्न का उत्तर देने पर

विचार किया–

(1) जादू सामान्य ज्ञान व्यवहार से संबंधित है।

(2) जो जादू करता है वह वास्तव में प्रकृति भी करती है।

(3) जब जादू एक निश्चित क्रिया करने में विफल रहता है तब भी इसमें कोई दोष नहीं है जादू के अभ्यास में कुछ गलत रहा होगा।

(4) अगर जादू कुछ चोट पहुँचाता है तो हमेशा काउंटर मैजिक होता है।

(5) जादू की सफलता की कहानियाँ इसकी असफलताओं को पछाड़ देती हैं।

टाइलर का तर्क है कि व्यवस्थित तरीके से जादू का विकास विज्ञान का रूप ले लेता है। उनके तर्क का सार यह है कि जादू प्रकृति के सिद्धांतों पर चलता है। प्रकृति प्रत्यक्षवादी नियमों से चलती है अतः यह भी एक विज्ञान है। फ्रेजर जादू को शुद्ध विज्ञान नहीं मानता हालाँकि वह मानते हैं कि जादू एक अर्ध–विज्ञान है। उनके अनुसार जादू कुछ तर्क और नियमों के आधार पर होता है। साधारण लोग यह नहीं समझते कि जादू–टोने का अभ्यास उन नियमों पर किया जाता है जो विज्ञान के समान हैं। लोग केवल इसके अनुप्रयुक्त पहलू को देखते हैं वे उन सिद्धांतों के बारे में नहीं सोचते जो जादुई प्रदर्शन को निर्देशित करते हैं। एक जादूगर के लिए जादू केवल एक कला है, वह यह भी नहीं समझता कि ये सिद्धांत हैं जो पूरी तरह से विज्ञान पर आधारित हैं सिद्धांत रूप में जादू अमूर्त कानूनों पर आधारित है।

मलिनॉस्की ने ट्रोब्रिएंड द्वीपों के लोगों के बीच काम किया है। उन्होंने आकड़ों का एक समृद्ध भंडार उत्पन्न किया है हालांकि उन्होंने जादू की वैज्ञानिक प्रकृति के प्रश्न को नोटरीकृत किया है। वह एक कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य लेता है और कहता है कि जादू समाज में मौजूद है लोग इसका अभ्यास करते हैं क्योंकि इसके कुछ कार्य पूरे करने होते हैं। हालांकि वह स्वीकार करता है कि जादू और विज्ञान के तरीके यदि समान नहीं हैं तो वास्तव में समान हैं। जादू और विज्ञान दोनों कारण और प्रभाव के तर्क पर काम करते हैं। इवांस–प्रिचर्ड टाइलर और फ्रेज़र के समान विचारधारा वाले व्यक्ति थे। अपने अलग–अलग दृष्टिकोण के बावजूद तीनों निम्नलिखित परिकल्पनाओं पर सहमत हैं।

(1) कोई एक अलौकिक शक्ति है इस शक्ति के दो चेहरे हैं। इसका एक मुख कल्याणकारी है जो मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करता है। इसका दूसरा रूप कुरूप और हानिकारक है जो विज्ञान और परोपकारी चेहरे की पड़ताल करता है जबकि कुरूप चेहरे पर जादू करता है। विज्ञान और जादू अलौकिक शक्ति के दो पहलू हैं।

(2) रूथ बेनेडिक्ट का तर्क है कि जादू विज्ञान नहीं है। विज्ञान के निष्कर्ष सत्यापन योग्य हैं जबकि जादू के निष्कर्ष किसी भी सत्यापन से परे हैं।

(3) विज्ञान में निरंतर प्रयोग होते रहते हैं पिछली कई शताब्दियों के दौरान इसने जबरदस्त प्रगति की है कोई प्रगति दर्ज करने के बजाय जादू तेजी से बेखबर होता जा रहा है। अब बहुत कम लोग जादू में अपना विश्वास दिखाते हैं।

(4) विज्ञान का आधार शुद्ध तर्क है जबकि जादू का प्रमुख आधार दोषपूर्ण है।

5.9 जादू और धर्म

जादू और धर्म के बीच क्या संबंध है इसमें व्यक्ति अधिकांश धार्मिक संस्कारों में जादुई प्रतीकवाद के उदाहरण देता हैं और जादू का एक अच्छा सौदा आत्माओं के संदर्भ में शामिल बताता है। वास्तव में जादू और धर्म के बीच स्पष्ट रूप से भेद करना वास्तव में संभव नहीं है। धर्म और जादू में मूलभूत अंतर है। सबसे पहले एक धर्म के अनुष्ठान सार्वजनिक और सामूहिक होते हैं। वे जादू–धार्मिक गतिविधि की अवधि के लिए अपनी सभी ऊर्जाओं को अवशोषित करते हुए लोगों को समग्र रूप से प्रभावित करते हैं। जैसे फसल की बुवाई और दावत इसी तरह के उत्सवों के लिए बड़ी संख्या में लोगों का यह जमावड़ा पूरे समुदाय को खुशी और सद्भाव के मूड में जोड़ता है। यह एक संगठित समुदाय की सामाजिक भावनाओं को गंभीर और सामूहिक अभिव्यक्ति देता है जिस पर समाज का संविधान निर्भर करता है। जादुई–धार्मिक संस्कार किसी उत्सव के लिए नहीं बल्कि आने वाली बुराई को दूर करने या हटाने के लिए हैं। शिकार से संबंधित जादुई प्रथाओं में कुछ संस्कार होते हैं जो जानवर को आसानी से मारने में मदद करते हैं। कभी–कभी पूरे शिकार का प्रदर्शन एक आनुष्ठानिक नृत्य में किया जाता है जिसमें जानवर की त्वचा का कुछ हिस्सा होता है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जादू धर्म से संबंधित है। मलिनॉस्की

और लीच की फील्ड रिपोर्टें हैं जो यह स्थापित करती हैं कि लक्ष्यों की सफल प्राप्ति के लिए जादू का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए मलिनॉस्की की रिपोर्ट है कि जब एक मछुआरा समुद्र की धाराओं पर तैरता है तो वह जादू करता है और मानता है कि उसकी नाव किसी त्रासदी का सामना नहीं करेगी। ट्रोब्रिंडर्स भी अपने प्रिय का दिल जीतने के लिए जादू का अभ्यास करते हैं। दुर्खीम जो धर्म के समाजशास्त्र के संस्थापक हैं धर्म और जादू में कोई अंतर नहीं देखते हैं उसके लिए दोनों प्रथाएं कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए होती हैं।

5.10 सारांश

मुख्य रूप से देखा जाय तो जादू में व्यक्ति अलौकिक शक्ति को अपने वश (नियंत्रण) में लाने का प्रयत्न करता है और उसके द्वारा अपनी मनोकामना को पूरी करवाना चाहता है। जिसके माध्यम से आदिम समाज के लोग अपने कार्यों का संपादन करते थे। हालाँकि वर्तमान समय में इसका प्रचलन धीरे–धीरे अब समाप्त हो रहा है। क्योंकि आधुनिक समय में वैज्ञानिक जिस तथ्य पर विश्वास करता है उसको प्रयोग के जरिये परखने का प्रयास करता है। इस प्रकार विज्ञान प्राकृतिक शक्तियों पर नियंत्रण का एक साधन है।

5.11 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 टायलर की धर्म की परिभाषा बताएं तथा धर्म के तत्व क्या हैं इसे परिभाषित कीजिए।

प्र. 2 जादू के तत्वों का पूर्ण वर्णन तथा जादू के सिद्धांतों का विश्लेषण कीजिए ।

प्र. 3 जादू विज्ञान से कैसे संबंधित है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 मैजिक साइंस एंड रिलिजन पुस्तक के लेखक कौन है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) मैक्स वेबर

(स) मैलिनोवस्की (द) मैनहीम

प्र. 2 टोना एक प्रकार का क्या है?

(अ) धर्म है (ब) जादू है

(स) कुछ नही (द) विज्ञान है

प्र. 3 जादू का वर्गीकरण अनुकरणात्मक तथा संक्रामक जादू के रूप में किसने किया है?

(अ) जेम्स फ्रेज़र (ब) मैलिनोवस्की

(स) दुर्खीम (द) रुथ बेनिदिक्ट

प्र. 4 किसने धर्म का लौकिक दृष्टिकोण दिया है?

(अ) मैक्समूलर (ब) दुर्खीम

(स) वेबर (द) कोई नही

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (स)

प्र. 2 (द)

प्र. 3 (अ)

प्र. 4 (ब)

संदर्भ सूची

1. Haralombus, M. 1980; Sociology - Themes and Perspectives, Oxford University Press.

2. Madan, T. N. 1991; Religion in India, Oxford University Press.

3. Madan, T. N. 1997; Modern Myths, Locked Minds, Oxford University Press.

4. Macionis J. J.1997; Sociology, Prentice Hill, Inc.

5. Schaeffer, R. T. & Lamm, R. P. 1992; Sociology, McGraw Hill Inc.

6. Giddens, A. 1989; Sociology, Blackwell Publisher Ltd.

7. Gore, M. S. 1991; Secularism in India, Indian academy of social science.

8. Jain, M.S. 2000; Muslim ethos, Rawat Publication.

9. Weber, M; Sociology of Religion.

10. Chattopadyaya, D. P. 1959; Lokyat: A Study in Ancient Indian Materialism People's Publishing House.

इकाई 6 : इमाईल दुर्खीम धर्म एवं सामाजिक एकीकरण

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 इमाईल दुर्खीम धर्म का समाजशास्त्र

6.3 धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दुर्खीम के विचार

6.4 पवित्र और अपवित्र

6.5 धर्म और सामूहिक चेतना

6.6 सामाजिक एकीकरण

6.7 धर्म के प्रकार्य

6.8 धर्म में परिवर्तन

6.9 सारांश

6.10 बोध प्रश्न

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इमाईल दुर्खीम का धर्म के समाजशास्त्र एवं धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध उनकी की व्यख्या कर सकेंगे।

- इमाईल दुर्खीम के पवित्र एवं अपवित्र धर्म के स्वरूप तथा उसके विभिन्न वर्णन की व्यख्या कर सकेंगे साथ ही साथ इमाईल दुर्खीम की धर्म के सम्बन्ध में सामूहिक चेतना की व्यख्या कर सकेंगे।

- इमाईल दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी सामाजिक एकीकरण एवं धर्म में बदलाव का महत्व भारत के संदर्भ में आप इसकी व्यख्या कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इमाईल दुर्खीम को धर्म के समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। उनका तर्क है कि धर्म के कुछ तत्व हैं और ये तत्व समाज द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। उनके लिए धर्म वस्तुनिष्ठ है, यह एक वास्तविकता है। वह आगे कहते हैं कि धर्म व्यक्ति का उत्पाद नहीं है यह समाज की संतान है। जब हम पवित्र, अपवित्र, चर्च और पंथ पर चर्चा करते हैं, तो हम दुर्खीम का उल्लेख करते हैं और कहते हैं कि ये पहलू समाज द्वारा बनाए गए हैं। दूसरे शब्दों में जो चीजें समाज के लिए पवित्र हैं वे धर्म में पवित्र हैं; जो चीजें समाज के लिए अपवित्र हैं वे व्यक्ति के लिए अपवित्र हैं। जिन वस्तुओं का सम्मान किया जाता है वे हिंदुओं के लिए पवित्र होती हैं। इन्हें देवी–देवताओं को चढ़ाया जाता है। अपवित्र का उपयोग मूल्य है इस प्रकार दुर्खीम दुनिया की सभी चीजों को पवित्र और अपवित्र में वर्णित करता है।

6.2 इमाईल दुर्खीम धर्म का समाजशास्त्र

दुर्खीम के अनुसार धर्म पवित्र (Sacred) वस्तुओं के संबंध में विश्वास और व्यवहार की समुचित व्यवस्था है। धर्म अपने अनुयायियों को एक नैतिक समुदाय में एकजुट करता है। प्रत्येक समाज अपनी तमाम वस्तुओं एवं जीवन के पक्षों को दो हिस्सों में बाँट देता है, एक है पवित्र (Sacred) और दूसरा है लौकिक (Profane)। पवित्र वस्तुओं में न तो कोई अलौकिकता है और न ही कोई आध्यात्मिकता । पवित्र वह है जो समाज, समूह और सामूहिकता का प्रतिनिधित्व करता है। भारत के संदर्भ में यह वट वृक्ष, गंगा नदी कोई सूफी संत, कोई आदरणीय गुरु हो सकते हैं। पवित्र को महत्त्वपूर्ण मानकर इनसे दूरी बनाई जाती है। इनके प्रति असम्मानजनक गतिविधि का निषेध (Taboo) होता है। लौकिक अथवा प्रोफेन गंदा और अपवित्र नहीं है। यह महत्त्वपूर्ण है जैसे हवा, पानी, भोजन, आवास इत्यादि परंतु ये समाज, समूह, सामूहिकता का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। ये इतने नियमित और आम हैं कि इनके प्रति सरलता से श्रद्धा का भाव उत्पन्न करना कठिन है।

दुर्खीम की चर्चा में पवित्र और लौकिक का यह विभाजन बहुत हद तक सामाजिक और व्यक्तिगत का विभाजन है। धर्म की परिभाषा में दुर्खीम ने चर्च

शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ है कोई भी ऐसा संगठन जो एक समूह के धार्मिक जीवन को संगठित करता है। साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक धर्म को मानने वाले सभी लोग जिस प्रकार एक साथ एकजुटता का अनुभव करते हैं। दुर्खीम के अनुसार आदिम समाजों में भी चर्च जैसा संगठन होता था। ऐसे संगठन भले ही किसी भवन या धर्म स्थल में न हों परंतु वे सामूहिक धार्मिक अनुष्ठानों, कर्मकांडों को संगठित करते थे।

दुर्खीम अपने आरंभिक बौद्धिक जीवन में सामाजिक नियंत्रण के लिए प्रथा, धर्म आदि को महत्त्वपूर्ण मानते थे। धर्म से समाज की नैतिक एकता स्थापित होती है समाज में श्रमविभाजन नामक पुस्तक में एवं बाद के अपने निबंधों में उन्होंने ऐसा लिखा। 1905 में रूस के एक निर्वासित विद्वान राजकुमार क्रोपोटकिन जो फ्राँस में स्थापित थे उन्होंने एक पुस्तक ईसाई धर्म का पतन (Decline of Christianity) लिखा। इस पुस्तक में क्रोपोटकिन ने लिखा धर्म तो समाप्त हो गया है। इसके कारण समाज की नैतिक एकता में योगदान का प्रश्न ही नहीं उठता है। दुर्खीम ने इस पुस्तक की मूल अवधारणा यानी धर्म का पतन हो गया है। को मान लिया परंतु उन्होंने धर्म का स्वयं व्यापक विश्लेषण करने का निर्णय लिया जिसके परिणामस्वरूप 1912 में उन्होंने धार्मिक जीवन के आरंभिक स्वरूप (Early Forms of Religious Life) नामक पुस्तक लिखी। रैन्डल कॉलिन्स (Randal Collins) ने 1988 में लिखा कि यह पुस्तक दुर्खीम की सबसे प्रभावी पुस्तक है।

दुर्खीम ने इस पुस्तक की सामग्री स्वयं नहीं जुटाई। ब्रिटेन के अपने प्रशंसक और मित्र राबर्टसन स्मिथ (Robertson Smith) से जो ऑस्ट्रेलिया में पाँच वर्षों से अधिक क्षेत्र कार्य कर चुके थे उनसे ही अध्ययन की सामग्री ले ली। दुर्खीम स्वयं कभी ऑस्ट्रेलिया नहीं गए। इसके चलते जार्ज रीजर ने दुर्खीम पर यह आरोप लगाया कि दुर्खीम ने अनुभवजन्य विज्ञान अथवा इम्पीरिकल साइन्स के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के बावजूद प्रकाशित आँकड़ों से अध्ययन किया।

ऑस्ट्रेलिया के उत्तर–पश्चिम में मरुभूमि के पास अत्यन्त पिछड़े आदिवासी अरूण्टा को उन्होंने अपने अध्ययन का विषय बना लिया। इसका अध्ययन राबर्टसन स्मिथ ने किया था एवं बाद में इसका अध्ययन मार्गारिट मीड ने भी किया। दुर्खीम ने धर्म की चर्चा में चार पक्षों पर अपना ध्यान आकर्षित किया। प्रथम तो यह कि धर्म का स्वरूप और चरित्र क्या है? दूसरा यह कि धर्म की उत्पत्ति के कारणों अवस्थाओं एवं परिस्थितियों का पता लगाया जाए। तीसरा यह कि सरल समाजों में धर्म की भूमिका और विशेष रूप से धर्म के

प्रकार्य क्या थे? अंततः यह भी कि किन कारणों से धर्म कमजोर हो गया, औद्योगिक समाज में धर्म की स्थिति क्या है एवं भविष्य में मानव समाज में धर्म की क्या स्थिति होगी?

दुर्खीम ने धर्म संबंधी अपनी पुस्तक The Elementary Forms of Religious Life(1912) में यह भी सिद्ध करना चाहा कि धर्म एक शक्तिशाली सामाजिक तथ्य है। यह मानसिक जीवन का उच्चतम स्वरूप अथवा चेतना है। धर्म की चर्चा में संभवतः दुर्खीम जेम्स फ्रेजर (James Frazer) से भी प्रभावित थे। दुर्खीम के अनुसार धर्म के जीवाणु अपने आरंभिक स्वरूप में सबसे आदिम समाजों में भी मौजूद थे। इसका अर्थ यह नहीं कि अलौकिकता अथवा ईश्वर की धारणा आदिम धर्मों के भी लक्षण थे। महत्त्वपूर्ण तथ्य ये है कि प्रत्येक समाज अपनी तमाम वस्तुओं को दो हिस्सों में (एक पवित्र अथवा समूह संबंधी एवं दूसरा लौकिक यानी व्यक्ति संबंधी) बाँट देता है। धर्म पवित्र वस्तुओं यानी सामूहिकता से जुड़ा है। समाज ही ईश्वर है। दुर्खीम के अनुसार समाज ही धर्म का स्रोत है समाज ही ईश्वर है। दुर्खीम ने तीन दृष्टिकोणों से एक धर्म को सामाजिक घटना कहा है।

1. धर्म अपनी संपूर्णता में समाज द्वारा निर्धारित घटना है समाज और समूह ही धर्म है।

2. धर्म सामूहिक चेतना में सामाजिक यथार्थ का प्रतीक है धर्म की धारणाएँ समाज की धारणाएँ हैं। धर्म समाज एवं समूह के महत्त्व, शक्ति एवं प्रभाव को प्रदर्शित करता है। समाज ही ईश्वर है। धर्म व्यक्तिगत हो ही नहीं सकता है धर्म का अर्थ ही है समूह एवं सामाजिकता।

3. धर्म समाज की आवश्यकताओं को सामूहिकता की आवश्यकताओं को पूरा करता है उनके अनुसार धर्म समाज के लिए प्रकार्य उत्पन्न करता है।

6.3 धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दुर्खीम के विचार

18वीं सदी विकासवादी सिद्धांत की सदी थी। दुर्खीम और मैक्स वेबर ही नहीं कार्ल मार्क्स ने भी विकासवाद के सिद्धांत में योगदान दिया। प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य समाज की आवश्यकताओं के संदर्भ में धर्म का अध्ययन करता है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण मुख्य रूप से इन जरूरतों को पूरा करने के लिए धर्म के योगदान से संबंधित है। इस दृष्टिकोण से समाज को कुछ हद तक सामाजिक

एकजुटता, मूल्य सहमति, और इसके हिस्सों के बीच सद्भाव और एकीकरण की आवश्यकता होती है। धर्म का कार्य वह योगदान है जो ऐसी कार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं को पूरा करने के लिए करता है जिसे सामाजिक एकजुटता में प्रकार्य का कार्य कर सके ।

6.4 पवित्र और अपवित्र

1912 में पहली बार प्रकाशित द एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलिजियस लाइफ में दुर्खीम ने प्रस्तुत किया जो संभवतः कार्यात्मक दृष्टिकोण से धर्म की सबसे प्रभावशाली व्याख्या है। दुर्खीम ने तर्क दिया कि सभी समाज दुनिया को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैंरू पवित्र और अपवित्र। धर्म इसी विभाजन पर आधारित है। यह पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और प्रथाओं की एक एकीकृत प्रणाली है, अर्थात अलग और निषिद्ध चीजों को कहना। यह महसूस करना महत्वपूर्ण है कि पवित्र वस्तु से किसी को केवल उन व्यक्तिगत चीजों को नहीं समझना चाहिए जिन्हें देवता या आत्मा कहा जाता है। एक चट्टान, एक पेड़, एक झरना, एक कंकड़, लकड़ी का एक टुकड़ा, एक घर, एक शब्द में कुछ भी पवित्र हो सकता है।

6.5 धर्म और सामूहिक चेतना

दुर्खीम का मानना था कि विज्ञान सम्बन्धी चेतना बनाने वाले साझा मूल्यों और नैतिक विश्वासों के बिना सामाजिक जीवन असंभव है। उनकी अनुपस्थिति में कोई सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक एकजुटता या सहयोग नहीं होगा। अर्थात् कोई समाज नहीं होगा। धर्म सामूहिक चेतना को पुष्ट करता है समाज की पूजा उन मूल्यों और नैतिक विश्वासों को मजबूत करती है जो सामाजिक जीवन का आधार बनते हैं। उन्हें पवित्र के रूप में परिभाषित करके धर्म उन्हें मानव क्रिया को निर्देशित करने के लिए अधिक शक्ति प्रदान करता है। पवित्र के प्रति सम्मान का यह दृष्टिकोण वही रवैया है जो सामाजिक कर्तव्यों और दायित्वों पर लागू होता है। समाज की पूजा करने में लोग वास्तव में सामाजिक समूह के महत्व और उस पर अपनी निर्भरता को पहचानते हैं। इस तरह धर्म समूह की एकता को मजबूत करता है और यह सामाजिक एकता को बढ़ावा देता है। दुर्खीम ने सामूहिक पूजा के महत्व पर जोर दिया। नाटक और श्रद्धा से भरे धार्मिक अनुष्ठानों में सामाजिक समूह एक साथ आता है। साथ में इसके सदस्य सामान्य मूल्यों और विश्वासों में अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। सामूहिक उपासना के इस अत्यधिक आवेशित वातावरण

में समाज की एकता मजबूत होती है। समाज के सदस्य उन नैतिक बंधनों को व्यक्त करते हैं और समझते हैं जो उन्हें एकजुट करते हैं।

दुर्खीम के अनुसार देवताओं या आत्माओं में विश्वास जो आमतौर पर धार्मिक समारोहों के लिए ध्यान केंद्रित करता है भयभीत रिश्तेदारों की पैतृक आत्माओं में विश्वास से उत्पन्न हुआ है। देवताओं की पूजा वास्तव में पूर्वजों की आत्मा की पूजा है। चूँकि दुर्खीम का भी मानना था कि आत्माएँ सामाजिक मूल्यों की उपस्थिति का प्रतिनिधित्व करती हैं सामूहिक चेतना व्यक्तियों में मौजूद होता है। यह व्यक्तिगत आत्माओं के माध्यम से है कि सामूहिक चेतना का एहसास होता है। चूंकि धार्मिक पूजा में आत्माओं की पूजा शामिल है। दुर्खीम ने फिर से निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक पूजा वास्तव में सामाजिक समूह या समाज की पूजा है।

6.6 सामाजिक एकीकरण

दुर्खीम ने ऑस्ट्रेलिया की अति आदिम अरूण्टा जनजाति के धर्म की व्याख्या की। उनका तर्क था इस अति आदिम जनजाति का जो धर्म होगा वह निश्चित रूप से मानव समाज का सर्व प्राचीन धर्म होगा। अरूण्टा जनजाति का चिह्न एक बैल था। इस चिह्न को वे महत्व नहीं देते थे। अरुण्टा आठ कुलों में विभाजित हैं। कुल उनके लिए भोजन और सुरक्षा का स्रोत है। कुल अधिक महत्त्वपूर्ण है अरुण्टा कुल की ही पूजा करते हैं। कुल एक आम चीज है जो नियमित है। इसलिए इसके प्रति श्रद्धा का भाव पैदा करना कठिन है। इस कारण से कुल का एक चिह्न अथवा प्रतीक चुन लेते हैं। इसे ही वे टोटम (totem) कहते हैं। टोटम कुछ भी हो सकता है। इसके चुने जाने का सिद्धांत नहीं है। कुल ही टोटमवाद का स्रोत है समाज और समूह ही धर्म का स्रोत है। अरुण्टा जैसे आदिम समाज में टोटमवाद रूपी जो धर्म है उसके उदय का कारण उस समूह को महत्त्व देना है जो उनके लिए जरूरी है। कुल भोजन और सुरक्षा का स्रोत है। अरुण्टा जनजाति में कुल संपूर्ण जनजाति से अधिक महत्त्वपूर्ण है। संपूर्ण जनजाति से अधिक कुल अपने सदस्यों की आवश्यकता के प्रति प्रेरित है। टोटमवाद और सामान्य रूप से धर्म सामूहिक नैतिकता से पैदा होता है और अवैयक्तिक शक्ति बन जाता है। एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि सामूहिक चेतना से धर्म का स्रोत है परंतु सामूहिक चेतना आती कहाँ से है?

दुर्खीम ने कहा सामूहिक आत्मा सामूहिक चेतना सामूहिक नैतिकता जो लगभग पर्यायवाची शब्द हैं, का स्रोत समूह और समाज है। अरूण्टा के संबंध में

उन्होंने कहा कि धार्मिक शक्ति और कुछ नहीं बल्कि कुल का सामूहिक और अनाम बल है। सामूहिकता का यह भाव जो किसी एक भौतिक वस्तु में सामूहिकता को समाहित कर देता है। इतिहास के महत्त्वपूर्ण क्षणों में जब युगांतकारी घटनाएँ होती रहती हैं तब ऐसी स्थिति में धर्म पैदा होता है। समाज की सामूहिक चेतना ही धर्म ईश्वर और अन्य पवित्र वस्तुओं का है।

6.7 धर्म के प्रकार्य

दुर्खीम ने कहा धर्म समाज के लिए प्रकार्य उत्पन्न करता है। राबर्ट निस्बेट ने कहा दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत धर्म का सिद्धांत धर्म का सुसंगत प्रकार्यवादी सिद्धांत है। अमेरिकी समाजशास्त्री जेफरी अलेक्जेंडर (Jeffery Alecjander) ने कहा दुर्खीम के द्वारा धर्म की चर्चा करने से ही आधुनिक समय में संस्कृति अध्ययनों में फिर से रूचि बड़ी है। अनेक अमेरिकी समाजशास्त्रियों ने प्रकार्यवाद के प्रभाव के कारण कहा कि दुर्खीम का सिद्धांत धर्म का सबसे बेहतर सिद्धांत है। दुर्खीम के अनुसार धर्म से एकता होती है। इसके द्वारा नियमों को बल मिलता है। धर्म की यह व्याख्या प्रथम सुसंगत प्रकार्यवादी व्याख्या है। हैरी अलपर्ट ने जिन्होंने 1939 में एमिल दुर्खीम एंड हिज सोशिओलाजी नामक पुस्तक लिखी दुर्खीम के द्वारा धर्म के प्रकार्यों का जो विवरण दिया गया है उनका एक सुसंगत वर्गीकरण इस प्रकार है।

1. धर्म अनुशासन पैदा करता है और व्यक्तियों में आत्मानुशासन एवं संयम पैदा करता है।

2. धर्म लोगों को जोड़ता है जिससे धार्मिक अनुष्ठानों में लोग एक साथ जुड़ते हैं और अपने रिश्तों को मजबूत बनाते हैं।

3. धर्म समूह एवं समाज को पुनर्जीवित करता है धर्म साहस और जीवनी शक्ति का पुनर्संचार करता है यह सामूहिक एवं सामाजिक विरासतों को जिंदा करता है।

4. धर्म नई पीढ़ी को शाश्वत मूल्यों को प्रदान करता है।

5. धर्म एक भावनात्मक जोश या यूफोरिया पैदा करता है धर्म निराशा के भाव समाप्त करता है तथा विश्वास को घटने नहीं देता है।

धर्म अनुयायियों के नैतिक भाव और घाटे की भावना को शोक एवं दुःख की भावना को व्यवस्थित करता है। आर. के. मर्टन ने दुर्खीम के धर्म संबंधी

प्रकार्यात्मक विश्लेषण की आलोचना की। मर्टन के अनुसार धर्म मानव इतिहास में और आज भी विभाजन एवं संघर्ष का कारण रहा है। एक समाज में जब एक से अधिक धर्म होते हैं तब वे विभाजन और संघर्ष का स्थायी स्रोत हो जाते हैं। सामूहिक रूप से जिन अनुष्ठानों को निभाया जाता है उनमें एक उजास और उच्छवास का भाव तो होता है परंतु इससे संघर्ष की भावना भी बढ़ती है। भारत में धर्म एक विभाजनकारी माध्यम रहा है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने धर्म का इस्तेमाल करके अपने साम्राज्यवादी हितों को पूरा किया। फ्राँस के विद्वान ईसाई पुरोहित एवे डीवायस ने बहुत पहले कहा था भारत के लोग और किसी बात के लिए संघर्ष करें या न करें धर्म के वास्ते जरूर संघर्ष कर लेते हैं।

दुर्खीम ने यह बार–बार कहा कि धर्म की एक सामाजिक व्याख्या ही की जा सकती है। समाजशास्त्र में वास्तविक कारणों की खोज अर्थात् कारणात्मक व्याख्या की जाती है। इसके साथ ही प्रकार्यात्मक व्याख्या की जाती है। धर्म के संदर्भ में कारणात्मक एवं प्रकार्यात्मक व्याख्या एक ही है। धर्म की न तो भौतिक, जैविक और न हो मनोवैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है। इसलिए उन्होंने इ. बी. टायलर (E.B. Taylor) के आत्मावाद (Animism) को खारिज कर दिया। प्रकृतिवाद में भौतिक प्राकृतिक शक्तियों की अस्वैच्छिक पूजा प्रार्थना और श्रद्धा को मूल कारण माना जाता है। ऐसे सिद्धांत इस विचार पर आधारित थे कि मानव ने वास्तविक रूप से अवलोकन के योग्य यथार्थ पर एक ऐसे अवास्तविक विश्व को थोप दिया है जो पूरी तरह से काल्पनिक छवियों पर आधारित है परंतु जो मानव की आत्मा को उसके स्वप्न में डराते हैं।

दुर्खीम ने कहा एक अनुसंधानकर्ता का कार्य यह है कि उस वस्तुनिष्ठ अस्तित्व के यथार्थ का पता लगाए जो धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों का कारण है जो उसका सार तत्त्व है और उसका लक्ष्य है। उन्होंने कहा मानव समाज में आदिम स्थिति में एकता के स्रोत आदिम जीवन की समानता एवं जनमत में निहित थे। ये स्रोत अपर्याप्त थे। इसलिए एकता की वास्तविक आवश्यकता के कारण आदिम मानव ने धर्म को गढ़ा, ईश्वर को गढ़ा, धार्मिक अनुष्ठानों, धर्म स्थलों को संगठित एवं विकसित किया। धर्म में कुछ भी अलौकिक नहीं है। अलौकिकता समाज द्वारा विकसित एवं समाज द्वारा आरोपित है।

6.8 धर्म में परिवर्तन

दुर्खीम ने कहा औद्योगिक जटिल समाजों में श्रमविभाजन आरंभ हो गया है। गत्यात्मक घनत्व अर्थात् अंतर्क्रिया एकता में वृद्धि तथा जनसंख्या के आकार

एवं घनत्व में वृद्धि से व्यक्तिगत श्रम वितरण एवं अंतर्निर्भरता उभर गई है। इसके कारण धर्म की आवश्यकता नहीं रह गई है। धर्म का एकात्मक कार्य अथवा नैतिक एकता में धर्म का योगदान नहीं रह गया है। इससे धर्म कमजोर हुआ है परन्तु यह समाप्त नहीं हुआ है। भविष्य में भी एक अवशेष के रूप में धर्म का अस्तित्व रहेगा। कार्ल मार्क्स ने कहा था धर्म भविष्य में समाप्त हो जाएगा। वेबर ने कहा–युक्तिपूर्णता (Rationality) की शक्तियाँ धर्म अथवा भावना की शक्ति को कर देंगी।

टी. एन. मदान ने दुर्खीम के निष्कर्ष को इतिहास की घटनाओं के आधार पर अधिक सही कहा है। समाजवादी देशों के पतन के बाद जिस तेजी से धार्मिक संगठन और धार्मिक संस्थाए पुनः उजागर हो गई उनसे दुर्खीम के विचार अधिक सही साबित हुए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रोटेस्टेंट रूढ़िवादियों (Fundamentalists) की उपस्थिति एवं सक्रियता दुर्खीम के विचारों को सिद्ध करती हैं। दुर्खीम ने धर्म की एकतात्मक एवं संरक्षणवादी भूमिका की तो चर्चा की परंतु इसके शोषणकारी चरित्र की चर्चा नहीं की। पूँजीवादी औद्योगिक समाज व्यवस्थाओं को धर्म की आवश्यकता पड़ती है इसकी आवश्यकता कभी–कभी मजदूरों की एकता को तोड़ने के लिए और कभी–कभी वास्तविकताओं से लोगों का ध्यान हटाने के लिए पड़ती है।

6.9 सारांश

दुर्खाइम ने आदिवासियों से धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या की है। उसके द्वारा लिए गए आदिवासी अन्य आदिवासियों की तरह ही थे। अधिकांश समाजशास्त्रियों का मानना है कि दुर्खाइम ने अपने मामले को बढ़ा–चढ़ा कर बताया है। यह मानते हुए कि सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा देने और सामाजिक मूल्यों को मजबूत करने के लिए धर्म महत्वपूर्ण है। वे उनके इस विचार का समर्थन नहीं करेंगे कि धर्म समाज की पूजा है। धर्म पर दुर्खीम के विचार छोटे अशिक्षित समाजों के लिए अधिक प्रासंगिक हैं जहां संस्कृति और सामाजिक संस्थानों का एक घनिष्ठ एकीकरण है। जहां काम, अवकाश, शिक्षा और पारिवारिक जीवन का विलय होता है और जहां सदस्य एक आम विश्वास और मूल्य प्रणाली साझा करते हैं। दुर्खीम के विचार आधुनिक समाजों के लिए कम प्रासंगिक हैं जिनमें कई उपसंस्कृति सामाजिक और जातीय समूह, विशेष संगठन और धार्मिक विश्वासों, प्रथाओं और संस्थानों की व्यवस्था है। जैसा कि मैल्कम हैमिल्टन कहते हैं एक समाज के भीतर धार्मिक बहुलवाद और विविधता का उद्‌भव, निश्चित रूप से कुछ ऐसा है जिससे दुर्खीम के सिद्धांत को समाप्त

करने में बड़ी कठिनाई होती है। दुर्खीम उस सीमा को भी बढ़ा–चढ़ाकर बता सकता है जिस हद तक सामूहिक चेतना लोगों के व्यवहार में व्याप्त है और उसे आकार देती है। वास्तव में कभी–कभी धार्मिक मान्यताएं सामाजिक मूल्यों के विपरीत हो सकती हैं और उन पर हावी हो सकती हैं।

मैल्कम हैमिल्टन इस बिंदु को दृढ़ता से कहते हैं कि तथ्य यह है कि हमारी नैतिक भावना हमें बहुसंख्यकों समाज या प्राधिकरण के खिलाफ जा सकती है जिससे यह दर्शाता है कि हम दुर्खीम के दावे के अनुसार समाज पर या समाज के जीवों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं हैं। समाज जैसा कि वह शक्तिशाली है उसकी प्रधानता नहीं है जैसा कि दुर्खीम का मानना है कि उसके पास है। विडंबना यह है कि अक्सर ऐसा लगता है कि धार्मिक विश्वासों का समाज की तुलना में व्यक्ति पर बहुत अधिक प्रभाव हो सकता है और उस पर पकड़ बना सकता है।

6.10 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 इमाईल दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन कीजिए?

प्र. 2 इमाईल दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी पवित्र एवं अपवित्र तथा सामूहिक चेतना के विचारों का वर्णन कीजिए?

प्र. 3 इमाईल दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी सामाजिक एकीकरण के स्वरूप का मूल्यांकन कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 द एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलिजियस लाइफ पुस्तक किस लेखक की रचना है?

(अ) इमाईल दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर (स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 द एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ द रिलिजियस लाइफ पुस्तक किस वर्ष प्रकाशित हुई?

(अ) 1912 (ब) 1916 (स) 1931 (द) 1918

प्र. 3 किसने धर्म को एक सामाजिक तथ्य या घटना माना है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर (स) इमाईल दुर्खीम (द) पार्सन्स

प्र. 4 धर्म सम्बन्धी पवित्र एवं अपवित्र की अवधारणा किसकी है?

(अ) मैक्समूलर (ब) टायलर (स) इमाईल दुर्खीम (द) कोई नही

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (अ)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Haralombus, M. 1980; Sociology - Themes and Perspectives, Oxford University Press.

2. Madan, T. N. 1991; Religion in India, Oxford University Press.

3. Madan, T. N. 1997; Modern Myths, Locked Minds, Oxford University Press. Macionis J. J. 1997; Sociology, Prentice Hill, Inc.

4. Schaeffer, R. T. & Lamm, R. P. 1992; Sociology, McGraw Hill Inc.

5. Giddens, A. 1989; Sociology, Blackwell Publisher Ltd.

6. Gore, M. S. 1991; Secularism in India, Indian academy of social science.

7. Jain, M.S. 2000; Muslim ethos, Rawat Publication.

8. Weber, M; Sociology of Religion.

9. Chattopadyaya, D. P. 1959; Lokyat : A Study in Ancient Indian

Materialism People’s Publishing House.

इकाई 7 : कार्ल मार्क्स के धर्म संबंधी विचार

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 समाज की धारणा

7.3 धर्म लोगों की अफीम के रूप में

7.4 धर्म और सामाजिक नियंत्रण

7.5 मार्क्सवाद का समर्थन करने के लिए साक्ष्य

7.6 मार्क्सवाद की सीमाएं

7.7 धर्म और साम्यवाद

7.8 एंगेल्स और नव–मार्क्सवादी–धर्म एक क्रांतिकारी शक्ति के रूप में

7.8.1 धर्म की सापेक्ष स्वायत्तता

7.8.2 ब्रायन एस टर्नर धर्म का भौतिकवादी सिद्धांत

7.8.3 धर्म और सामंतवाद

7.8.4 धर्म और पूंजीवाद

7.9 सारांश

7.10 बोध प्रश्न

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कार्ल मार्क्स का धर्म संबंधी विचार एवं धर्म के सम्बन्ध समाज की धारणा की व्यख्या कर सकेंगे।

- कार्ल मार्क्स ने धर्म को लोगों की अफीम के रूप में परिभाषित किया है तथा धर्म समाज में किस प्रकार से नियंत्रण करता है आप इसकी व्यख्या कर सकेंगे।

- कार्ल मार्क्स के धर्म और सामंतवाद, धर्म और साम्यवाद, धर्म और पूंजीवाद तथा धर्म की सापेक्ष स्वायत्तता सम्बन्धी विचार की आप व्यख्या कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

डीएन धनगरे ने अपनी पुस्तक थीम्स एंड पर्सपेक्टिव्स इन इंडियन सोशियोलॉजी में तर्क दिया है कि मार्क्सवाद का सार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है। मार्क्सवादी इतिहासकार डी.डी. कोसंबी कहते है कि मार्क्स का तर्क है कि वर्ग, वर्ग संघर्ष और अलगाव सभी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के कारण हैं। धर्म के क्षेत्र में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण स्थान है। समाजवादी देशों में धर्म का खंडन किया गया था। इस संबंध में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर सभी प्रकार से विचार करने की आवश्यकता है। आदर्श समाज मार्क्स की दृष्टि में शोषण और अलगाव अतीत की बातें हैं। उत्पादन के साधन सांप्रदायिक रूप से स्वामित्व में हैं जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक वर्गों का लोप हो गया है। समाज के सदस्य मनुष्य के रूप में पूर्ण होते हैं वे अपनी नियति को नियंत्रित करते हैं और आम भलाई के लिए मिलकर काम करते हैं। इस कम्युनिस्ट यूटोपिया में धर्म का अस्तित्व नहीं है क्योंकि इसे उत्पन्न करने वाली सामाजिक परिस्थितियाँ गायब हो गई हैं। मार्क्स के लिए धर्म एक भ्रम है जो शोषण और उत्पीड़न से उत्पन्न दर्द को ठीक करता है। यह मिथकों की एक श्रृंखला है जो विषय वर्ग की अधीनता और शासक वर्ग के वर्चस्व और विशेषाधिकार को न्यायोचित और वैध ठहराती है। यह वास्तविकता का एक विरूपण है जो शासक वर्ग की विचारधारा और झूठी वर्ग–चेतना का आधार बनाने वाले कई धोखे प्रदान करता है।

7.2 समाज की धारणा

कार्ल मार्क्स की सैद्धांतिक दृष्टि से समाज या सामाजिक जगत की चर्चा ऐतिहासिक भौतिकवाद का अंग है। समाज व्यक्तियों का संग्रह है जो एक निश्चित स्थान या भू–भाग पर बसा होता है। समाज के सदस्य अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए श्रम के द्वारा उत्पादन करते हैं। यह मानव की प्रथम एवं सर्व महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक क्रिया है। प्रत्येक समाज में

उत्पादन की एक शैली होती है। इस शैली के दो पक्ष हैं–प्रथम उत्पादन के साधन एवं शक्तियाँ और दूसरा इनसे लोगों के संबंध एवं लोगों का आपस में संबंध जो चाहे या अनचाहे बनना ही पड़ता है। समाज में शक्ति एवं शृंखला की राजनैतिक व्यवस्था होती है। मानव संगठन होते हैं। विश्वास, विचार, मूल्य नैतिकता एवं धर्म की व्यवस्था होती है। ये सभी तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं परंतु उत्पादन की शैली सबसे महत्त्वपूर्ण है इसी से समाज का चरित्र तय होता है। मानव की प्रथम ऐतिहासिक घटना भौतिक वस्तुओं का उत्पादन है। ये जरूरी हैं और अनिवार्य हैं। इसके लिए मानव जो तरीके और कौशल अपनाता है उसे ही प्रौद्योगिकी (Technology) कहते हैं। मानव प्रौद्योगिकी के कारण ही मानव है। सभी अन्य पशु प्रकृति से अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ उसी रूप में अपना लेते हैं। समाज विरोधी शक्तियों का गत्यात्मक संतुलन है समाज में अनेक पक्ष हैं परंतु विश्लेषण की दृष्टि से दो पक्षों को अलग कर सकते हैं। एक पक्ष समाज की आधार संरचना है जिसके अंतर्गत उत्पादन की शैली सम्मिलित है और दूसरा पक्ष अधिरचना (Super Structure) जिसमें राजनैतिक संस्थाएँ, विचारधारा, धर्म, मूल्य परिवार, नातेदारी, नियम, जीवन शैली आदि होती है। आधोसंरचना एवं अधिसंरचना में द्वंद्वात्मक संबंध होते हैं। मानव जीवन एवं समाज का आधार मानव द्वारा अपने जीवन के साधनों के उत्पन्न करने से बनता है। इस उत्पादन के लिए मानव एक–दूसरे से चाहे या अनचाहे संबंध स्थापित करता है। सामूहिक उत्पादन से एक जीवन शैली उत्पन्न होती है जो मानव के चरित्र और स्वभाव को निर्धारित करती है। मार्क्स के अनुसार जीवन के भौतिक साधनों के उत्पादन से मानव समाज एवं मानव जीवन बनता एवं सँवरता है।

7.3 धर्म 'लोगों की अफीम'के रूप में

मार्क्स के शब्दों में, धर्म उत्पीड़ित प्राणी का चिह्न है, हृदयहीन संसार की भावना है और आत्माविहीन परिस्थितियों की आत्मा है। धर्म लोगों के लिए अफीम है। धर्म दमन द्वारा उत्पन्न पीड़ा को कम करने के लिए एक अफीम के रूप में कार्य करता है। यह वास्तविक पीड़ा की अभिव्यक्ति और पीड़ा के खिलाफ विरोध दोनों है, लेकिन यह समस्या को हल करने के लिए बहुत कम है क्योंकि यह जीवन को अधिक सहने योग्य बनाने में मदद करता है और इसलिए परिवर्तन की मांगों को कम करता है। इस प्रकार धर्म केवल अपने अनुयायियों को सच्ची खुशी और तृप्ति देने के बजाय उन्हें बेवकूफ बनाता है।

इसी तरह लेनिन ने तर्क दिया धर्म एक प्रकार का आध्यात्मिक जिन है

जिसमें पूंजी के गुलाम अपने मानवीय आकार और किसी भी सभ्य जीवन के अपने दावों को डुबो देते हैं। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से धर्म निम्नलिखित तरीकों से दमन के पीड़ा को कम कर सकता है–

(1) यह मृत्यु के बाद के जीवन में अनंत आनंद के स्वर्ग का वादा करता है। एंगेल्स ने तर्क दिया कि उत्पीड़ित वर्गों के लिए ईसाई धर्म की अपील उसके बाद के जीवन में बंधन और दुख से मुक्ति के वादे में निहित है। स्वर्ग का ईसाई दर्शन लोगों को आगे देखने के लिए कुछ देकर पृथ्वी पर जीवन को अधिक सहने योग्य बना सकता है।

(2) कुछ धर्म उत्पीड़न द्वारा उत्पन्न पीड़ा को एक गुण बनाते हैं। विशेष रूप से जो लोग गरीबी के अभाव को गरिमा और विनम्रता के साथ सहन करते हैं, उन्हें उनके पुण्य के लिए पुरस्कृत किया जाएगा। इस प्रकार धर्म पीड़ा के लिए पुरस्कार की पेशकश और बाद के जीवन में अन्याय के लिए मुआवजे का वादा करके गरीबों को अधिक सहनीय बनाता है।

(3) धर्म पृथ्वी पर समस्याओं को हल करने के लिए अलौकिक हस्तक्षेप की आशा प्रदान कर सकता है। यहोवा के साक्षी जैसे धार्मिक समूहों के सदस्य उस दिन की प्रत्याशा में रहते हैं जब अलौकिक शक्तियाँ ऊपर से उतरेंगी और पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण करेंगी। इस भविष्य की प्रत्याशा वर्तमान को अधिक स्वीकार्य बना सकती है।

(4) धर्म अक्सर सामाजिक व्यवस्था और उसके भीतर एक व्यक्ति की स्थिति को सही ठहराता है। ईश्वर को सामाजिक संरचना को बनाने और व्यवस्थित करने के रूप में देखा जा सकता है, जैसा कि विक्टोरियन भजन ऑल थिंग्स ब्राइट एंड ब्यूटीफुल से निम्नलिखित छंद में है। अमीर आदमी अपने महल में गरीब आदमी अपने द्वार पर भगवान ने उन्हें ऊंचा और नीचा बनाया और उनकी संपत्ति का आदेश दिया।

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था अपरिहार्य प्रतीत होती है। यह स्तरीकरण प्रणाली के निचले स्तर के लोगों को अपनी स्थिति को स्वीकार करने में मदद कर सकता है। उसी तरह सामान्य रूप से गरीबी और दुर्भाग्य को अक्सर पाप के दंड के रूप में दैवीय आदेश के रूप में देखा गया है। फिर से स्थिति को अपरिवर्तनीय के रूप में परिभाषित किया गया है। यह लोगों को उनकी स्थिति को दार्शनिक रूप से स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करके जीवन को अधिक सहने योग्य बना सकता है।

7.4 धर्म और सामाजिक नियंत्रण

मार्क्सवादी दृष्टिकोण से धर्म केवल उत्पीड़न के प्रभावों को कम नहीं करता है; यह उस दमन का एक साधन भी है। यह शोषण की मौजूदा व्यवस्था को बनाए रखने और वर्ग संबंधों को मजबूत करने वाले सामाजिक नियंत्रण के एक तंत्र के रूप में कार्य करता है। सरल शब्दों में कहें तो यह लोगों को उनकी जगह पर रखता है। असंतोषजनक जीवन को सहने योग्य बनाकर धर्म लोगों को अपनी स्थिति बदलने के प्रयास से हतोत्साहित करता है। एक निराशाजनक स्थिति में आशा का भ्रम देकर यह व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के विचारों को रोकता है। सामाजिक स्थितियों के लिए स्पष्टीकरण और औचित्य प्रदान करके धर्म वास्तविकता को तोड़–मरोड़ कर पेश करता है। यह एक झूठी वर्ग–चेतना पैदा करने में मदद करता है जो विषय वर्ग के सदस्यों को उनकी वास्तविक स्थिति और उनके वास्तविक हितों के लिए अंधा कर देता है। इस तरह यह लोगों का ध्यान उनके दमन के वास्तविक स्रोत से हटा देता है और इस प्रकार शासक वर्ग की सत्ता को बनाए रखने में मदद करता है। कार्ल मार्क्स का मानना है कि शासक वर्ग अपनी स्थिति को स्वयं और दूसरों के लिए उचित ठहराने के लिए धार्मिक विश्वासों को अपनाते हैं। ये पंक्तियाँ ईश्वर ने उन्हें ऊँचा और नीचा बनाया और उनकी संपत्ति का आदेश दिया यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि कैसे धर्म का उपयोग सामाजिक असमानता को सही ठहराने के लिए किया जा सकता है। यह न केवल गरीबों के लिए बल्कि अमीरों के लिए भी होता है। शासक वर्गों द्वारा अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए धर्म को अक्सर सीधे समर्थन दिया जाता है।

7.5 मार्क्सवाद का समर्थन करने के लिए साक्ष्य

समाज में धर्म की भूमिका के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं। पारंपरिक भारत की जाति व्यवस्था को हिंदू धार्मिक मान्यताओं द्वारा उचित ठहराया गया था। मध्ययुगीन यूरोप में राजाओं और रानियों ने दैवीय अधिकार से शासन किया। मिस्र के फिरौन एक ही व्यक्ति में भगवान और राजा दोनों को मिलाकर एक सौतेले पिता बन गए। अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में गुलाम–मालिकों ने अक्सर गुलामों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का अनुमोदन किया यह विश्वास करते हुए कि यह एक नियंत्रित और सौम्य प्रभाव है।

यह तर्क दिया गया है कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के शुरुआती दिनों

में नियोक्ताओं ने धर्मों को जनता को नियंत्रित करने और उन्हें शर्बत बने रहने और कड़ी मेहनत करने के लिए प्रोत्साहित करने के साधन के रूप में इस्तेमाल किया। एक और हालिया उदाहरण जिसका उपयोग मार्क्सवाद का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। स्टीव रूस (1988) द्वारा चर्चा की गई है। उन्होंने इंगित किया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में रूढ़िवादी प्रोटेस्टेंट–द न्यू क्रिश्चियन राइट–रिपब्लिकन पार्टी में दक्षिणपंथी राजनीतिक उम्मीदवारों का लगातार समर्थन करते हैं और डेमोक्रेटिक पार्टी में अधिक उदार उम्मीदवारों पर हमला करते हैं। 1980 में उन्होंने हमले के लिए 27 उदारवादी उम्मीदवारों को निशाना बनाया इनमें से 23 हार गए। न्यू क्रिश्चियन राइट ने 1984 में राष्ट्रपति पद के लिए अपने सफल अभियान में रोनाल्ड रीगन का समर्थन किया। 1988 के राष्ट्रपति अभियान में रीगन को न्यू क्रिश्चियन राइट के एक सदस्य पैट रॉबर्टसन द्वारा राष्ट्रपति पद के लिए रिपब्लिकन नामांकन के लिए असफल चुनौती दी गई थी। रॉबर्टसन कई टेलीविजन प्रचारकों में से एक हैं जिन्होंने ईसाई धर्म के अपने ब्रांड में नए धर्मान्तरित होने की कोशिश की है और जिन्होंने टेलीविजन पर प्रचार के माध्यम से अपने राजनीतिक और नैतिक संदेश फैलाए हैं। रूस के अनुसार, नए ईसाई अधिकार ने अधिक आक्रामक कम्युनिस्ट विरोधी विदेश नीति, अधिक सैन्य खर्च, कम केंद्र सरकार के हस्तक्षेप, कम कल्याणकारी खर्च और मुक्त उद्यम पर कम प्रतिबंधों का समर्थन किया है। हालांकि रूस इस बात पर जोर देते हैं कि उनका अमेरिकी राजनीति पर सीमित प्रभाव रहा है, यह स्पष्ट है कि उन्होंने आबादी में अन्य समूहों की कीमत पर अमीर और शक्तिशाली के हितों की रक्षा करने की प्रवृत्ति दिखाई है।

7.6 मार्क्सवाद की सीमाएं

परस्पर विरोधी साक्ष्य बताते हैं कि धर्म हमेशा सत्ता को वैध नहीं करता है; यह केवल प्रत्यावर्तन का औचित्य या विशेषाधिकार का औचित्य नहीं है, और यह कभी–कभी परिवर्तन के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकता है। हालांकि यह मार्क्स के स्वयं के लेखन में और न ही एंगेल्स के पहले के अधिकांश कार्यों में परिलक्षित होता है, यह एंगेल्स के बाद के कार्यों में और हाल के नव–मार्क्सवादियों द्वारा उन्नत धर्म के दृष्टिकोण में परिलक्षित होता है। तथ्य यह है कि धर्म कभी–कभी मार्क्स द्वारा सुझाए गए तरीके से एक वैचारिक शक्ति के रूप में कार्य करता है परन्तु अस्तित्व या धर्म की व्याख्या नहीं करता है। जैसा कि मैल्कम हैमिल्टन बताते हैं यह कहना कि धर्म को हेरफेर के एक उपकरण में बदल दिया जा सकता है यह कहने से अधिक नहीं है कि कला या

नाटक को वैचारिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है यह कला या नाटक की व्याख्या करता है। इसके विपरीत स्टार्क और बैनब्रिज (1985) द्वारा उपयोग किए जाने वाले दृष्टिकोण बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं में समाज में धर्म की लगभग सार्वभौमिक उपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण खोजने का प्रयास करते हैं।

7.7 धर्म और साम्यवाद

मार्क्स ने कहा था कि धर्म केवल एक भ्रामक सूर्य है जो मनुष्य के चारों ओर तब तक घूमता है जब तक वह स्वयं के चारों ओर नहीं घूमता । वास्तव में समाजवादी समाज में व्यक्ति स्वयं के चारों ओर घूमते हैं और धर्म– अन्य सभी भ्रमों और वास्तविकता की विकृतियों के साथ–गायब हो जाता है। इस भविष्यवाणी की योग्यता जो भी हो यह निश्चित रूप से समाजवादी इजरायली किबुत्ज़िम की स्थिति को प्रतिबिंबित नहीं करती है। कई किबुत्ज़िम उत्कृष्ट रूप से धार्मिक हैं और उनके सदस्य धर्म और समाजवाद के बीच कोई विरोधाभास अनुभव नहीं करते हैं।

यूएसएसआर साम्यवाद में धर्म की ताकत को मापना कठिन था। 1917 की क्रांति के बाद साम्यवादी राज्य ने धार्मिक गतिविधियों पर सीमा लगा दी और कई बार धार्मिक लोगों को सताया। सोवियत कानून ने धार्मिक पूजा को निर्दिष्ट चर्चों और प्रार्थना के अन्य स्थानों तक सीमित कर दिया। बच्चों की धार्मिक शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। जेफ्री होस्किंग ने अनुमान लगाया कि 1917 की क्रांति से पहले 50,000 से अधिक रूसी रूढ़िवादी चर्च थे, लेकिन 1939 तक केवल 4,000 ही रह गए। 1970 में लिखते हुए, डेविड लेन ने दावा किया कि 1960 में लगभग 20,000 रूसी रूढ़िवादी चर्च थे, लेकिन इनमें से लगभग आधे को ख्रुश्चेव की नीतियों के कारण 1965 तक बंद कर दिया गया था। सतह पर इस तरह के आंकड़े बताते हैं कि धर्म में गिरावट आई थी, लेकिन यह आबादी द्वारा विश्वास की हानि के बजाय सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग की गतिविधियों के कारण हो सकता है। लेन ने दावा किया कि धर्म का शायद जनसंख्या पर बहुत कम नियंत्रण था, लेकिन फिर भी इसने साम्यवाद के प्रति कुछ लचीलापन दिखाया था। लचीलापन एक अनुमान में परिलक्षित होता है जिसने 1947 की अवधि में रूढ़िवादी ईसाइयों की संख्या को 90 मिलियन पर रखा जो लगभग 1914 के समान ही है। ब्रिटेन या अधिकांश पश्चिमी यूरोप में जब राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने ग्लासनोस्ट या खुलेपन की नीति स्थापित की, तो धर्म पर प्रतिबंधों में ढील दी गई। 1989 और 1990 में, कई सोवियत गणराज्यों में

अशांति ने धार्मिक विश्वास की निरंतर ताकत का सुझाव दिया। लिथुआनिया में रोमन कैथोलिक चर्च स्वतंत्रता की मांगों का एक स्रोत था। 1990 में अजरबैजान में सोवियत मुसलमानों और आर्मेनिया में सोवियत ईसाइयों के बीच संघर्ष के कारण व्यवस्था बहाल करने के लिए सैनिकों को तैनात किया गया।

जब यूएसएसआर विभाजित होना शुरू हुआ और कम्युनिस्ट पार्टी के शासन को छोड़ दिया गया तो धार्मिक विश्वास और भी स्पष्ट हो गया। 1991 में डेविड मार्टिन ने वर्णन किया कि किस प्रकार लातविया, लिथुआनिया और एस्टोनिया के बाल्टिक राज्यों के आसपास हथियारों को जोड़ने के लिए लाखों लोगों को बुलाने के लिए चर्च की घंटियों का उपयोग किया गया था। अन्य पूर्व साम्यवादी देशों में पोलैंड में कोसोवा में मठवासी तीर्थस्थलों के लिए सर्बों की भावुक तीर्थयात्रा और धारणा का पर्व मनाने के लिए भारी भीड़ थी। जनमत सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि यूएसएसआर और पूर्वी यूरोप में साम्यवादी युग के दौरान जनसंख्या के बड़े हिस्से के लिए धर्म महत्वपूर्ण रहा और साम्यवाद के निधन के बाद से धर्म मजबूत हो गया है। अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक सर्वेक्षण कार्यक्रम के आंकड़ों का हवाला देते हुए, एंड्रयू ग्रीली ने नोट किया कि 1991 में 47 प्रतिशत रूसी आबादी ने भगवान में विश्वास करने का दावा किया था। धार्मिक पुनरुद्धार की ताकत इस तथ्य से प्रकट होती है कि 22 प्रतिशत आबादी पूर्व गैर–विश्वासियों की थी जो भगवान में विश्वास में परिवर्तित हो गए थे। इसी तरह मिकलोस टोमका ने पाया कि 1978 में हंगरी की 44.3 प्रतिशत आबादी ने धार्मिक होने का दावा किया था और अगस्त 1993 तक यह बढ़कर 76.8 प्रतिशत हो गया था।

फिदेल कास्त्रो का क्यूबा एक समाज है जिसने 1990 के दशक में साम्यवाद को बनाए रखा। हालाँकि कास्त्रो जैसे कट्टर कम्युनिस्ट को भी धर्म की निरंतर अपील को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा जब उन्होंने जनवरी 1998 में पोप जॉन पॉल को क्यूबा में आमंत्रित किया। पोप ने बड़ी और उत्साही भीड़ को संबोधित किया यह सुझाव दिया कि लगभग 40 वर्षों के बावजूद रोमन कैथोलिक धर्म मजबूत बना रहा। साम्यवादी राज्य ने धार्मिक भागीदारी और विश्वास को हतोत्साहित किया था। इन उदाहरणों से पता चलता है कि उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व के आधार पर समाजों में विकसित होने वाले विश्वासों और प्रथाओं के एक सेट की तुलना में धर्म के लिए और भी कुछ है। भौतिकवादी द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण केवल मार्क्स तक ही नहीं रहा है। अन्य मार्क्सवादी सिद्धांतकार हैं जैसे एंगेल्स और नव–मार्क्सवादी। अब हम इन नव–मार्क्सवादियों का विश्लेषण करेंगे जिसके अनुसार धर्म को एक

क्रांतिकारी शक्ति माना जाता है।

7.8 एंगेल्स और नव–मार्क्सवादी–धर्म एक क्रांतिकारी शक्ति के रूप में

रोजर ओ टोल, धर्म के मार्क्सवादी समाजशास्त्र पर टिप्पणी करते हुए कहते है कि मार्क्स ने निस्संदेह उस सक्रिय भूमिका को मान्यता दी है जो निभाई जा सकती है लेकिन क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने में धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार ऑन द हिस्ट्री ऑफ़ अर्ली क्रिश्चियनिटी में एंगेल्स ने कुछ शुरुआती ईसाई संप्रदायों की तुलना की जिन्होंने रोमन शासन का विरोध साम्यवादी और समाजवादी राजनीतिक आंदोलनों से किया था। उन्होंने कहा ईसाई धर्म ने जनता को ठीक वैसे ही जकड़ लिया जैसे आधुनिक समाजवाद विभिन्न संप्रदायों के आकार के तहत करता है। जबकि ईसाई धर्म उत्पीड़ित समूहों के बीच शोषण से निपटने के एक तरीके के रूप में उत्पन्न हुआ यह उत्पीड़कों के प्रतिरोध का स्रोत बन सकता है और इस प्रकार परिवर्तन के लिए एक शक्ति बन सकता है।

7.8.1 धर्म की सापेक्ष स्वायत्तता

मादुरो एक समकालीन नव–मार्क्सवादी हैं। मार्क्स के धर्म के विश्लेषण के कई पहलुओं को स्वीकार करते हुए, वह इस विचार पर अधिक जोर देते हैं कि धर्म को बुर्जुआ वर्ग की आर्थिक व्यवस्था से कुछ स्वतंत्रता, या सापेक्ष स्वायत्तता है। वह इस बात से इनकार करते हैं कि धर्म हमेशा रूढ़िवादी शक्ति है और वास्तव में दावा करता है कि यह क्रांतिकारी हो सकता है। वे कहते हैं, समाज में धर्म एक कार्यात्मक, प्रजनन या रूढ़िवादी कारक नहीं है; सामाजिक क्रांति लाने के लिए यह अक्सर मुख्य (और कभी–कभी एकमात्र) उपलब्ध आधारों में से एक होता है। मादुरो का दावा है कि हाल तक, लैटिन अमेरिका में कैथोलिकवाद बुर्जुआ और दक्षिणपंथी सैन्य तानाशाही का समर्थन करता था जिसने उसके हितों का प्रतिनिधित्व किया है। कैथोलिक चर्च ने दमनकारी और उत्पीड़ित वर्गों के बीच सामाजिक संघर्षों के अस्तित्व को नकारने का प्रयास किया है। इसने गरीबी और निरक्षरता जैसे कुछ अन्यायों को मान्यता दी है, लेकिन सुझाव दिया है कि समाधान उन्हीं के पास है जिनके पास पहले से ही शक्ति है। कैथोलिक चर्च ने पादरियों के सदस्यों का भी समर्थन किया है जिन्होंने निजी उद्यम और सरकारी परियोजनाओं में सहायता की है; इसने सैन्य जीत का जश्न मनाया है लेकिन यूनियनों, हड़तालों और विपक्षी राजनीतिक दलों का समर्थन करने में विफल रहा है।

दूसरी ओर हाल ही में कैथोलिक पादरियों ने बुर्जुआ वर्ग की आलोचना करके और उनके हितों के विरुद्ध कार्य करके अपनी स्वायत्तता का प्रदर्शन किया है, मादुरो का मानना है कि पादरी वर्ग के सदस्य क्रांतिकारी क्षमता विकसित कर सकते हैं जहां आबादी के उत्पीड़ित सदस्यों के पास अपनी शिकायतों के लिए कोई रास्ता नहीं है वे पुजारियों पर अपना मामला उठाने के लिए दबाव डालते हैं और एक चर्च के भीतर धार्मिक असहमति एक ऐसे धर्म की व्याख्या प्रदान कर सकती है जो अमीर और शक्तिशाली के लिए महत्वपूर्ण है। इन सभी शर्तों को लैटिन अमेरिका में पूरा किया गया है और मुक्ति धर्मशास्त्र के उनके विकास के लिए नेतृत्व किया है।

7.8.2 ब्रायन एस टर्नर धर्म का भौतिकवादी सिद्धांत

ब्रायन टर्नर (1983) ने मार्क्स का तर्क दिया कि धर्म एक भौतिक आधार से उत्पन्न होता है। अर्थात, वह इस बात से सहमत है कि धर्म सामाजिक जीवन के भौतिक और आर्थिक पहलुओं से संबंधित है। हालांकि, मार्क्स के विपरीत, टर्नर यह नहीं मानते हैं कि धर्म की समाज में एक सार्वभौमिक भूमिका है, और न ही उनका मानना है कि धर्म हमेशा शासक वर्ग के वैचारिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह इस विश्वास पर सवाल उठाते हैं कि धर्म हमेशा एक शक्तिशाली शक्ति रहा है जो प्रजा वर्ग को यथास्थिति को स्वीकार करने के लिए राजी करता रहा है।

7.8.3 धर्म और सामंतवाद

मार्क्सवादियों ने यह मान लिया है कि, सामंती काल में, धर्म (विशेष रूप से, यूरोप में रोमन कैथोलिकवाद) एक विश्वास प्रणाली थी जिसने समाज को एकीकृत करने में एक मौलिक भूमिका निभाई। टर्नर ने इस विचार को खारिज कर दिया कि धर्म सवर्णों और किसानों के लिए उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि सामंतों के लिए। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर उनका दावा है कि किसान बड़े पैमाने पर धर्म के प्रति उदासीन थे उनकी मुख्य चिंता केवल जीवित रहने की थी। तुलनात्मक रूप से शासक वर्ग सामंती प्रभुओं के जीवन में धर्म ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सामंतवाद में संपत्ति में निजी व्यक्तियों द्वारा भूमि के स्वामित्व से प्राप्त शक्ति शामिल थी। शासक वर्ग को अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए संपत्ति को एक उत्तराधिकारी को हस्तांतरित करना पड़ता था। आमतौर पर ज्येष्ठाधिकार की एक प्रणाली का उपयोग किया जाता था एक ज़मींदार के सबसे बड़े बेटे को अपने पिता की सारी ज़मीन विरासत में मिलती

थी। इसने सम्पदा के विभाजन को रोका जिससे विशेष व्यक्तियों के हाथों में शक्ति की एकाग्रता कम हो जाती।

इसलिए सामंतवाद के कामकाज और एक प्रमुख वर्ग के रखरखाव के लिए यह महत्वपूर्ण था कि प्रत्येक जमींदार के लिए एक वैध पुरुष उत्तराधिकारी हो। विवाहपूर्व स्वच्छंदता और व्यभिचार दोनों ने ऐसे उत्तराधिकारी के उत्पादन को ख़तरे में डाल दिया। विवाह और बच्चों की वैधता को चर्च द्वारा आगे बढ़ाया गया और बचाव किया गया। इस प्रकार टर्नर के शब्दों में परिवार के माध्यम से संपत्ति के नियमित संचरण को सुरक्षित करने के लिए धर्म में शरीर की कामुकता को नियंत्रित करने का कार्य है। धर्म के बिना यह सुनिश्चित करना मुश्किल होता कि मान्यता प्राप्त वैध उत्तराधिकारी थे जो अपने परिवार के कब्जे में केंद्रित भूमि को बनाए रख सकते थे। सामंतवाद के तहत धर्म का एक द्वितीयक कार्य भी ज्येष्ठाधिकार से उपजा था। छोटे पुत्रों की अधिकता थी जिन्हें भूमि विरासत में नहीं मिली थी। सैन्य सामंतवाद में बेटों की जल्दी मृत्यु हो सकती है इसलिए एक या अधिक मारे जाने की स्थिति में कई उत्तराधिकारियों का होना आवश्यक था।

7.8.4 धर्म और पूंजीवाद

टर्नर का मानना है कि आधुनिक पूंजीवाद में धर्म ने शासक वर्ग के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य खो दिया है। उनका दावा है कि आज शासक वर्ग की सत्ता को बनाए रखने के लिए व्यक्तिगत और पारिवारिक संपत्ति बहुत कम महत्वपूर्ण है। संपत्ति अवैयक्तिक हो गई है अधिकांश धन व्यक्तियों के बजाय संगठनों (जैसे बैंक, पेंशन फंड और बहुराष्ट्रीय निगम) के हाथों में केंद्रित है। इन परिस्थितियों में आधुनिक पूंजीवादी समाजों के लिए धर्म एक वैकल्पिक अतिरिक्त से ज्यादा कुछ नहीं है। चूंकि परिवार के माध्यम से संपत्ति का हस्तांतरण अब व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण नहीं है समाज सहन कर सकता है और चर्च तलाक और नाजायजता को स्वीकार कर सकता है। धर्म पर टर्नर के विचार एबरक्रॉम्बी हिल और टर्नर (1980) द्वारा उन्नत प्रमुख विचारधारा थीसिस पर अधिक सामान्य विचारों के समान हैं। उनका मानना है कि आधुनिक पूंजीवादी समाजों में व्यापक रूप से स्वीकृत शासक–वर्ग की विचारधारा नहीं है और पूंजीवादी वर्चस्व की निरंतरता के लिए ऐसी विचारधारा आवश्यक नहीं है शासक वर्ग अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए जबरदस्ती और नग्न आर्थिक शक्ति का उपयोग करता है। इसलिए पूंजीवादी समाजों में झूठी वर्ग चेतना पैदा करने में धर्म के महत्व के बारे में मार्क्स की मान्यताओं पर सवाल उठाते हैं।

7.9 सारांश

कार्ल मार्क्स के विचारों के साथ एक विशेष बात यह है कि वैचारिक आग्रहों के कारण अनेक विद्वान उनकी खूब निंदा करते हैं एवं इसी प्रकार के कारणों से अनेक विद्वान उनकी खूब प्रशंसा करते हैं। मार्क्स के विरोध की परंपरा के सबसे प्रमुख समाजशास्त्रीय हस्ताक्षर मैक्स वेबर थे। वेबर जर्मन दार्शनिक इमानुएल कांट से प्रेरित थे जबकि मार्क्स हीगल से प्रेरित थे। दोनों ने ही अपने प्रेरक स्रोतों के विचारों को रूपांतरित किया। परंतु दोनों अलग धरातल पर खड़े रहे। इस सिलसिले में मैक्स वेबर की शक्ति संबंधी धारणा अधिक उपयुक्त समझ पड़ती है। प्रत्येक विद्वान के विचार विश्व की परिस्थिति के अनुसार प्रभावी और अप्रभावी होते हैं। सोवियत यूनियन एवं पूर्वी यूरोप के देशों में समाजवाद के पतन के बाद मार्क्स के विचारों का प्रभाव बहुत घट गया है। जार्ज रीजर ने कहा ऐसा अप्रभाव अस्थायी भी हो सकता है परंतु वर्तमान संदर्भ में मार्क्सवाद का यह प्रभाव बहुत ही गुणात्मक एवं व्यापक है।

मार्क्स की वैचारिक दृष्टि के आधार पर जो समाजविज्ञानी विश्व और विशेष समाजों का विश्लेषण करते रहे हैं वे अभी तक ऐसा कर रहे हैं। इनके अनुसार समाजवाद का जो पराभव हुआ है उसकी व्याख्या भी मार्क्स के विचारों के आधार पर की जा सकती है। अभी भी समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के क्षेत्र में मार्क्सवादी दृष्टि के आधार पर बहुत अधिक अध्ययन किया जा रहा है स्वयं भारत में मार्क्सवादी चर्चाओं की एक विस्तृत श्रृंखला है।

मार्क्स के विचारों के आधार पर अनेक आंदोलन और क्रांतियाँ चल रही है। भारत के पड़ोसी देश नेपाल में मार्क्स के विचारों पर आधारित हिंसात्मक क्रांति की प्रक्रिया चल रही है। विश्व के अधिकतर देशों में कोई न कोई दल ऐसा है जो अपने को मार्क्स का अनुयायी कहता है। विश्व के अनेक देशों में और विशेष रूप से उन देशों में जहाँ पश्चिम के साम्राज्यवाद का वर्चस्व है अनेक मार्क्सवादी दल और समूह शांतिपूर्ण और हिंसात्मक आंदोलन में लगे हुए हैं।

बौद्धिक विमर्श में भी मार्क्सवादी विचार खत्म होने का नाम नहीं ले रहे हैं। भारत में एक समय में समाजशास्त्र में डी.पी. मुखर्जी, ए.आर. देसाई, पी.सी. जोशी आदि विद्वानों का मार्क्सवादी दृष्टिकोण के संदर्भ में नाम लिया जाता था, अब समाजशास्त्र में अनेक विद्वान मार्क्स की दृष्टि के आधार पर अपने विचार

विकसित कर रहे हैं। समाजशास्त्र की मुख्यधारा में प्रकार्यवाद का वर्चस्व समाप्त हो गया है एवं इसके स्थान पर द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि प्रचलित हुई है। यह नहीं कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की मुख्यधारा का प्रमुख स्रोत मार्क्सवादी दृष्टि है परंतु इतना जरूर है कि कार्ल मार्क्स के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। संभवतः लेफेने का यह कहना सही है कि कार्ल मार्क्स के विचारों की निंदा की जा सकती है या उनकी प्रशंसा की जा सकती है परंतु किसी भी हालत में उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

7.10 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 कार्ल मार्क्स का धर्म संबंधी विचार एवं धर्म के सम्बन्ध समाज की अवधारणा मूल्यांकन कीजिए?

प्र. 2 धर्म को लोगों के लिए अफीम है कार्ल मार्क्स की इस पर चर्चा कीजिए?

प्र. 3 कार्ल मार्क्स के धर्म और सामंतवाद, धर्म और साम्यवाद, धर्म और पूंजीवाद तथा धर्म की सापेक्ष स्वायत्तता सम्बन्धी विचार की व्याख्या कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 धर्म को लोगों के लिए अफीम है किसने कहा है?

(अ) इमाईल दुर्खीम (ब) कार्ल मार्क्स (स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 साम्यवाद की अवधारणा किसने दिया है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर (स) मैक्स वेबर (द) पार्सन्स

प्र. 3 अधिसंरचना एवं अधोसंरचना की अवधारणा किसकी है?

(अ) मैक्स वेबर (ब) बर्जर (स) कार्ल मार्क्स (द) पार्सन्स

प्र. 4 इनमे से कौन भारत में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अध्ययन किया है?

(अ) योगेन्द्र सिंह (ब) एम. एन. श्रीनिवास (स) डी.पी. मुखर्जी (द) कोई नही

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Haralombus, M. 1980; Sociology - Themes and Perspectives, Oxford University Press.
2. Madan, T. N. 1991; Religion in India, Oxford University Press.
3. Madan, T. N. 1997; Modern Myths, Locked Minds, Oxford University Press.
4. Macionis J. J. 1997; Sociology, Prentice Hill, Inc.
5. Schaeffer, R. T. & Lamm, R. P. 1992; Sociology, McGraw Hill Inc.
6. Giddens, A. 1989; Sociology, Blackwell Publisher Ltd.
7. Gore, M. S. 1991; Secularism in India, Indian academy of social science.
8. Jain, M.S. 2000; Muslim ethos, Rawat Publication.
9. Weber, M; Sociology of Religion.
10. Chattopadyaya, D. P. 1959; Lokyat :A Study in Ancient Indian Materialism People's Publishing House.

इकाई 8 : मैक्स वेबर धर्म एवं तार्किकता

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मैक्स वेबर धर्म का समाजशास्त्र

8.3 पूंजीवाद और प्रोटेस्टेंटवाद

8.4 प्रोटेस्टेंट नैतिकता

8.5 पूंजीवाद की आत्मा

8.6 भौतिकवाद और वेबर का सिद्धांत

8.7 धर्म, आधुनिकता और तर्कसंगतता

8.8 भारत में हिंदू धर्म, जैन धर्म एवं पूँजीवाद

8.9 सारांश

8.10 बोध प्रश्न

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप मैक्स वेबर का धर्म के समाजशास्त्र एवं प्रोटेस्टेंट धर्म के सम्बन्ध उनकी की व्यख्या कर सकेंगे।

- मैक्स वेबर का प्रोटेस्टेंट धर्म पूंजीवाद को कैसे बढ़ावा देता है तथा मैक्स वेबर ने प्रोटेस्टेंट धर्म को पूंजीवाद की आत्मा को किस प्रकार से माना है आप उसकी व्यख्या कर सकेंगे।

- मैक्स वेबर के धर्म सम्बन्धी एवं तार्किकारण सम्बन्धी विचार भारत के संदर्भ में आप इसकी व्यख्या कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

मैक्स वेबर ने 1904 से धर्म के संबंध में लिखना आरंभ किया। वे संभवतः अपने जीवन के आखिरी दिनों तक धर्म के बारे में लिखते रहे। उनकी चर्चा का मुख्य विषय धर्मों में दिए गए विषयनिष्ठ अर्थों के संबंध में है। पश्चिम में प्रोटेस्टेंट धर्म से पूँजीवाद का उदय हुआ परंतु दूसरे धर्मों से ऐसा क्यों नहीं हुआ यह मैक्स वेबर के लिए एक यक्ष प्रश्न था। मैक्स वेबर ने एक तुलनात्मक पद्धति अपनाई एवं काल्विनवाद का एक आदर्श प्रारूप तैयार करके विश्व के धर्मों का आकलन किया। उनकी तुलना का मुख्य आधार था कि किसी धर्म के द्वारा युक्तिपूर्णता को कितने अंशों तक बढ़ावा दिया जाता है युक्तिपूर्णता के अंश एक धर्म में जादुई तत्त्वों की उपस्थिति के अंशों से जुड़े हैं। मैक्स वेबर की कोशिश थी कि धर्म के समाजशास्त्र में विषयनिष्ठ रूप से दिए गए अर्थों को खोजा जाए। कानून और राज्य की व्याख्या में वेबर ने दूसरों के प्रति उन्मुखता पर बड़ा बल दिया। धर्म के समाजशास्त्र में लोगों के द्वारा अपने कार्यों को दिए गए अर्थों पर उसने ज्यादा बल दिया है। वेबर ने हिंदू, बौद्ध, कनफूशियस, ताओ यहूदी धर्म की चर्चा की। इस्लाम धर्म की चर्चा को उन्होंने आरंभ किया परंतु इसे आंशिक रूप से ही कर सके।

जरूथ्रष्ट धर्म की चर्चा करना चाहते थे परंतु इसे वेबर आरंभ ही नहीं कर सके। विश्व के धर्मों को उन्होंने अनेक प्रकारों में बाँटा और आधार था कि समाज की किस श्रेणी या समूह ने एक धर्म का समर्थन किया एवं उसके लिए आधार का कार्य किया। कनफूशियस धर्म के वाहक संसार को संगठित करने वाले नौकरशाह थे। हिंदू धर्म के आधार वे ब्राह्मण थे जो विश्व का नियंत्रण करते थे। बौद्ध धर्म के वे चिंतनशील साधू थे जो दुनिया भर में विचरते हैं। इस्लाम के आधार वे युद्धबाज थे जो दुनिया जीतना चाहते थे। ईसाई धर्म के आधार शिल्पकार थे। मैक्स वेबर धर्मों का वर्गीकरण इस आधार पर किया कि एक धर्म का विश्व के प्रति दृष्टिकोण क्या है? कनफूशियस धर्म विश्व के धर्म को स्वीकार करता है। बौद्ध धर्म में विश्व को खारिज किया जाता है। वेबर ने भारत को ऐसे धर्मों का पालन गृह कहा है जो इस संसार के सिद्धांत एवं व्यवहार को नकारते हैं। अनेक धर्म जैसे इस्लाम, ईसाई, जरूथ्रष्ट आदि मानते हैं कि संसार में अनेक बुराइयाँ आ गई हैं इन्हें धर्म के पालन से सुधारना है।

8.2 मैक्स वेबर धर्म का समाजशास्त्र

मैक्स वेबर धर्म के क्षेत्र में एक महान सिद्धांतकार एवं विकासवादी

कार्यात्मकवादी थे। उनकी पुस्तक द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म (1958) बहुत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः वेबर ने धर्म के विकास में प्रमुख योगदान दिया है। माना जाता है कि मार्क्सवादी और कार्यात्मकवादी दोनों ने धर्म के कार्य में अत्यधिक योगदान दिया है। वेबर को मार्क्सवादी से अलग करने वाली बात यह है कि वेबर ने यह स्थापित किया है कि विचार भी दुनिया को बदल सकते हैं। यह मार्क्सवादी थीसिस का खंडन था। वेबर कार्यात्मकतावादी और मार्क्सवादी दोनों सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देने और सामाजिक परिवर्तन को बाधित करने में धर्म की भूमिका पर जोर देते हैं। इसके विपरीत वेबर ने तर्क दिया कि कुछ परिस्थितियों में धर्म सामाजिक परिवर्तन का कारण बन सकता है हालांकि साझा धार्मिक विश्वास एक सामाजिक समूह को एकीकृत कर सकते हैं उन्हीं मान्यताओं के नतीजे हो सकते हैं जो दीर्घावधि में समाज में परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं।

मैक्स वेबर को आमतौर पर भौतिकवादी माना जाता है उनका मानना था कि भौतिक दुनिया (और विशेष रूप से प्रकृति के साथ लोगों की भागीदारी के रूप में वे अपने स्वयं के अस्तित्व को सुरक्षित करने के लिए काम करते हैं) ने उनकी मान्यताओं को आकार दिया। इस प्रकार मार्क्स के लिए आर्थिक प्रणाली ने बड़े पैमाने पर उन विश्वासों को निर्धारित किया जो व्यक्तियों द्वारा आयोजित किए गए थे। मार्क्सवादी दृष्टि से उत्पादन का तरीका उस धर्म के प्रकार को निर्धारित करता है जो किसी भी समाज में प्रभावी होगा। मार्क्स के विपरीत वेबर ने इस विचार को खारिज कर दिया कि धर्म हमेशा आर्थिक कारकों से आकार लेता है। उन्होंने इस बात से इंकार नहीं किया कि निश्चित समय पर और कुछ स्थानों पर धर्म को काफी हद तक आर्थिक ताकतों द्वारा आकार दिया जा सकता है लेकिन उन्होंने इनकार किया कि हमेशा ऐसा ही होता है।

कुछ स्थितियों में इसका उल्टा भी हो सकता है अर्थात धार्मिक विश्वास आर्थिक व्यवहार पर एक बड़ा प्रभाव डाल सकते हैं। वेबर के सामाजिक क्रिया सिद्धांत का तर्क है कि मानव क्रिया अर्थ और उद्देश्यों द्वारा निर्देशित होती है। इस दृष्टिकोण से क्रिया को केवल विश्व दृष्टिकोण समाज के सदस्यों द्वारा रखी गई दुनिया की छवि या तस्वीर की सराहना करके ही समझा जा सकता है। अपने विश्वदृष्टि से व्यक्ति अर्थ और उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं जो उनके कार्यों को निर्देशित करते हैं। धर्म अक्सर विश्वदृष्टि का एक महत्वपूर्ण घटक होता है कुछ निश्चित स्थानों और समयों में धार्मिक अर्थ और उद्देश्य व्यापक संदर्भ में कार्रवाई को निर्देशित कर सकते हैं। विशेष रूप से धार्मिक विश्वास आर्थिक क्रिया को निर्देशित कर सकते हैं।

8.3 पूंजीवाद और प्रोटेस्टेंटवाद

मैक्स वेबर ने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म (1958) में प्रोटेस्टेंटवाद के कुछ रूपों के उदय और पश्चिमी औद्योगिक पूंजीवाद के विकास के बीच संबंधों का अध्ययन किया है। अपने तर्क के पहले भाग में वेबर यह प्रदर्शित करने की कोशिश करता है कि प्रोटेस्टेंटवाद का एक विशेष रूप तपस्वी कैल्विनिस्ट प्रोटेस्टेंटवाद पूंजीवाद के विकास से पहले था। वह यह भी दिखाने की कोशिश करता है कि पूंजीवाद शुरू में उन क्षेत्रों में विकसित हुआ जहां यह धर्म प्रभावशाली था। दुनिया के अन्य क्षेत्रों में कई आवश्यक पूर्वापेक्षाएँ थीं फिर भी वे पूंजीवाद को विकसित करने वाले पहले क्षेत्रों में से नहीं थे। उदाहरण के लिए भारत और चीन के पास तकनीकी ज्ञान था। काम पर रखने के लिए श्रम और पैसा भी था। वेबर के अनुसार उनके पास जिस चीज की कमी थी वह एक ऐसा धर्म था जो पूंजीवाद के विकास को प्रोत्साहित और सुगम बनाता था। पहले पूंजीवादी राष्ट्र पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के उन देशों में उभरे जिनमें कैल्विनवादी धार्मिक समूह थे। इसके अलावा इन क्षेत्रों में सबसे शुरुआती पूंजीवादी उद्यमी केल्विनवादियों से आए थे।

केल्विनवाद और पूंजीवाद के बीच एक संबंध स्थापित करने के बाद धर्म और आर्थिक विकास के उदासीन भागों की तुलना करके वेबर आगे बताते हैं कि कैसे और क्यों इस प्रकार का धर्म पूंजीवाद से जुड़ा हुआ था। केल्विनिस्ट प्रोटेस्टेंटिज़्म की उत्पत्ति सत्रहवीं शताब्दी में जॉन कैल्विन की मान्यताओं में हुई थी। केल्विनवाद में चुने हुए लोगों का एक अलग समूह था जिन्हें स्वर्ग जाने के लिए चुना गया था और यह कि उनके जन्म से पहले ही उन्हें परमेश्वर द्वारा चुना गया था। जो चुने हुए लोगों में से नहीं थे वे कभी भी स्वर्ग में स्थान प्राप्त नहीं कर सकते थे चाहे वे पृथ्वी पर कितना भी अच्छा व्यवहार क्यों न करें।

मार्टिन लूथर का मानना था कि अलग–अलग ईसाई स्वर्ग में पहुंचने की उनकी संभावनाओं को प्रभावित कर सकते हैं जिस तरह से वे पृथ्वी पर व्यवहार करते हैं। ईसाइयों के लिए ईश्वर में विश्वास विकसित करना और पृथ्वी पर ईश्वर की इच्छा को पूरा करना बहुत महत्वपूर्ण था। ऐसा करने के लिए उन्हें जीवन में अपनी बुलाहट के प्रति समर्पित होना होगा। ईश्वर ने उन्हें समाज में जो भी पद दिया है उन्हें ईमानदारी से उचित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। मार्टिन लूथर के सिद्धांत से पूँजीवाद के उत्पन्न होने की संभावना अधिक प्रतीत होती है। हालाँकि इसने लोगों को अपनी भौतिक आवश्यकताओं के लिए

आवश्यक से अधिक उत्पादन या कमाई करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसने महान धन के संचय की तुलना में धर्मपरायणता और विश्वास को अधिक महत्व दिया। केल्विन द्वारा प्रतिपादित पूर्वनियति के सिद्धांत से पूँजीवाद के उत्पन्न होने की संभावना कम प्रतीत होती है। यदि कुछ व्यक्तियों को उनके सांसारिक व्यवहार की परवाह किए बिना स्वर्ग के लिए नियत किया गया था और बाकी समान रूप से अपने अभिशाप को दूर करने में असमर्थ थे तो पृथ्वी पर कड़ी मेहनत करने का कोई मतलब नहीं होगा।

वेबर बताते हैं हालांकि केल्विनवादियों को एक मनोवैज्ञानिक समस्या थी वे नहीं जानते थे कि वे चुने हुए लोगों में से हैं या नहीं। वे एक प्रकार के आंतरिक अकेलेपन या अपनी स्थिति के बारे में अनिश्चितता से पीड़ित थे और उनका व्यवहार स्वर्ग में स्थान अर्जित करने का प्रयास नहीं था बल्कि उन्हें यह विश्वास दिलाने के लिए था कि उन्हें वहाँ जाने के लिए चुना गया है। उन्होंने तर्क किया कि केवल परमेश्वर के चुने हुए लोग ही पृथ्वी पर एक अच्छा जीवन जीने में सक्षम होंगे। यदि उनका व्यवहार अनुकरणीय होता तो उन्हें विश्वास हो जाता कि मृत्यु के बाद वे स्वर्ग जाएँगे। इसलिए कैल्विनवादियों ने पूर्वनियति के सिद्धांत पर जो व्याख्या की उसने उन्हें पहले पूंजीपति बनने में योगदान दिया।

8.4 प्रोटेस्टेंट नैतिकता

मैक्स वेबर जिस प्रोटेस्टेंट नैतिकता का वर्णन करता है और जिसने कैल्विनवादियों को खुद को यह समझाने में सक्षम बनाया कि वे चुने हुए लोगों में से हैं पहली बार सत्रहवीं शताब्दी के पश्चिमी यूरोप में यह अवधारणा विकसित हुई। नैतिकता जीवन के सुखों से संयम को प्रोत्साहित करती है एक कठोर जीवन शैली और कठोर आत्म–अनुशासन ऐसे व्यक्तियों का उत्पादन किया जिन्होंने अपने करियर या व्यवसाय में अपने विवेक से कड़ी मेहनत की। पैसा कमाना किसी के व्यवसाय में सफलता का एक ठोस संकेत था और किसी के व्यवसाय में सफलता का अर्थ था कि व्यक्ति ने परमेश्वर की दृष्टि में अनुग्रह खोया नहीं था। 18वीं शताब्दी के अंत में अंग्रेजी उद्योग के विस्तार से पहले महान मेथोडिस्ट पुनरुद्धार के एक नेता जॉन वेस्ले ने लिखा धर्म के लिए आवश्यक रूप से उद्योग और मितव्ययिता का उत्पादन करना चाहिए और ये धन का उत्पादन नहीं कर सकते। हमें सभी ईसाइयों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे जो कुछ हासिल कर सकते हैं उसे प्राप्त करें और जो कुछ वे कर सकते हैं उसे बचाएं यानी अमीर बनने के लिए किन वह धन विलासिता, अच्छे कपड़े, भव्य घरों और तुच्छ मनोरंजन पर नहीं बल्कि परमेश्वर की महिमा

में खर्च किया जा सकता है। वास्तव में इसका मतलब किसी भी मामले में और भी अधिक सफल होना था जिसका अर्थ व्यवसाय में लाभ को फिर से निवेश करना था।

प्रोटेस्टेंटों ने समय की बर्बादी, आलस्य, बेकार की गपशप और आवश्यकता से अधिक नींद पर हमला किया दिन में छह से आठ घंटे अधिक से अधिक। वे यौन सुखों पर फिदा थे संभोग विवाह के भीतर ही रहना चाहिए और उसके बाद ही संतानोत्पत्ति के लिए (शाकाहारी आहार और ठंडे स्नान को कभी–कभी प्रलोभन को दूर करने की सलाह दी जाती थी)। खेल और मनोरंजन को केवल फिटनेस और स्वास्थ्य में सुधार के लिए स्वीकार किया गया और यदि मनोरंजन के लिए इसका इस्तेमाल किया गया तो इसकी निंदा की गई। तपस्वी प्रोटेस्टेंटों के लिए पब, डांस हॉल, थिएटर और गेमिंग हाउस का आवेगी मज़ा और आनंद निषिद्ध था। वास्तव में जो कुछ भी लोगों को उनकी बुलाहट से विचलित या विचलित कर सकता था उसकी निंदा की गई। इन दिशा–निर्देशों के अनुसार जीवन जीना इस बात का संकेत था कि व्यक्ति ने ईश्वर की दृष्टि में अनुग्रह नहीं खोया था।

8.5 पूंजीवाद की आत्मा

मैक्स वेबर ने दावा किया कि पूंजीवाद की भावना की उत्पत्ति प्रोटेस्टेंटवाद की नैतिकता में पाई जानी थी। पूरे इतिहास में धन और लाभ चाहने वालों की कमी नहीं रही है दुनिया के हर कोने में समुद्री डाकू, वेश्याएं और साहूकार हमेशा धन का पीछा करते रहे हैं। हालांकि वेबर के अनुसार पैसे की खोज के उनके तरीके और उद्देश्य दोनों ही पूंजीवाद की भावना के विपरीत थे। परंपरागत रूप से पैसा चाहने वाले सट्टा परियोजनाओं में लगे हुए थे वे पुरस्कार पाने के लिए जुआ खेलते हैं। सफल होने पर वे व्यक्तिगत उपभोग पर फिजूलखर्ची करने लगते हैं। इसके अलावा वे अपने लिए पैसा बनाने के लिए समर्पित नहीं थे। वेबर ने तर्क दिया कि जिन मजदूरों ने अपने परिवार के लिए आराम से रहने के लिए पर्याप्त कमाई की थी और जिन व्यापारियों ने अपनी मनचाही विलासिता हासिल की थी उन्हें और अधिक पैसा बनाने के लिए खुद को अधिक मेहनत करने की आवश्यकता महसूस नहीं होगी। इसके बजाय उन्होंने अवकाश के लिए खाली समय मांगा। जबकि प्रोटेस्टेंटवाद का धन के प्रति बिल्कुल अलग रवैया था और वेबर का मानना था कि यह रवैया पूंजीवाद की विशेषता थी। उन्होंने तर्क दिया कि पूंजीवाद का सार लाभ की खोज और हमेशा के लिए नए सिरे से लाभ है। पूंजीवादी उद्यमों को राष्ट्रीय नौकरशाही

की तर्ज पर संगठित किया जाता है। व्यावसायिक लेन–देन एक व्यवस्थित और तर्कसंगत तरीके से लागत और अनुमानित मुनाफे के साथ सावधानी से मूल्यांकन किया जाता है।

पूँजीवाद के चलन के पीछे पूँजीवाद की भावना है जो विचारों, नैतिकता और मूल्यों का एक समूह है। वेबर पूंजीवाद की भावना को बेंजामिन फ्रैंकलिन की दो पुस्तकों Necessary Hinds to Those that would be Rich(1736) और Advice to a young tradesman (1748) के उद्धरणों के साथ दिखाता है। फ्रैंकलिन लिखते हैं 'रिमेम्बर दैट टाइम इज मनी' समय की बर्बादी आलस्य और डायवर्जन से पैसे की हानि होती है। याद रखें कि क्रेडिट पैसा है।

विवेक और ईमानदारी की प्रतिष्ठा समय पर कर्ज चुकाने की वसीयत के रूप में श्रेय दिलाएगी। व्यवसायियों को अपने सभी व्यवहारों में उद्योग और मितव्ययिता समय की पाबंदी और न्याय के साथ व्यवहार करना चाहिए। वेबर ने तर्क दिया कि पूंजीवाद की यह भावना केवल पैसा बनाने का तरीका नहीं है बल्कि जीवन का एक तरीका है जिसमें नैतिकता कर्तव्य और दायित्व हैं। उन्होंने दावा किया कि पूंजीवाद की भावना और अभ्यास के निर्माण और विकास में प्रोटेस्टेंटवाद एक महत्वपूर्ण प्रभाव था। वेबर ने लिखा है कि सांसारिक आह्वान में बेचैन निरंतर व्यवस्थित कार्य पूंजीवाद की भावना के विस्तार के लिए सबसे शक्तिशाली बोधगम्य लाभ रहा होगा। पैसा कमाना एक धार्मिक और व्यावसायिक नैतिकता दोनों बन गया लाभ कमाने की प्रोटेस्टेंट की व्याख्या व्यवसायी की गतिविधियों को उचित ठहराती है।

वेबर ने दावा किया कि पूंजीवादी उद्योग की दो प्रमुख विशेषताएं उत्पादन का मानकीकरण और श्रम का विशेष विभाजन प्रोटेस्टेंटवाद द्वारा प्रोत्साहित किया गया था। प्रोटेस्टेंट एकरूपता पूँजीपति को उत्पादन के मानकीकरण में अत्यधिक सहायता करती है। निश्चित व्यवसाय के महत्व पर बल ने श्रम के इस आधुनिक विशिष्ट विभाजन के लिए एक नैतिक औचित्य प्रदान किया।

8.6 भौतिकवाद और वेबर का सिद्धांत

वेबर का मानना था कि उन्होंने इस बात की खोज और अध्ययन किया था कि धार्मिक विश्वास आर्थिक परिवर्तन का कारण बन सकते हैं। उन्होंने दावा किया कि मार्क्स के भौतिकवाद में एक कमजोरी है जिसका अर्थ है कि आर्थिक

प्रणाली हमेशा विचारों को आकार देती है। हालांकि इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि वेबर ने अर्थव्यवस्था और भौतिक कारकों के महत्व को कम नहीं किया। उन्होंने कहा निश्चित रूप से संस्कृति और इतिहास की एकतरफा भौतिकवादी समान रूप से एकतरफा आध्यात्मिक कारण व्याख्या के स्थान पर मेरा उद्देश्य नहीं है। पूंजीवाद न केवल कैल्विनिस्ट प्रोटेस्टेंटवाद द्वारा संभव हुआ बल्कि उन देशों की प्रौद्योगिकी और आर्थिक प्रणाली द्वारा भी संभव हुआ जिसमें यह विकसित हुआ। इसके विकास में भौतिक कारक उतने ही महत्वपूर्ण थे जितने कि विचार महत्वपूर्ण है।

8.7 धर्म, आधुनिकता और तर्कसंगतता

पूंजीवाद की उत्पत्ति के लिए एक स्पष्टीकरण प्रस्तावित करने के साथ–साथ मैक्स वेबर के पास प्रोटेस्टेंटवाद के विकास से उत्पन्न परिवर्तनों के संभावित परिणामों के बारे में भी कहने के लिए एक अच्छा सौदा था। उनके सिद्धांतों का पश्चिमी समाजों में परिवर्तन के बारे में सामान्य विचारों और विशेष रूप से आधुनिकता और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणाओं पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। आधुनिकता एक ऐतिहासिक काल और एक प्रकार के समाज दोनों को संदर्भित करती है जिसे अक्सर औद्योगीकरण विज्ञान और पूंजीवाद के साथ विकसित होते हुए देखा जाता है।

धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य धर्म के पतन से है। उदाहरण के लिए रॉबर्ट होल्टन और ब्रायन टर्नर (1989) का तर्क है कि वेबर के सभी समाजशास्त्र के केंद्रीय विषय आधुनिकीकरण और आधुनिकता की समस्याएं थीं और हमें युक्तिकरण को आधुनिकतावाद उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया के रूप में मानना चाहिए। जैसा कि हमने ऊपर देखा है द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म में वेबर ने तर्क दिया कि प्रोटेस्टेंटवाद ने आधुनिक पूंजीवाद का निर्माण करने में मदद की। इसके साथ तर्कसंगत गणना पर जोर दिया गया क्योंकि अधिकतम संभव लाभ का पीछा करने के लिए लाभ का मूल्यांकन आवश्यक था जो विभिन्न प्रकार की कार्रवाई का पालन करके उत्पादित किया जाएगा। पूंजीपति तब किसी भी रास्ते का अनुसरण करेगा जिससे सबसे अधिक लाभ होगा। वेबर ने औपचारिक तर्कसंगतता और मूल तार्किकता के बीच अंतर किया। औपचारिक तार्किकता में किसी दिए गए अंत को प्राप्त करने के सर्वोत्तम साधनों की गणना करना शामिल था और गणनाओं को संख्यात्मक रूप में होना था। न्याय समानता या मानव खुशी जैसे कुछ अंतिम लक्ष्य को पूरा करने के लिए डिज़ाइन की गई वास्तविक तर्कसंगतता में पूंजीवादी व्यवहार ने लाभ को

अधिकतम करने की खोज में लेखांकन की औपचारिक तर्कसंगतता पर प्राथमिक जोर दिया।

धार्मिक विश्वासों द्वारा प्रदान की गई नैतिकता सहित वास्तविक राष्ट्रीयता पूंजीवादी समाजों की पृष्ठभूमि में धूमिल हो गई। वेबर के लिए आधुनिक दुनिया में तर्कसंगतता पूंजीवादी उद्यम तक ही सीमित नहीं होगी। जैसा कि होल्टन और टर्नर बताते हैं इसमें एक तर्कसंगत कानूनी प्रणाली घर और कार्यस्थल को अलग करना तर्कसंगत वित्तीय प्रबंधन और प्रशासन की एक तर्कसंगत प्रणाली का उदय भी शामिल होगा। नौकरशाही पर वेबर के विचार उनके इस विश्वास का एक अच्छा उदाहरण हैं कि आधुनिक समाजों में तर्कसंगतता की विशेषता अधिक होगी। हालांकि वेबर के लिए और बाद के कई समाजशास्त्रियों के लिए तर्कसंगतता उस विश्वास के विपरीत हो सकती है जो धर्म के लिए आवश्यक है। धर्म अपने अनुयायियों से वैज्ञानिक रूप से अपने विश्वासों का परीक्षण करने की कोशिश की अपेक्षा नहीं करते हैं, न ही वे धार्मिक विश्वासों को धार्मिक समूह में शामिल होने की लागत और लाभों पर आधारित होने की अपेक्षा करते हैं। तर्कसंगत आधुनिक दुनिया में हालांकि वेबर ने सोचा था कि धर्म के अनुयायियों के लिए अपने विश्वास को बनाए रखना कठिन होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रोटेस्टेंट संप्रदायों पर चर्चा करते हुए वेबर ने धर्मनिरपेक्षता की विशिष्ट प्रक्रिया की निरंतर प्रगति का खुलासा किया जिसमें धार्मिक अवधारणाओं में उत्पन्न होने वाली सभी घटनाओं का शिकार होती हैं।

अर्थात् प्रोटेस्टेंटवाद पूंजीवाद के विकास में योगदान देगा जिसके लिए सामाजिक जीवन के लिए एक तर्कसंगत दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी जो बदले में धर्म को कमजोर करेगा। इसलिए प्रोटेस्टेंट धर्मों में उनके अपने विनाश के बीज निहित थे। जैसा कि मैल्कम हैमिल्टन कहते हैं एक बार अपने रास्ते पर आधुनिक आर्थिक प्रणाली प्रोटेस्टेंटवाद की धार्मिक नैतिकता की आवश्यकता के बिना स्वयं का समर्थन करने में सक्षम थी जो कई तरह से मदद नहीं कर सकती थी लेकिन आधुनिक समाज में धर्मनिरपेक्षता के बीज अपने स्वयं के प्रचार से बोती थी।

8.8 भारत में हिंदू धर्म, जैन धर्म एवं पूँजीवाद

वेबर ने कहा भारत का मामला लगभग चीन के समान है। 1917 में उन्होंने रीलिजिन ऑफ इंडिया नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने हिंदू

धर्म एवं जैन धर्म की आर्थिक भूमिका का विश्लेषण की। वेबर ने भारत के संदर्भ में जाति व्यवस्था के संरचनात्मक अवरोधों की चर्चा सबसे ज्यादा की। डेविड जेलनर (David Jelner) ने 1982 में मैक्स वेबर, कैपिटलिज्म एंड दि रौलिजिन ऑफ इंडिया नामक एक निबंध लिखा। जेलनर ने हिंदू धर्म के अंग जाति व्यवस्था को भारतीय आर्थिक विकास में बाधक कहा। जाति व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता का विरोध जाति के द्वारा सभी गतिविधियों का नियंत्रण एवं अस्पृश्यता के नियम विकास को रोकते हैं। वेबर ने कहा भारत में सांस्कृतिक धरोहर के नेता ब्राह्मण थे। इनके विचार जड़तावादी थे इनसे सार्थक व्यवसाय शिष्टता एवं नियमपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा थी। ब्राह्मणों को सांसारिक गतिविधियों से अलग रहना था इन्होंने साहित्य की शिक्षा दी। हिंदू धर्म एवं कनफूशियस धर्म में महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ हैं संतु ब्राह्मण शब्द का मूलभाव पूँजीवाद के उदय एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष में बाधक था।

हिंदू धर्म अपनी संपूर्णता में पूँजीवाद में वैचारिक अवरोध उत्पन्न करता था। इस धर्म में एक मूल विचार पुनर्जन्म है। एक हिंदू के लिए उसका जन्म उस जाति में हुआ जिसका हकदार वह अपने पुराने जन्म के व्यवहार और कृत्यों के आधार पर है। जाति के कर्मकांडों के प्रति ईमानदार रह कर एक हिंदू अपने अगले जीवन में बेहतर स्थिति प्राप्त कर सकता है। काल्विन धर्म के विपरीत हिंदू धर्म अत्यधिक पारंपरिक था क्योंकि हिंदू धर्म के नियमों के अनुसार नियमों को स्वीकार करके ही मुक्ति पाई जा सकती है। परिवर्तन और वह भी आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन से अगले जन्म में ऊँची जाति नहीं मिलेगी। हिंदू धर्म के नियमों के अनुसार इस संसार में सक्रियता और सृजन से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि यह संसार एक अस्थायी निवास है। वेबर के अनुसार भारत में आध्यात्मिकता पर बहुत अधिक बल है जो समाज को युक्तिपूर्ण रूप से संगठित करने में बाधक है।

जी. आर. मदान ने वेबर के हिंदू धर्म और जाति व्यवस्था संबंधी विचारों की, जिसमें वेबर इन्हें आर्थिक विकास में बाधक कहते हैं, उनकी आलोचना की। मदान के अनुसार हिंदू धर्म में और स्वयं जाति व्यवस्था में परिवर्तन की धारणा और उपाय हैं। कंचा इलैया ने वेबर का समर्थन किया। इलैया के अनुसार ब्राह्मण ज्ञान मीमांसा परजीवी और आर्थिक विकास में परजीवी है। वेबर के विचारों की विवेचना के लिए भारत में 1960 और 1966 में सेमिनार हुए परंतु इनमें बहुत गंभीरता से विचार नहीं किया गया है। योगेंद्र ने कहा कि वेबर ने धार्मिक विचारों को जितना महत्त्वपूर्ण कहा है वास्तव में ये उतने महत्त्वपूर्ण नहीं होते हैं। सुरेंद्र मुली ने 1958 में मैक्स वेबर के भारत संबंधी विचारों पर एक

चर्चा की परंतु यह चर्चा बहुत सुसंगत व्यापक और गंभीर नहीं है।

8.9 सारांश

मैक्स वेबर ने प्रोटोस्टैंट नैतिकता के प्रमुख तव तार्किकता लाभ की इच्छा परिश्रम बचत एवं पूंजी संग्रह साहस तथा नौकरशाही संगठन है। वेबर का मानना है कि आधुनिक पश्चमी पूंजीवाद का उदय प्रोटोस्टैंट धर्म की इस आर्थिक नैतिकता के फलस्वरूप ही हुआ है। और आधुनिक पूंजीवाद की आत्मा प्रोटोस्टैंटवाद तथा इसके व्यवहार के नियमचारों एवं व्यावहारिक नैतिकता में समाई हुई है

रेमंड एरोन ने वेबर की आलोचना करते हुये यह सत्यापित किया कि मैक्स वेबर ने कभी भी किसी भी प्रकार के कार्य–कारण को स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। अपने अध्ययन में उन्होंने कहीं भी यह दावा नहीं किया था कि प्रोटेस्टेंट एथिक्स (यानी कैल्विनिस्ट एथिक्स) पूंजीवाद के उदय का एकमात्र कारण था। वेबर ने प्रोटेस्टेंटवाद की एक तरह से व्याख्या की लेकिन उसने अन्य प्रकार की व्याख्याओं से इंकार नहीं किया। उसे केवल व्याख्याओं की समग्रता की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त वेबर ने धार्मिक दृष्टिकोण और आर्थिक आज्ञा के बीच संबंध को विश्वसनीय माना है। उन्होंने काफी महत्व की समाजशास्त्रीय समस्या को उठाया है परन्तु यह कहना सही नहीं है कि वेबर ने मार्क्स के ठीक विपरीत एक थीसिस को बनाए रखा। इसका अर्थ है कि वेबर ने कभी भी अर्थव्यवस्था को धर्म के संदर्भ में अर्थव्यवस्था के संदर्भ में नहीं समझाया। वेबर कहते हैं केवल विशेषज्ञों को मेरे सिद्धांत पर टिप्पणी करने की अनुमति है जो एक समाजशास्त्री के रूप में उनकी विशालता को उजागर करता है। वेबर ने स्वयं अपने सिद्धांत की कुछ सीमाओं पर ध्यान केन्द्रित किया है। उनका कहना है कि उनकी प्रोटेस्टेंट एथिक और पूंजीवाद की भावना आदर्शवादी स्थिति नहीं हो सकती है। इसलिए वह कहते हैं कि हालांकि दुनिया वही है जो लोगों के विचार इसे बनाते हैं लेकिन विचारों को प्रगति के लिए एक निश्चित संप्रदाय के लिए आर्थिक प्रेरणा की आवश्यकता होती है।

वह यह भी कहता है कि वह सिक्के का केवल एक पहलू प्रस्तुत कर रहा है भौतिक हित का दूसरा पक्ष और यूरोप की सामाजिक–आर्थिक स्थिति अभी भी है जिसके बारे में उसने बात नहीं की है। विवेकीकरण और विभिन्न अन्य मुद्दों पर वेबर के विचार धर्म और पूंजीवाद के बीच संबंधों पर उनके काम में चित्रित किए गए हैं। एक स्तर पर यह धार्मिक विचारों और पूंजीवाद की

भावना के विकास के बीच संबंधों के अध्ययन की एक श्रृंखला है। दूसरे स्तर पर यह एक अध्ययन है कि कैसे पश्चिम ने एक विशिष्ट तर्कसंगत धार्मिक प्रणाली (कैल्विनवाद) विकसित की जिसने एक तर्कसंगत आर्थिक प्रणाली (पूंजीवाद) के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वेबर ने अन्य समाजों का भी अध्ययन किया जिसमें उन्होंने पाया धार्मिक व्यवस्थाएँ (उदाहरण के लिए कन्फ्यूशीवाद, यहूदी धर्म, हिंदू धर्म आदि) जो एक तर्कसंगत आर्थिक प्रणाली के विकास को बाधित करती हैं। यह दुनिया के कई क्षेत्रों के इतिहास पर इस तरह का राजसी स्वीप है जो वेबेरियन सिद्धांत को इसका स्थायी महत्व देने में मदद करता है।

8.10 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 मैक्स वेबर का प्रोटेस्टेंट नैतिकता सिद्धांत प्रोटेस्टेंटवाद में परिवर्तन को कैसे दर्शाता है?

प्र. 2 मैक्स वेबर का पूंजीवाद की भावना पर चर्चा कीजिए?

प्र. 3 प्रोटेस्टेंट नैतिकता से मैक्स वेबर का क्या तात्पर्य है इसका मूल्यांकन कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म पुस्तक किस लेखक की रचना है?

(अ) इमाईल दुर्खीम (ब) मैक्स वेबर

(स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म पुस्तक किस वर्ष प्रकाशित हुई?

(अ) 1958 (ब) 1916

(स) 1931 (द) 1918

प्र. 3 किसने विश्व के छरू धर्म की व्याख्या की है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर

(द) पार्सन्स (स) मैक्स वेबर

प्र. 4 किसने धर्म को पूंजीवाद की आत्मा कहा है?

(अ) मैक्समूलर (ब) टायलर

(स) मैक्स वेबर (द) कोई नहीं

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Haralombus, M. 1980; Sociology - Themes and Perspectives, Oxford University Press.
2. Madan, T. N. 1991; Religion in India, Oxford University Press.
3. Madan, T. N. 1997; Modern Myths, Locked Minds, Oxford University Press.
4. Macionis J. J. 1997; Sociology, Prentice Hill, Inc.
5. Schaeffer, R. T. & Lamm, R. P. 1992; Sociology, McGraw Hill Inc.
6. Giddens, A. 1989; Sociology, Blackwell Publisher Ltd.
7. Gore, M. S. 1991; Secularism in India, Indian academy of social science.
8. Jain, M.S. 2000; Muslim ethos, Rawat Publication.
9. Weber, M; Sociology of Religion.
10. Chattopadyaya, D. P. 1959; Lokyat : A Study in Ancient Indian Materialism People's Publishing House.

इकाई 9 : पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन : धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सामाजिक यथार्थ

9.3 धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में

9.4 विश्व निर्माण

9.5 विश्व निर्माण के रूप में धर्म

9.6 धर्म पर मौजूदा दृष्टिकोण

9.7 धर्म की अवधारणा

9.8 धर्मनिरपेक्षता

9.9 सारांश

9.10 बोध प्रश्न

9.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में तथा विश्व निर्माण के रूप में धर्म समाजशास्त्र की व्यख्या कर सकेंगे।

- पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म पर मौजूदा दृष्टिकोण एवं सामाजिक यथार्थ के रूप में धर्म की व्यख्या कर सकेंगे।

- पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म की अवधारणा तथा धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी विचार की आप व्यख्या कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

पीटर बर्जर ने तृतीय विश्व के अनेक मुद्दों से लेकर परिवार के समाजशास्त्र, राजनीतिक समाजशास्त्र, धर्म के समाजशास्त्र जैसे अनेक विषयों पर लिखा हैं। उनकी कृतियाँ कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर और दुखाईम जैसे समाजशास्त्रियों के विचारों के साथ–सा घटनावादी समाजशास्त्र जैसे विषयों में दिखाई देती हैं। उनकी कृतियों में एक बात मुख्य रूप से उभर कर आई है कि वे अपनी व्याख्याओं द्वारा सामाजिक संरचना की दमनात्मक शक्तियों का मानवीय स्वायत्ता के साथ सामंजस्य बिठाना चाहते हैं। समाजशास्त्र के अतिरिक्त पीटर बर्जर ने धर्म के क्षेत्र में भी कई पुस्तकें लिखीं हैं, यथा 'पावन सभाओं का शोर''धर्म का सामाजिक यथार्थ और फरिश्ताओं की किंवदन्ती'। समाजशास्त्र के क्षेत्र में लिखी गई पुस्तकों में उनकी सर्वाधिक चर्चित पुस्तकों में 'इनविटेशन टू सोशियोलॉजी' (1963), 'सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ रिआलिटी' (1967) रही है। 'इनविटेशन टू सोशियोलॉजी' पुस्तक में उन्होंने समाजशास्त्र को एक मानवतावादी विषय बनाने की वकालत की है। इस बारे में उन्होंने कहा है कि समाजशास्त्र एक ऐसा विषय है जो मानवीय विश्व को खुशहाल बनाने के उद्देश्य से इसके प्रति अधिकाधिक जागरूकता को प्रोत्साहित करता है। उन्होंने इसमें प्रयोग की जाने वाली वैज्ञानिक विधियों और तकनीकों की महत्ता को रेखांकित करते हुए इनमें किसी भी प्रकार की कमी को अस्वीकार किया है, किन्तु साथ ही इतिहास को मजबूत बनाने की बात भी कही है। समाजशास्त्र को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि यह मानवीय समाज के विकास प्रकृति और उसके नियमों का विज्ञान है।

सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ रिआलिटी पुस्तक पीटर बर्जर ने थॉमस लकमैन के साथ लिखी है। यह पुस्तक ज्ञान के समाजशास्त्र के नियमों को उजागर करती है। अपने समय की व्यापक रूप में पढ़ी जाने वाली सिद्धान्तों पर लिखी गई पुस्तकों में से इस पुस्तक में मोटे रूप दो प्रमुख विषयों का विश्लेषण किया गया है। प्रथम, इस पुस्तक ने सुप्रसिद्ध घटनाक्रियावादी अल्फ्रेड शूज के विचारों को सरल रूप में प्रस्तुत किया जो पहले आसानी से समझ में नहीं आते थे। द्वितीय, इस पुस्तक ने शूज के विचारों को मुख्यधारा समाजशास्त्र के साथ समन्वय करने का प्रयास किया। अप्रत्यक्ष तौर पर यह घटनाक्रियावाद पर ही लिखी एक ऐसी पुस्तक है जिसमें घटनाक्रियावादी परिप्रेक्ष्य को सामाजिक

सरोकारों से जोड़ने का प्रयास किया गया है। यथार्थ की सामाजिक संरचना की व्याख्या करते हुए पीटर बर्जर एवं लुकमान कहते हैं कि कुछ सामाजिक घटनाएं ऐसी होती हैं जिनका दायरा केवल विचारों के संसार तक होता है। ऐसी घटनाओं का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं होता। मानदंड, मूल्य, धर्म और संस्कृति के कई अन्य तत्व ऐसी ही मानसिक प्रक्रिया है जो समाजशास्त्रीय घटनाओं की श्रेणी में आती हैं। ये मानसिक प्रक्रियाएं ही यथार्थ की सामाजिक संरचनाएं है।

सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक आचारों के सम्बन्धों को उद्घाटित करने वाली पुस्तक 'पिरामिड ऑफ सैक्रिफाइस' (1974) में पीटर बर्जर ने मोटे रूप में दो आपस में गुंथे हुए विषयों का सारगर्भित विश्लेषण किया है। ये विषय है प्रथम तृतीय विश्व का विकास, द्वितीय सामाजिक परिवर्तन से जुड़े आचार। इस सम्बंध में पुस्तक के प्रारंभ में ही उन्होंने पच्चीस ऐसी मौलिक प्रस्थापनाएं प्रस्तुत की हैं जो सामाजिक परिवर्तन, विकास और आधुनिकता के विषयों से निकटता से जुड़ी हुई हैं। बर्गर ने अपनी एक अन्य पुस्तक 'फेशिंग अप टू मॉडर्निटी' (1977) में आधुनिकता की पांच प्रमुख विशेषताओं और समस्याओं की चर्चा की है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त पीटर बर्जर ने श्द सेक्रेड कैनोपी (1967) नामक पुस्तक में धर्म से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की व्याख्या की हैं।

9.2 सामाजिक यथार्थ

पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन शुट्ज के योगदान को आगे बढ़ाया है। पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन कहते है कि समाज की वस्तुपरकता व व्यक्ति की विषयपरकता के मध्य द्वंदात्मक सम्बंधो से संज्ञानात्मक संरचनाओं का निर्माण होता है। यथार्थ का निर्माण उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आधार पर निर्मित होता है। यह सामाजिक वास्तविकता के निर्माण से सम्बंधित हैं यह बाहरीकरण (Eutarnalization), वस्तुनिष्ठता (Objectivities) और आंतरिककरण (Internalization) द्वारा निर्मित होता है। पीटर बर्जर के विचारो में व्यक्ति द्वारा निर्मित यथार्थ और सामाजिक संरचना के मध्य द्वंद दिखाई देता है। जिसमे पीटर बर्जर तथा लकमैन ने सामाजिक यथार्थ में सामाजिक संरचना को महत्व दिया है। यथार्थ में सामाजिक संरचना की व्याख्या करते हुए पीटर बर्जर एवं लकमेन कहते है कि कुछ सामाजिक घटनाए ऐसी होती के जिनका दायरा केवल संसार तक ही नही होता ऐसी घटनाओं का भौतिक अस्तित्व नही होता क्योंकि मानदंड, मूल्य, धर्म और संस्कृति के कई अन्य ऐसी मानसिक प्रक्रियाए है जो समाजशास्त्रीय घटनाओं की श्रेणी में आते है। यह मानसिक प्रक्रियाएं ही यथार्थ की सामाजिक संरचना है।

9.3 धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में

द्वितीय विश्व युद्ध के वर्षों के दौरान जिन लेखकों को हमने धर्म के समाजशास्त्र पर सबसे अधिक पढ़ा वे थे मैक्स वेबर, अन्र्स्ट ट्रॉल्त्श, एमिल दुर्खीम और जॉर्ज सिमेल। हालांकि वे अभी भी लोकप्रिय हैं और पढ़े जाते हैं। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कुछ अन्य लेखकों को सामने लाया गया जिनके धर्म के समाजशास्त्र पर काम ने एक सफलता हासिल की है। इनमें टैल्कॉट पार्सन्स, डेविड मार्टिन, रॉबर्ट वुथनोव, रॉबर्ट बेलाह और मुख्य रूप से पीटर बर्जर शामिल हैं। अपने संबंधित लेखन में इन लेखकों ने अनुभवजन्य वास्तविकता पर ध्यान देने के साथ–साथ उच्च स्तर के सिद्धांतों को देखने का प्रयास है। लेकिन उनमें से यह माना जाता है कि बर्जर ने धर्म के अध्ययन में सबसे अधिक योगदान दिया है।

पीटर बर्जर के सैद्धांतिक ढांचे के बुनियादी पहलुओं को उनकी पुस्तक द सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ रियलिटी (1966) में रखा गया है जिसे उन्होंने थॉमस लकमैन के साथ संयुक्त रूप से लिखा था। यह पुस्तक ज्ञान के समाजशास्त्र से जुड़ी है जो दृढ़ विश्वास एवं प्रतिबद्धता और सामाजिक वास्तविकता के बीच संबंधों की खोज करती है। कैसे और क्यों लोग कुछ घटनाओं और विश्वासों से आश्वस्त होते हैं? वे उनके प्रति प्रतिबद्ध क्यों रहते हैं भले ही लोगों के कुछ समूह या व्यक्ति उनकी विश्वसनीयता और सत्यता के बारे में गंभीर संदेह व्यक्त कर सकते हैं? कैसे विश्वास और प्रतिबद्धता सामाजिक वास्तविकता के बारे में उनके दृष्टिकोण को आकार देते हैं? इस संयुक्त प्रकाशन में जो तर्क विकसित हुए जो किसी विशिष्ट संस्था से संबंधित होने के बजाय अभिविन्यास में सामान्य थे।

पीटर बर्जर ने द सेक्रेड कैनोपी (1967) में धर्म के बारे में विस्तार से उन्हीने चर्चा की है। बर्जर की जीवन–पर्यंत धर्म का समाजशास्त्र विभिन्न प्रतिबद्धताओं में से एक रहा हैं, और यह उनके अकादमिक के साथ–साथ धर्म पर लोकप्रिय लेखन के लिए है जिससे वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जाने जाते हैं। उनका प्रारंभिक ध्यान अमेरिका और यूरोप में धर्म (विशेष रूप से ईसाई धर्म) के अध्ययन पर था। बाद में उन्होंने इस्लाम और करिश्माई ईसाई धर्म के प्रसार को शामिल करने के लिए अपनी जांच के दायरे को विस्तृत किया। दिलचस्प बात यह है कि उनकी किताबें विशेष रूप से 'ए रुमर ऑफ एंजल्स' (1969) द हेरेटिकल इंपीरेटिव (1979) और रिडीमिंग लाफ्टर (1997) ने अध्ययन के मध्य गहरा प्रभाव डाला है और उन्हें अक्सर उद्धृत भी किया जाता है। व्यापक

दर्शकों के लिए उनके लेखन की अपील उनके शुरुआती बिंदु में निहित है जो कि अनुभवजन्य है। जो रोजमर्रा के जीवन के अनुभवों से शुरू होती है और उनके गद्य की स्पष्टता में मिलती है।

9.4 विश्व निर्माण

धर्म पर पीटर बर्जर बर्जर का अध्ययन विश्व निर्माण के उद्यम में अपनी जगह तलाशने के साथ शुरू होता है। प्रत्येक मानव समाज अपने चारों ओर एक दुनिया के निर्माण के कार्य से संबंधित है विभिन्न घटनाओं के अर्थ को समझना, उनके बीच संबंध बनाना, कार्य–कारण के सिद्धांतों को तैयार करना, प्राकृतिक शक्तियों को नियंत्रित करने या उनकी प्रार्थना करने का प्रयास करना आदि। मनुष्य जो भी और जिस भी दुनिया का निर्माण करता है, उसका कोई अन्य अस्तित्व नहीं है सिवाय इसके कि वे सामूहिक रूप से उसे क्या देते हैं।

पीटर बर्जर लिखते हैं, समाज मनुष्य की उपज है। मानव क्रियाकलाप और चेतना द्वारा उसे प्रदान की गई वस्तु के अलावा उसका कोई अन्य अस्तित्व नहीं है। मनुष्य से अलग कोई सामाजिक वास्तविकता नहीं हो सकती। पीटर बर्जर आगे लिखते है, मानव और समाज के बीच संबंधों को समझने पर पीटर बर्जर काफी ध्यान देता है, जिसे वह द्वंद्वात्मक रूप में पाता है, इस अर्थ में कि 'समाज मनुष्य का उत्पाद है और मनुष्य समाज का उत्पाद है।' मनुष्य समाज का निर्माण करता है, और बदले में उसका उत्पाद उसे परिभाषित, प्रभावित और आकार देता है। उसकी पहचान समाज से होती है। समाज के बाहर (या उसके बिना) उसका अस्तित्व अकल्पनीय है। उनके जन्म से पहले भी समाज था और उनकी मृत्यु के बाद भी रहेगा। और साथ ही, समाज अपनी शर्तों पर नहीं बदलता; यह मनुष्य ही है जो समाज में परिवर्तन लाता है, जिससे वह उसमें सुधार और उसे अधिक रहने योग्य और अर्थपूर्ण बनाता है। पीटर बर्जर का यहाँ यह कहना है कि धर्म की घटना सहित मनुष्य और समाज की द्वंद्वात्मकता से अलग किसी भी सामाजिक वास्तविकता को अनुभवजन्य रूप से नहीं समझा जा सकता है।

पीटर बर्जर कहते हैं कि 'समाज में मनुष्य' और 'समाज में मनुष्य की द्वंद्वात्मकता' में तीन प्रक्रियाएं शामिल हैं, जिन्हें वह 'क्षण या चरण' कहता है, अर्थात् बाह्यकरण, वस्तुनिष्ठता और आंतरिककरण। बाहरीकरण प्रक्रिया में मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दोनों गतिविधि में दुनिया में मानव का निरंतर प्रवाह है। सरल शब्दों में इसका अर्थ है कि मनुष्य जैविक जीव अतिरिक्त–जीव या

अतिरिक्त–दैहिक पर्यावरण के साथ लगातार बातचीत करके मनुष्य सामाजिक प्राणी बन जाता है जिसमें भौतिक और मानव (समाज और संस्कृति) दुनिया दोनों शामिल हैं।

वस्तुनिष्ठता तब होती है जब मानव शारीरिक और मानसिक गतिविधियों के उत्पाद स्वयं की वास्तविकता प्राप्त करते हैं जो इसके रचनाकारों को स्वयं के बाहर एक तथ्यात्मकता के रूप में सामना करता है। यह तुरंत हमारे दिमाग में जर्मन विद्वानों, लुडविग फेउरबैक और कार्ल मार्क्स के लेखन को लाएगा जिन्होंने अलगाव की अवधारणा को आगे बढ़ाया। ये प्रक्रियाएँ विश्व का निर्माण करती हैं वस्तुगत और विषयपरक दोनों तरह से। लेकिन अलग–अलग इंसान दुनिया के बारे में कैसे सीखते हैं और कैसे व्यवहार करते हैं? यहाँ बर्जर के लिए महत्वपूर्ण प्रक्रिया समाजीकरण है। जिसे उस प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके द्वारा समाज एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान की वस्तुनिष्ठ प्रणालियों (रीति–रिवाजों, मूल्यों, मानदंडों) को प्रसारित करता है। सीखने की इस प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति समाज के वस्तुपरक सांस्कृतिक अर्थों को आत्मसात करते हैं और इन अर्थों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं।

पीटर बर्जर का कहना है कि यह समाजीकरण के माध्यम से होता है कि विचाराधीन समाज की स्वीकार की गई गुणवत्ता को आंतरिक रूप दिया जाता है। व्यक्ति इन अर्थों को उपयोगी वांछनीय और सही के रूप में देखता है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे उन्हें अपरिहार्य सार्वभौमिक वस्तु की प्रकृति के हिस्से के रूप में मानें जो कि सही और नियत है। वह व्यक्ति जो इन अर्थों को आत्मसात करता है, न केवल उन्हें धारण करता है बल्कि उनका प्रतिनिधित्व और अभिव्यक्त भी करता है। एक समाज के मुख्य सांस्कृतिक अर्थ (और धर्म उनमें से एक है) को केवल तभी कायम रखा जा सकता है जब वे उस समाज के अधिकांश सदस्यों द्वारा आत्मसात किए जाते हैं।

9.5 विश्व निर्माण के रूप में धर्म

पीटर बर्जर की धर्म की अवधारणा एक विश्व निर्माण और विश्व–व्यवस्था गतिविधि के रूप में समाज की उनकी समझ से अनुसरण करती है। उनका कहना है कि समाज व्यक्तियों के असतत अनुभवों और अर्थों पर एक सार्थक आदेश देता है, जिसके लिए वह श्नोमोसश शब्द का प्रयोग करता है। जब हम कहते हैं कि समाज एक विश्व–निर्माण उद्यम है, तो हमारा मतलब यह होता है कि यह एक आदेश देना, या नामांकित करना या गतिविधि करना है। बर्जर

नोमोस को ब्रह्मांड से अलग करता है; उसका कहना है कि पूर्व का अर्थ उस अर्थपूर्ण व्यवस्था से है जो समाज अपने सदस्यों पर थोपता है, जबकि बाद का अर्थ है ब्रह्मांड, पुरुषों के चारों ओर का क्षेत्र, जो उनके लिए बारहमासी रहस्यपूर्ण है। सभी समाज नोमोस और कॉस्मॉस के बीच एक संबंध विकसित करने के लिए चिंतित हैं। इस मोड़ पर बर्जर समाजों की निरंतरता के संदर्भ में सोचता है। एक छोर पर वे हैं जहां सामाजिक रूप से स्थापित नामो में निर्विवाद होने का गुण है, लगभग स्वीकार किया गया। इस मामले में उन अर्थों के बीच विलय होता है जो नाम देता है और मौलिक अर्थ जो कि ब्रह्मांड में निहित माना जाता है। इन समाजों में नामो को ब्रह्मांड का सूक्ष्म–ब्रह्मांडीय प्रतिबिंब माना जाता है। ब्रह्मांड के मूलभूत अर्थ लोगों को उनके नोमोस के माध्यम से प्रकट होते हैं। यह स्थिति सरल और पारंपरिक समाजों में देखने को मिलती है। इस प्रकार यह अस्वाभाविक है कि पारंपरिक चीनी समाज में राजा को स्वर्ग का शासनादेश माना जाता था। वह पृथ्वी पर दिव्य शक्तियों का प्रतिनिधि था।

जटिल समाजों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उदय के साथ और विभिन्न घटनाओं के कारण निष्पक्ष रूप से स्थापित होने के कारण ऐसा होता है जिसे मैक्स वेबर कहते हैं 'ब्रह्मांड का डी–रहस्यीकरण'। एक समय में विस्मय पैदा करने वाली घटनाएं अब ऐसा नहीं करती हैं। एक समय में जो एक रहस्य था वह अब वैज्ञानिक विचारों के दायरे में है, पूरी तरह से समझाने योग्य और विश्वसनीय है। लेकिन ऐसा नहीं है कि पूरा ब्रह्मांड अपनी तमाम बारीकियों और विषमताओं के साथ वैज्ञानिक ज्ञान की परिधि में आ जाता है। कई मामलों में नोमोस की स्थिरता को 'मनुष्यों के ऐतिहासिक प्रयासों की तुलना में अधिक शक्तिशाली स्रोतों' से प्राप्त करना माना जाता है। ये शक्तिशाली स्रोत कौन और क्या हैं जो वैज्ञानिक रूप से अबोध्य बने हुए हैं और समाज को स्थिरता प्रदान करते हैं? इस समय या अवसर पर बर्जर कहते है कि धर्म हमारे तर्क में प्रवेश करता है। इस प्रकार धर्म को 'सामाजिक रूप से निर्मित आदेश' (यानी, नोमोस) और 'ब्रह्मांड में निहित मौलिक अर्थ' (यानी, ब्रह्मांड) के बीच संबंधों के परिवेश में देखा जाना चाहिए।

9.6 धर्म पर मौजूदा दृष्टिकोण

पीटर बर्जर धर्म के अपने अध्ययन में स्पष्ट रूप से कहता है कि उसके काम में कोई भी धर्मशास्त्रीय या धर्मविरोधी प्रभाव मौजूद नहीं है। वह धर्म की वास्तविकता को न तो सिद्ध कर रहा है और न ही असिद्ध कर रहा है। न ही

वह धर्मशास्त्रियों के साथ श्संवादश में शामिल होने के लिए समाजशास्त्रीय सिद्धांत की आंतरिक आवश्यकता महसूस करता है हालांकि वह यह कहता है कि कुछ समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण उनके लिए प्रासंगिक हो सकते हैं। धर्म की परिघटना में दो प्रश्नों के बीच के अंतर को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए। धर्म पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अनुभवजन्य रूप से स्थापित और परीक्षित हैं, और वे धर्म की सच्चाई या झूठ से नहीं निपटते हैं। धार्मिक पूछताछ गैर–अनुभवजन्य और उन्मुखीकरण में प्रामाणिक हैं।

यह भेद पीटर बर्जर को धर्म को परिभाषित करने की ओर ले जाता है। वह प्रस्तुत करता है कि परिभाषाएँ न तो सत्य हैं और न ही असत्य। वे उपयोगी हैं या कम हैं। धर्म की प्रत्येक परिभाषा में एक बिंदु है, कुछ उपयोगिता है, हालांकि यह गलत धारणा पर आधारित हो सकती है। एक उदाहरण के रूप में, बर्जर मैक्स मुलर की परिभाषा का उदाहरण देते हैं, जो है–'धर्म भाषा का रोग है'। इसे 'भाषा के अपर्याप्त तर्कसंगत सिद्धांत' के आधार पर खारिज किया जा सकता है, लेकिन यह जो महान सेवा करता है वह यह है कि यह हमें बताता है कि भाषा एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है जिसका उपयोग मनुष्य विश्व–निर्माण के अपने प्रयासों में करता है।

पीटर बर्जर मैक्स वेबर की इस स्थिति से सहमत नहीं है कि अध्ययन के अंत तक धर्म की परिभाषा को स्थगित किया जा सकता है। यह एक अध्ययन में पूरी तरह से परिभाषा से बचने का एक अनुसंधान के क्षेत्र को गलत बना देगा। वेबर के पास निश्चित रूप से धर्म की एक 'अंतर्निहित' परिभाषा है, इसके 'पदार्थ' (या सामग्री) के संदर्भ में लेकिन वेबर के स्थान के विपरीत बर्जर अन्वेषण के लिए समर्थन देता है पीटर बर्जर कहते है कि किसी भी घटना के अध्ययन के तहत एक ठीक से तैयार की गई और सोची समझी परिभाषा होनी चाहिए इसकी जटिलता के बावजूद धर्म कोई अपवाद नहीं है।

वेबर की तुलना में बर्जर धर्म के प्रति दुर्खीम के दृष्टिकोण को मौलिक रूप से समाजशास्त्रीय दृष्टि में पाते हैं। दुर्खीम कहते हैं– (1) पवित्र चीजों के संदर्भ में धर्म को परिभाषित किया जाना चाहिए (2) धर्म की सामाजिक कार्यक्षमता अर्थात् धर्म एक नैतिक समुदाय में लोगों को बांधता है (3) धर्म को एक सामाजिक तथ्य के रूप में समझना चाहिए जिसे अन्य पूर्ववर्ती सामाजिक तथ्यों के संबंध में समझाया जाना है। बर्जर कहते है कि दुर्खीम भी पवित्र और अपवित्र के द्विभाजन के संदर्भ में धार्मिक घटनाओं के एक ठोस विवरण के साथ शुरू होता है लेकिन अंत में यह एक कार्यात्मक परिभाषा बन जाती है धर्म वह

है जो यह करता है यह समाज के विभिन्न संस्थानों में योगदान देता है।

दुर्खीम की परंपरा का अनुसरण करते हुए धर्म की परिभाषा इसके सामाजिक कार्यों के संदर्भ में थॉमस लकमैन के काम में द इनविजिबल रिलिजन (1967) शीर्षक से है। उनके लिए धर्म उद्देश्यपूर्ण, सर्वव्यापी और नैतिक रूप से बाध्यकारी अर्थों के ब्रह्मांड का निर्माण करके अपनी जैविक प्रकृति को पार करने के लिए मनुष्य की क्षमता को संदर्भित करता है। नतीजतन धर्म न केवल एक सामाजिक घटना (दुर्खीम के अर्थ में) बन जाता है, बल्कि 'मानवशास्त्रीय घटना' भी बन जाता है क्योंकि यह संपूर्ण गैर जैविक मानव अस्तित्व को गले लगाता है। इस प्रकार लकमैन के लिए वास्तव में मानव सब कुछ धार्मिक है और गैर धार्मिक घटनाएं वे हैं जो मनुष्य की पशु प्रकृति में आधारित हैं।

इन विचारों पर टिप्पणी करते हुए पीटर बर्जर अपनी असहमति व्यक्त करता है जैसा कि हमने मैक्स वेबर से असहमत है। दुर्खीम धर्म के कार्यों से अधिक चिंतित थे और इसलिए धर्म के मूल पहलू अपेक्षाकृत विकसित नहीं रहे। लकमैन के संबंध में, बर्जर एक ऐसे दृष्टिकोण पर सवाल उठाते हैं जो धर्म को सभी मानवीय गतिविधियों के साथ समानता रखता है वह सब जो मानव है। निस्संदेह, धर्म प्रतीकात्मक स्व–उत्कृष्टता का एक तरीकाश है, लेकिन ऐसी अन्य मानवीय गतिविधियाँ हैं जिनमें समान गुण हैं, फिर भी वे धर्म से बहुत भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, आधुनिक विज्ञान में भी यही गुण मिलता है, लेकिन इसे धर्म के साथ तुलना करना गलत होगा। बर्जर धर्म की एक ठोस परिभाषा की तलाश करते हैं, यानी धर्म को उसके सार के संदर्भ में, उसके पास क्या है, के संदर्भ में परिभाषित करते हैं। वह इसे उन दृष्टिकोणों से अलग करता है जो धर्म के मानवशास्त्रीय आधार से शुरू होते हैं जिनके लिए धर्म एक मानवीय विशेषता है जो मानव हैं।

9.7 धर्म की अवधारणा

पीटर बर्जर एक पवित्र ब्रह्मांड के विचार को प्रस्तुत करते हुए धर्म की एक ठोस परिभाषा प्रस्तुत करता है और कहता है कि धर्म मानव उद्यम है जिसके द्वारा एक पवित्र ब्रह्मांड की स्थापना की जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो धर्म एक पवित्र रूप में ब्रह्मांडीकरण है। बर्जर कहते हैं यह परिभाषा रोडोल्फ ओटो और मिर्सिया एलियाडे के लेखन से ली गई है। हालांकि बर्जर दुर्खीम के भेद को संदर्भित करता है और वह स्पष्ट रूप से कहता है कि वह जिस पवित्र अवधारणा का उपयोग करता है वह ओटो के समय से धर्म पर विद्वानों के

लेखन से है।

उनके लिए पवित्र रहस्यमय और भयानक शक्ति की गुणवत्ता को संदर्भित करता है। यह मनुष्यों से भिन्न है और साथ ही यह उनसे संबंधित है। पवित्रता मानव अनुभव की वस्तुओं में निवास करती है इस प्रकार इस गुण का श्रेय प्राकृतिक घटनाओं और वस्तुओं, मनुष्यों को, और उन चीजों को दिया जाता है जो पुरुषों ने उत्पन्न की हैं। पवित्र चट्टानें, पवित्र वस्त्र, पवित्र समय, पवित्र उपकरण, पवित्र स्थान आदि हैं। दुर्खीम की तरह, बर्जर भी सोचते हैं कि पवित्र और अपवित्र क्षेत्रों में वास्तविकता का द्विभाजन संबंधित है। अपवित्र की श्रेणी को नकारात्मक रूप से परिभाषित किया गया है यह पवित्र का विलोम या पवित्र स्थितियों की अनुपस्थिति है। दुर्खीम के लिए यह ध्यान दिया जा सकता है रोज़मर्रा की गतिविधियाँ सांसारिक जीवन अपवित्र के क्षेत्र का निर्माण करती हैं लेकिन वे असाधारण शक्तियों से प्रभावित होने पर पवित्र हो सकती हैं। इसका विपरीत भी सत्य है। पवित्र वस्तुएँ अपनी शक्ति खो सकती हैं और सामान्य हो सकती हैं। दुर्खीम के लिए पवित्रता वस्तुओं पर आरोपित है और यह एक ऐसी गतिविधि है जिसे विवेक (सामूहिक चेतना) ने ऐतिहासिक रूप से किया है।

पवित्र और अपवित्र के द्विभाजन के अलावा पीटर बर्जर ने पवित्र और अराजकता के एक और द्विभाजन का अध्ययन करते है। उनका यह विचार मानव और प्रकृति निर्माण के कई मिथकों को पढ़ने से उभरता है। पीटर बर्जर कहते है कि ब्रह्मांड में पूरी तरह से अराजकता थी इससे पहले कि भगवान ने सब कुछ अपने नियंत्रण में लाया, पुरुष और महिला को बनाया, उन्हें पवित्र ज्ञान का भंडार सौंपा, और उन्हें अपने और अपने वंश के लिए हमेशा के लिए एक खुशहाल जीवन जीने का आशीर्वाद दिया, बशर्ते कि वे परमात्मा की आज्ञा का पालन करें। यदि वे पवित्र ज्ञान की सदस्यता लेने में विफल रहे तो वे अव्यवस्था में पड़ जाएँगे और यही उनका अंत होगा। धर्म लोगों को सिखाता है कि पवित्र वस्तुओं में निहित 'खतरनाक' शक्तियां होती हैं जिन्हें ठीक से व्यवहार न करने की स्थिति में वे हमेशा अपना समर्थन और पक्ष वापस ले सकते हैं। पवित्र के साथ संबंध खोने का अर्थ होगा अराजकता से घिर जाना। धर्म आतंक को दूर रखता है। यदि आदेश मानव समाज की पहली (और सबसे महत्वपूर्ण) आवश्यकता है तो धर्म का महत्वपूर्ण कार्य इसकी आदेश देने की क्षमता है।

9.8 धर्मनिरपेक्षता

पीटर बर्जर द्वारा किए गए बिंदुओं में से एक यह है कि कुछ समाजों में ब्रह्मांड को हमेशा पवित्र नहीं माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, आधुनिक

समाज में, ब्रह्मांड को 'धर्मनिरपेक्ष' करने, उसकी पवित्रता से वंचित करने के प्रयास किए गए हैं। आधुनिक विज्ञान ने इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि पीटर बर्जर सोचते हैं कि मूल रूप से सभी ब्रह्मांडीय संस्थाओं (या ब्रह्मांड) का एक पवित्र चरित्र था पीटर का कहना है कि ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो मनुष्य के अधिकांश संसार पवित्र संसार रहे हैं। बर्जर को ऐसा प्रतीत होता है कि सभी संभावना में पवित्रता ही एकमात्र तरीका था जिसके द्वारा मनुष्य ब्रह्मांड की कल्पना कर सकता था। 1980 के दशक तक अधिकांश सामाजिक वैज्ञानिकों ने सोचा था कि आधुनिक दुनिया में ईश्वर की अवधारणा तेजी से पतली होती जा रही है। पीटर बर्जर ने अपने धर्म की सामाजिक वास्तविकता में लिखते है कि शायद इतिहास में पहली बार दुनिया की धार्मिक वैधताओं ने न केवल कुछ बुद्धिजीवियों और अन्य सीमांत व्यक्तियों के लिए बल्कि पूरे समाज के व्यापक लोगों के लिए अपनी विश्वसनीयता खो दी है। 1974 में उन्होंने अपनी ही थीसिस को खारिज कर दिया। उन्होंने अपने रिलिजन इन ए रेवोल्यूशनरी सोसाइटी में लिखा है कि एक समय में उन्होंने (और कई अन्य लोगों ने) धर्मनिरपेक्षता की प्राप्ति और अपरिवर्तनीयता दोनों को कम करके आंका था।

1998 में द क्रिश्चियन सेंचुरी में छपे एक लेख में पीटर बर्जर ने अपने पहले के लेखन में यह गलती स्वीकार की कि आधुनिकता के कारण अनिवार्य रूप से धर्म में गिरावट आई है। धर्मनिरपेक्षीकरण थीसिस में बर्जर ने दो महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। सबसे पहले उन्होंने दुनिया के बढ़ते युक्तिकरण पर मैक्स वेबर की थीसिस को मजबूत किया। बर्जर ने इजरायली भविष्यवक्ताओं पर अपने काम में पुराने नियम के एकेश्वरवाद में तर्कसंगतता के बीजों का पता लगाया। इस तरह उन्होंने वेबर (और अन्य, जैसे ट्रॉल्त्श, रॉबर्ट मर्टन और मार्टिन) द्वारा आयोजित तर्क का समर्थन किया कि यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और प्रोटेस्टेंटवाद ने अनजाने में और विडंबनात्मक रूप से उनके पतन में योगदान दिया। उन्होंने अलौकिक को सरल बनाकर भगवान को एक नियमित और तर्कसंगत इकाई बनाकर और यह कहकर कि परमात्मा के संचालन पूर्वानुमेयता की सीमा के भीतर थे ऐसा किया। इसने तर्कसंगत सोच विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास की अनुमति दी और पूंजीवाद के उदय में भी सहायता की। इसने ऐसी स्थितियाँ बनानी शुरू कर दीं जहाँ अधिकांश लोग ईश्वरविहीन जीवन जीने के बारे में सोच सकते थे।

दूसरा अल्फ्रेड शूत्ज़ की परिघटना को बढ़ावा देते हुए बर्जर ने लोगों के जीवन–संसारों के बहुलीकरण के उनके विश्वास प्रणालियों पर प्रभाव के बारे में

बात की। उनकी थीसिस थी कि बहुलवाद का उदय स्थिर विश्वासों के समूह को कमजोर करता है। जब किसी समाज में कई मान्यताएँ विचार और धारणाएँ होती हैं तो इसका मतलब है कि इसमें स्थिर विश्वासों का कोई एक आधार नहीं होगा, क्योंकि नए और नए 'मानसिक कार्यों के उत्पाद' सतह पर आते रहेंगे, और समय के साथ पुराने भी हो जाएँगे। यह एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया बहुलता पैदा करने वाली शक्तियाँ आधुनिकता के साथ–साथ चलती रहती हैं।

बर्जर ने आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रियाओं के बीच एक आंतरिक संबंध देखा जो उन्हें जोड़ता था वह था 'बहुलवाद'। हमने पहले उल्लेख किया है कि 1974 के बाद से बर्जर ने अपनी प्रारंभिक थीसिस पर संदेह करने के लिए कई कारण दिए हैं कि आधुनिकता ने धर्म को कमजोर कर दिया है। उन्होंने दिखाया है कि आधुनिकता, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पूंजीवाद और तर्कसंगत सोच के उदय की परवाह किए बिना, लोगों की कल्पना और जीवन के तरीकों को पकड़ते हुए धर्म एक मजबूत और शक्तिशाली शक्ति के रूप में मौजूद है। उन्होंने धर्मनिरपेक्षीकरण थीसिस में अपने विश्वास को संशोधित करने के लिए निम्नलिखित कारणों की पेशकश की है–

(1) संयुक्त राज्य अमेरिका में रूढ़िवादी और इंजील चर्चों का विकास हुआ है।

(2) उदार चर्चों में गिरावट आई है।

(3) अन्य पश्चिमी समाजों में धर्म में रुचि बनी हुई है।

(4) दुनिया के अन्य हिस्सों में धर्म की जीवन शक्ति है।

हालाँकि दुनिया को धर्म के पुनरुत्थान के रूप में देखने के लिए बर्जर की आलोचना की गई थी लेकिन उन्होंने इन सभी वर्षों में अपनी थीसिस का सफलतापूर्वक बचाव किया है। बुनियादी बहस यह रही है कि कुछ लोगों ने आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षता के बीच एक आवश्यक संबंध देखा है यानी आधुनिकीकरण समाज पर धर्म की पकड़ में गिरावट की ओर ले जाता है जबकि अन्य इस तरह के भेद पर संदेह करते हैं। हालाँकि संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप के बीच अंतर यह है कि अमेरिकी चर्च जाना जारी रखते हैं और अक्सर अपनी पारंपरिक मान्यताओं को व्यक्त करते हैं। उनमें से लगभग चार करोड़ स्वयं को पुनः जन्म लेने वाले ईसाई कहते हैं। यूरोप में इन चीजों का सामना नहीं करना पड़ता है, लेकिन यहां भी, चर्चों की उपस्थिति कम होने

और लोगों द्वारा अपने आधिकारिक पंथ का पालन नहीं करने के बावजूद, चर्च समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह एक घटना है जिसे ग्रेस डेवी (2001) बिना विश्वास के संबंधित कहती है।

इसके विपरीत पीटर बर्जर लिखते हैं बाकी दुनिया बड़े पैमाने पर धार्मिक विस्फोटों से भरी है। उन्होंने यह भी कहा है कि कुछ सबसे प्रभावशाली धार्मिक उतार–चढ़ाव अपेक्षाकृत आधुनिक परिवेश में हो रहे हैं जैसे कि उग्रवादी इस्लामवाद और पेंटेकोस्टलिज्म का उल्लेखनीय विस्तार । इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि धर्मनिरपेक्षता की घटना मौजूद नहीं है। यहां याद रखने वाली बात यह है कि दुनिया के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में इसकी संरचना और आधार अलग–अलग हो सकते है। संयोग से यूरोप में मौजूद धर्मनिरपेक्षता के संस्करण को यूरो धर्मनिरपेक्षता कहा जाता है। बर्जर का दावा है कि हमें यह नहीं मानना चाहिए कि जहां भी धर्मनिरपेक्षता मौजूद है वहाँ आधुनिकता का सामान्य सहवर्ती है। आज बर्जर की स्थिति यह है कि यह बहुलवाद है जो पारंपरिक मान्यताओं और प्रथाओं को कम कर रहा है। आने वाले समय में समाज पर धर्म की पकड़ बनी रहेगी लेकिन यह एक एकीकृत अखंड धर्म नहीं होगा बल्कि यह बहुलवाद वाला धर्म होगा।

9.9 सारांश

पीटर बर्जर ने धर्म के समाजशास्त्र में जबरदस्त प्रभाव डाला है। उन्होंने धार्मिक प्रतिबद्धता की समाजशास्त्रीय प्रकृति, आधुनिक समय में धार्मिक परिवर्तन, धार्मिक और आर्थिक संस्थानों के बीच संबंध, धर्मनिरपेक्षता और इसके संशोधन, बाइबिल के अध्ययन और धर्मशास्त्र और समाजशास्त्र के बीच आंतरिक अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वुडहेड (2001) लिखते हैं कि पीटर बर्जर का करियर चार दशक पहले शुरू हुआ था (उनकी पहली पुस्तक 1961 में छपी थी) अब यह है कि कुछ विषय जिन पर उन्होंने पहले लिखा था उन्हें धर्म के समाजशास्त्र की मुख्यधारा में ले लिया गया है। एक उत्कृष्ट उदाहरण डी–सेकुलराइजेशन की अवधारणा का है जिस पर बर्जर ने 1977 में लिखना शुरू किया जो अब इस बहस के केंद्र में है कि क्या दुनिया तेजी से 'ईश्वरविहीन' या 'ईश्वर–पूर्ण' होती जा रही है। इसी तरह बर्जर की धर्म और वैश्वीकरण में रुचि रही है एक ऐसा विषय है जो पिछले दस वर्षों में लोकप्रिय बहुत हुआ है। आगे के विश्लेषण के लिए 'जीवन संसारों के बहुलीकरण' की उनकी अवधारणा को भी चुना गया है। वास्तव में कुछ विद्वान सोचते हैं कि यह समकालीन विश्व को समझने के लिए एक नया प्रतिमान प्रदान करता है।

9.10 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में व्यख्या कीजिए?

प्र. 2 पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म पर मौजूदा दृष्टिकोण एवं सामाजिक यथार्थ के रूप में धर्म की व्यख्या कीजिए?

प्र. 3 पीटर बर्जर एवं थामस लकमैन का धर्म की अवधारणा तथा धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी विचार की व्याख्या कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 इनविटेशन टू सोशियोलॉजी किसकी कृति है?

(अ) इमाईल दुर्खीम (ब) पीटर बर्जर (स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 किसने धर्म को धर्म एक सामाजिक पुनर्निर्माण के रूप में माना है?

(अ) पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन (ब) थामस कुहन

(स) फ्रायड (द) गिडेंस

प्र. 3 बाहरीकरण, वस्तुनिष्ठता और आंतरिककरण किसकी अवधारणा है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर

(स) पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन (द) पार्सन्स

प्र. 4 सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ रिआलिटी पुस्तक है?

(अ) क्लिफ़र्ड गीट्र्ज (ब) मैक्स वेबर

(स) पीटर बर्जर एवं थॉमस लकमैन (द) कोई नही

9.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Folld, Gavin, 1996. An Introduction to Hinduism, Cambridge : Cambridge University Press.

2. Fuller, C. J. 1992. The Camphor Flame : Popular Hinduism and Society in India, Princeton, N. J. : Princeton University Press.

3. Gerth, H.H. and C.W. mills (eds.). 1948. From Max Weber : Essays in Sociology, London : Routeledge and Kegan Paul.

4. Ghurye, G.S. 1964 (2nd edn.). Indian Sadhus, Bombay : Popular Prakashan. 5. Gold, Daniel, 1987. The Lord as Guru : Hidni Sants and North Indian Tradition, Oxford : Oxford University Press.

5. Gore, M.S. 1991. Secularism in India, Allahabad Indian Academy of Social Science.

6. Grewal, J.S. 1990. The sikhs of the Punja, Cambridge University Press.

7. Gross, Robert 1992. The Sadhus of India : A study of Hindu Ascetism, Jaipur and New Delhi : Rawat Publications.

8. Haralombhus, M. 1980. Sociology - Themes and Perspectives, New Delhi : Oxford University Press.

9. Hardiman, David. 1987. The Coming of the Devi : Adivasi Assertion in Western India, Delhi : Oxford University Press.

इकाई 10 :क्लिफर्ड गीट्र्ज का धर्म पर योगदान

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 क्लिफर्ड गीट्र्ज का धर्म सम्बन्धी विचार

10.3 धर्म की परिभाषा

10.4 प्रतीक का अर्थ

10.5 प्रतीकों की एक प्रणाली के रूप में धर्म

10.6 विश्व दृश्य

10.7 धार्मिक प्रतीकों में विश्वास

10.8 सारांश

10.9 बोध प्रश्न

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप क्लिफ़र्ड गीट्र्ज का धर्म का समाजशास्त्र की व्यख्या कर सकेंगे।
- क्लिफ़र्ड गीट्र्ज धर्म को किस तरह एक प्रतीक के रूप में माना है और विश्व दृष्टि में उसकी क्या विशेषता रही है आप उसकी व्यख्या कर सकेंगे।
- क्लिफ़र्ड गीट्र्ज के धर्म सम्बन्धी एवं सांस्कृतिक सम्बन्धी विचार की आप व्याख्या कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

प्रसिद्ध अमेरिकी मानवशास्त्री क्लिफ़र्ड गीट्र्ज (1926–2006) को मुख्यतः संस्कृति एवं धर्म अध्ययन के क्षेत्र में व्याख्यात्मक दृष्टिकोण के लिए जाना जाता है। इसे सिम्बॉलिक एंथ्रोपोलॅजी के विकास और विशेषज्ञता के रूप में भी देखा गया है। मानवशास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय रहते हुए गीट्र्ज ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि अध्ययन का यह क्षेत्र बहुत छोटे सामाजिक समूह की गतिविधियों तक ही स्वयं को सीमित कर लेता है। उनके अनुसार किसी भी मानवशास्त्री का काम साहित्यिक समालोचक की तरह होता है। समालोचक किसी कृति को पाठ (टेक्स्ट) की तरह देखता है और उसी प्रकार मानवशास्त्री भी समाज में प्रचलित विभिन्न सांस्कृतिक एवं धार्मिक व्यवहारों को पाठ की तरह देख कर उसकी व्याख्या करने का प्रयास करता है। गीट्र्ज़ ने द्वितीय विश्व–युद्ध में अमेरिकी नौसेना में काम किया और आगे चल कर हार्वर्ड विश्वविद्यालय से पीएचडी की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने अमेरिका केशिकागो यूनिवर्सिटी और प्रिंसटन के इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज़ में एंथ्रोपलाजी के प्रोफ़ेसर के तौर पर अध्यापन भी किया।

उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं, द इंटरप्रिटेशंस ऑफ कल्चर, एग्रीकल्चरल इनवोल्यूशन, पैडलर ऐंड प्रिंसेज सोशल डिवलपमेंट ऐंड इकॉनॉमिक चेंज इन टू इंडोनेशिएन टाउंस, एवेलबिल लाइट्स एंथ्रोपोलॅजिकल मानवशास्त्री होने के नाते अपने दायित्व के बारे में गीट्र्ज ने स्वयं लिखा है मैं कुछ ज्यादा करना चाहता हूँ। मैं साहित्यिक समालोचकों के कुछ तरीक़ों का इस्तेमाल करना चाहता हूँ। इतिहासकारों व दार्शनिकों के तरीक़ों का भी संस्कृति एवं धार्मिक विषयक सच्चाइयाँ जानने में प्रयोग करना चाहता हूँ। पर किसी भी समुदाय, जाति, क़बीले या प्रजाति के जो व्यापक ब्योरे एकत्र किये जाते हैं उनकी वस्तुनिष्ठता पर संदेह भी बना रहता है।

इसीलिए गीट्र्ज ने मानवशास्त्रीय अध्ययनों की गल्प से भी तुलना की है। यहाँ फ़िक्शन शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं किया गया है कि अध्ययन संबंधी सामग्री या निष्कर्ष पूर्णतया कल्पित हैं। बल्कि इस अर्थ में कि जो व्याख्याएँ की जाती हैं वे मूल निवासी के साथ सम्पर्क पर तो आधारित होती हैं लेकिन प्रायः दूसरे या तीसरे स्रोतों पर निर्भर रहती हैं। यानी वे हमेशा निश्चित सत्य का प्रतिपादित नहीं करती और उन पर संदेह तथा बहस की सम्भावना रहती है। गीट्र्ज के अनुसार मानवशास्त्र का विकास इसी रूप में हो सकता है कि पहले के विद्धानों ने जो सामग्री उपलब्ध करायी है, उसकी ज्यादा गहराई से जाँच–परख की जाए और पाठकों को संसार के यथार्थ को समझने में सहायक हो सके।

गीट्र्ज ने मानवशास्त्र का एक उद्देश्य यह भी बताया है कि वह सूक्ष्म विवरणों (थिन डिस्क्रिप्शन) के स्थान पर व्यापक व्याख्याओं (थिंक डिस्क्रिप्शन) से अधिक जुड़ा होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि वह किसी समुदाय की सांस्कृतिक गतिविधियाँ उसके गहन अर्थ को स्थापित करती है। उदाहरण के लिए सामाजिक जीवन में जोर से आँखें झपकाने और शरीर हिलाना दैहिक रूप से एक जैसी क्रियाएँ हैं। लेकिन आँख झपकाने से एक ख़ास तरह का सामाजिक सम्प्रेषण जुड़ा हुआ है। यह एक अर्थगर्भित प्रतीक है।

गीट्र्ज ने संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है, संस्कृति प्रतीकात्मक रूपों में प्राप्त विरासत में मिली धारणाओं की व्यवस्था है जिनके जरिये मनुष्य सम्प्रेषण करता है तथा जीवन के बारे में ज्ञान एवं दृष्टिकोण का विकास करता है। गीट्र्ज के ऊपर मैक्स वेबर के संस्कृति संबंधी चिंतन का भी काफ़ी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार गौट्र्ज ने संस्कृति को ऐसे प्रसंग की तरह परिभाषित किया जिसके माध्यम से सामाजिक घटनाएँ, गतिविधियों, व्यवहार, संस्थाएँ तथा प्रक्रियाएँ तार्किक रूप से व्याख्यायित हो सकती हैं।

10.2 क्लिफर्ड गीट्र्ज का धर्म सम्बन्धी विचार

क्लिफर्ड गीट्र्ज़ को उनके व्याख्यात्मक दृष्टिकोण (या जिसे कुछ लोग प्रतीकात्मक मानवविज्ञान कहते हैं) के लिए जाना जाता है जिसके अनुसार मानव विज्ञान का प्रमुख कार्य सांस्कृतिक प्रणालियों का अर्थ बनाना है। उन्होंने सामाजिक वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं (जैसे रिश्तेदारी, विचारधारा, आजीविका के तरीके, सामाजिक परिवर्तन, शक्ति का वितरण) को समझने के लिए इस दृष्टिकोण को लागू किया है लेकिन उन्हें धार्मिक प्रतीकों के अर्थ पर ध्यान केंद्रित करने और नृवंशविज्ञान को व्यापक बनाने के लिए जाना जाता है। जटिल समाजों में धर्म से संबंधित उनके सबसे महत्वपूर्ण प्रकाशनों में द रिलिजन ऑफ जावा (1960), इस्लाम ऑब्जर्वड (1968), द इंटरप्रिटेशन ऑफ कल्चर (1973) और लोकल नॉलेज (1983) शामिल हैं। धर्म पर उनके अक्सर पूछे जाने वाले निबंधों में से एक कल्चर सिस्टम के रूप में धर्म है, जो मूल रूप से 1966 में एंथ्रोपोलॉजिकल एप्रोचेस टू द स्टडी ऑफ रिलिजन नामक एक खंड में प्रकाशित हुआ था जिसे माइकल बैंटन ने संपादित किया था और बाद में उनके निबंध को शामिल किया गया था।

धर्म के अध्ययन में विचारों की सफलता के लिए, बात यह नहीं है कि हम अपने संस्थापकों के विचारों को छोड़ दें। गीट्र्ज़ का कहना है कि उनके

चार योगदानों ने वास्तव में हमें समृद्ध किया है। जिस प्रकार से पवित्र और अपवित्र के बीच दुर्खीम का अंतर व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने में मदत करता है उसी प्रकार से सामाजिक क्रिया को समझने की वेबर की विधि, व्यक्तिगत और सामूहिक अनुष्ठानों के बीच फ्रायड की समानता, और मलिनॉस्की की धर्म और सामान्य ज्ञान के बीच अंतर हमें धर्म के समकालीन विचारों में व्यापक रप से सहायता मिलती है।

इस मोड़ पर गीट्र्ज ने अपने निबंध रिलिजन एज ए कल्चर सिस्टम की शुरुआत इस अवलोकन के साथ की कि धर्म का मानवशास्त्रीय अध्ययन वास्तव में सामान्य ठहराव की स्थिति में है। इसे समझाने के लिए, वह प्रथम विश्व युद्ध से पहले और बाद में किए गए धर्म पर मानवशास्त्रीय कार्यों और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद किए गए कार्यों के बीच अंतर करता है। वह पाता है कि पूर्व ने महत्वपूर्ण उन्नति की, लेकिन बाद वाले बाँझ थे। मानव विज्ञान के संस्थापकों के विचारों के दोहराव और उन विचारों का समर्थन करने या विवादित कुछ अनुभवजन्य संवर्धनों को छोड़कर, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद किए गए कार्य में कोई बड़ी सैद्धांतिक प्रगति नहीं हुई है। दूसरे, इस काम ने हमेशा समाजशास्त्र, नृविज्ञान और मनोविज्ञान के विद्वानों के लेखन को देखा है, विशेष रूप से दुर्खीम, मैक्स वेबर, सिगमंड फ्रायड और ब्रॉनिस्लाव मालिनोव्स्की के कार्यों को। उनमें से किसी ने भी दर्शन, इतिहास, कानून, साहित्य, या तथाकथित कठिन विज्ञान जैसे अन्य विषयों के लेखन पर विचार नहीं किया है। वास्तव में, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान दोनों के संस्थापकों ने विचारों और प्रेरणा के लिए इन विषयों को बारीकी से पढ़ा था।

गीट्र्ज़ ने धार्मिक विश्लेषण के सांस्कृतिक आयाम को विकसित करने के लिए जो रास्ता चुना है। वह सोचता है कि संस्कृति की अवधारणा को अनेक अर्थ दिए जाने के कारण बहुत नुकसान हुआ है। यानी वह सब कुछ जो मनुष्य ने बनाया है और जो सांस्कृतिक विचार है इसकी विश्लेषणात्मक शक्ति कमजोर हो जाती है। इस प्रकार, संस्कृति की एक ऐसी परिभाषा पर पहुंचने की तत्काल आवश्यकता है जो स्पष्ट हो और जिसमें कई संदर्भ न हों। थिंक डिस्क्रिप्शन टूवड्र्स एन इंटरप्रिटिव थ्योरी ऑफ कल्चर शीर्षक वाले अपने निबंध में गीट्र्ज़ ने संस्कृति के एक ऐसे दृष्टिकोण का समर्थन किया जिसके लिए वे वेबर के ऋणी हैं। वेबर के लिए मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अपने कार्यों को अर्थ देता है। मनुष्य ने अपने चारों ओर महत्व के जाले बुन लिए हैं, जिसमें वह फंस गया है, जो उसे अर्थ प्रदान करते हैं।

गीट्ज़ के लिए संस्कृति इन 'महत्व के जाले' को संदर्भित करती है। संस्कृति की अक्सर उद्धृत की जाने वाली परिभाषा जो उन्होंने प्रस्तुत की है वह इस प्रकार है– संस्कृति प्रतीकों में सन्निहित अर्थों के एक ऐतिहासिक रूप से प्रसारित पैटर्न को दर्शाता है प्रतीकात्मक रूपों में व्यक्त विरासत में मिली धारणाओं की एक प्रणाली जिसके माध्यम से मनुष्य जीवन के बारे में और दृष्टिकोण के बारे में अपने ज्ञान को संप्रेषित स्थायी और विकसित करते हैं। मानवविज्ञानी के रूप में हमारा काम विभिन्न समाजों में लोगों के कार्यों के अर्थ की खोज करना है। गीट्ज़ कहते हैं हमारा दृष्टिकोण कानूनों की खोज करना नहीं है जैसा कि प्रायोगिक वैज्ञानिक करते हैं, बल्कि मानव क्रियाओं की व्याख्या करना, उनके अर्थ को समझना है।

10.3 धर्म की परिभाषा

क्लिफर्ड गीट्ज़ दुर्खीम के पवित्र विचार से शुरू होता है, जो धर्म को परिभाषित करता है और इसे अन्य संस्थानों से अलग करता है जो अपवित्रता से निपटते हैं। पवित्र के विचार को प्रतीकों (भौतिक और अभौतिक) के माध्यम से दर्शाया गया है। धार्मिक प्रतीक ''लोगों के लोकाचार को संश्लेषित करने'' और उनके विश्व दृष्टिकोण के लिए कार्य करते हैं।

दूसरे शब्दों में, पवित्र प्रतीक लोगों के विचार, स्वर और उनके जीवन के सिद्धांत, उनकी नैतिक और सौंदर्य शैली, जिस तरह से वे अपने चारों ओर ब्रह्मांड का निर्माण और व्यवस्था करते हैं, और अर्थ जो वे अपने अस्तित्व को देते हैं, को निर्धारित करते हैं। धार्मिक प्रतीकों में कुछ विशिष्ट तत्वमीमांसा या दर्शन से प्राप्त शक्ति होती है जो लोगों को एक विशिष्ट लौकिक (या 'अलौकिक') व्याख्या भी प्रस्तुत करती है। धर्म मानवीय क्रियाओं को लौकिक व्यवस्था में समायोजित करने का प्रयास करता है और बाद की छवियों को 'मानव अनुभव के धरातल पर प्रक्षेपित' किया जाता है।

गीट्ज़ का मानना है कि सामूहिक कल्पना से मनुष्यों ने एक लौकिक व्यवस्था बनाई है जो पवित्र और पारलौकिक जिससे उन्हें लगता है कि लगातार वह उन्हें प्रभावित करती है यह कोई नया विचार नहीं है। पहले के सिद्धांतों ने लौकिक व्यवस्था और मानवीय क्रियाओं के बीच संबंध स्थापित किया है। लेकिन गीट्ज़ कहते हैं, यह वास्तव में कैसे पूरा किया जाता है इस दृष्टिकोण से इसकी शायद ही जांच की गई है। हम जानते हैं कि यह समुदायों में सालाना, साप्ताहिक, या दैनिक रूप से पूरा किया जाता है। ब्रह्मांडीय

व्यवस्था को मानव पर लाया जाता है और मानव आदेश को पार किया जाता है, लोगों को पवित्र लौकिक व्यवस्था की शक्ति का एहसास होता है और नई ऊर्जा और बल के साथ कायाकल्प महसूस होता है। जीवन की परिकल्पित अर्थहीनता, जो अन्यथा लोगों को परेशान कर सकती है और उन्हें चिंतित कर सकती है, दूर हो जाती है – पवित्र प्रतीकों के साथ बनाई गई लौकिक व्यवस्था जीवन को गहन रूप से सार्थक, आनंददायक और जीने लायक बनाती है। गीट्ज़ ने रेखांकित किया कि सैद्धांतिक ढांचा जो लौकिक व्यवस्था और मानव अनुभवों के बीच संबंध का एक विश्लेषणात्मक अनुभव प्रदान करता है धर्म के समाजशास्त्रीय अध्ययनों में अभी तक मौजूद नहीं है जैसा कि वे अन्य अध्ययनों में करते हैं। उदाहरण के लिए वंश विभाजन, समाजीकरण, राजनीतिक उत्तराधिकार आदि ।

इस तरह के ढाँचे तक पहुँचने के लिए, गीट्ज़ धर्म की परिभाषा का प्रयास करता है। इस विचार के बावजूद कि परिभाषाएँ कुछ भी स्थापित नहीं करतीं, गीट्ज़ का मानना है कि यदि वे सावधानी से बनाए गए हैं, तो वे 'विचारों का एक उपयोगी अभिविन्यास, या पुनर्विन्यास' हो सकते हैं। वे एक विश्लेषणात्मक जाँच को उस स्पष्टता के साथ निर्देशित कर सकते हैं जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती है। इन परिचयात्मक टिप्पणियों के साथ, गीट्ज़ धर्म को इस प्रकार प्रस्तुत करता है।

(1) धर्म प्रतीकों की एक प्रणाली के रूप में कार्य करता है।

(2) धर्म पुरुषों में शक्तिशाली व्यापक और लंबे समय तक चलने वाले मनोदशाओं और प्रेरणाओं को स्थापित करता है।

(3) धर्म अस्तित्व के एक सामान्य क्रम की अवधारणा तैयार करता है।

(4) और इन धारणाओं को वास्तविकता की ऐसी आभा से सुसज्जित करता है।

(5) जिससे मनोदशाए और प्रेरणाएँ विशिष्ट रूप से यथार्थवादी लगाने लगती हैं।

10.4 प्रतीक का अर्थ

जैसा कि हम देखते हैं, व्याख्या की जाने वाली पहली अवधारणा प्रतीक की है। धर्म प्रतीकों की एक प्रणाली है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि

यह केवल एक चीज है जो प्रतीकों से संबंधित है। गीट्ज़ के लिए, यह वास्तव में संस्कृति है जो प्रतीकों की एक प्रणाली है, और संस्कृति का एक हिस्सा होने के नाते धर्म प्रतीकात्मक है। लेकिन धार्मिक प्रतीकों (जो पवित्र हैं) और उन प्रतीकों के बीच अंतर है जो समाज के अन्य क्षेत्रों को शामिल करते हैं। संस्कृति की अवधारणा की तरह, प्रतीक 'विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को संदर्भित करने के लिए उपयोग किया गया है। यह एक बहु–अर्थ अवधारणा है। विभिन्न अर्थों में जो शब्द प्रतीक दिया गया है, गीट्ज़ उस अर्थ की पहचान करता है जिसे वह अपने अध्ययन के लिए अपनाना चाहता है।

गीट्ज़ कहते है प्रतीक का प्रयोग किसी भी वस्तु, कार्य, घटना, गुण या संबंध के लिए किया जाता है जो एक विचार का प्रतिनिधित्व करता है। यह 'गर्भाधान के वाहन' के रूप में कार्य करता है, जो एक प्रतीक का अर्थ है। प्रतीक 'धारणाओं के मूर्त सूत्रीकरण' हैं। वे 'मूर्त रूपों में तय किए गए अनुभवों से सार हैं।' केनेथ बर्क के 'एक घर बनाने' और 'एक घर बनाने के लिए एक योजना तैयार करने' के बीच के अंतर के उदाहरण के बाद, गीट्ज़ अनुभवजन्य समग्रता से सामाजिक घटनाओं के प्रतीकात्मक आयाम को अलग करता है।

10.5 प्रतीकों की एक प्रणाली के रूप में धर्म

अपने दूसरे निबंध एथोस वर्ल्ड व्यू एंड द एनालिसिस ऑफ सेक्रेड सिंबल्स में गीट्ज़ लिखते हैं यह पवित्र प्रतीकों का एक समूह है; किसी तरह के आदेशित पूरे में बुना हुआ, जो एक धार्मिक व्यवस्था बनाता है। जो लोग इसके लिए प्रतिबद्ध हैं, उनके लिए ऐसी धार्मिक व्यवस्था वास्तविक ज्ञान उन आवश्यक स्थितियों के ज्ञान की मध्यस्थता करती प्रतीत होती है जिनके संदर्भ में जीवन को अनिवार्य रूप से जीना चाहिए।

धर्म सामाजिक अस्तित्व का एक खाका प्रदान करता है। कई समाजों में धार्मिक प्रतीकों को आलोचनात्मक रूप से धारण किया जाता है; वे किसी भी संशयपूर्ण जाँच के परे हैं। यहाँ गीट्ज़ का कहना है कि वे व्यक्ति जो उन मानदंडों का समर्थन नहीं करते हैं जो प्रतीक तैयार करते हैं, उन्हें 'मूर्ख, असंवेदनशील और अनपढ़' माना जाता है। जावा से एक उदाहरण देते हुए, जहाँ उन्होंने अपना फील्डवर्क किया था, वे कहते हैं कि छोटे बच्चे, सरल और अनैतिक लोगों को 'अभी तक जावानीस नहीं माना जाता है, जिसका वास्तव में अर्थ है अभी तक मानव नहीं'। उनमें से, विज्ञान और धर्म के लिए एक ही शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो उन्हें मानदंडों और मूल्यों के अनुसार अपने

सामाजिक जीवन को ठीक से संचालित करने की सलाह देता है।

धार्मिक प्रतीक अत्यंत शक्तिशाली होते हैं। वे मनुष्यों में प्रेरणा देते हैं जो उन्हें समझते हैं। गीट्ज़ एक जावानीस फकीर का उदाहरण देते हुये कहते हैं, जो एक दीपक की लौ में स्थिर रूप से घूरता है, क्योंकि इस तरह का अभ्यास उसे आत्म–अनुशासन और भावनात्मक अभिव्यक्ति का नियंत्रण देता है, जो एक रहस्यवादी से अपेक्षित जीवन शैली का नेतृत्व करने के लिए आवश्यक है। एक अन्य उदाहरण संकट में एक व्यक्ति, एक व्यक्तिगत संरक्षक भावना की मूर्ति के सामने असंगत रूप से रोता है, उसका पक्ष लेने के लिए यह सोचकर कि किसी की मानसिक स्थिति का सच्चा और स्पष्ट प्रदर्शन दैवीय हस्तक्षेप के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की स्थितियाँ आस्तिक या उपासक में स्वभाव के एक निश्चित समूह को प्रेरित करती हैं जो उसके अनुभव की गुणवत्ता को आकार देती हैं। गीट्ज़ का मानना है कि धर्म लोगों में दो तरह के स्वभाव को प्रेरित करता है, जिन्हें क्रमशः मनोदशा और प्रेरणा कहा जाता है।

प्रेरणाओं को मनोदशाओं से अलग किया जा सकता है। गीट्ज़ कहते है कि प्रेरणाओं में 'सदिश गुण' होते हैं, जबकि मनोदशाओं में 'स्केलर' होते हैं। दोनों के उद्देश्य एक विशेष दिशा में चलते हैं, लेकिन मनोदशा 'कहीं नहीं जाता', वे केवल तीव्रता में भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, अलग–अलग स्थितियों में पवित्र प्रतीकों से उत्पन्न होने वाली मनोदशाएं, उत्साह से लेकर उदासी तक, आनंद के उद्दाम प्रदर्शन से लेकर उदासीनता तक, आत्मविश्वास से लेकर आत्म–दया तक होती हैं। कुछ मनोदशा निश्चित परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं लेकिन वे किसी भी अंत का जवाब नहीं देते हैं। गीट्ज़ लिखते हैं–'कोहरे की तरह, वे बस बैठते हैं और उठते हैं; सुगंध की तरह, घिसना और वाष्पित होना।' इस प्रकार, प्रेरणाएँ उन लक्ष्यों के संबंध में सार्थक हैं जिन्हें वे प्राप्त करने वाले हैं, जबकि मनोदशाओं उन स्थितियों के संदर्भ में सार्थक हैं जिनसे वे उत्पन्न होते हैं।

10.6 विश्व दृश्य

हम कैसे जानते हैं कि प्रतीकों का एक विशेष आधार प्रकृति में धार्मिक होता है जबकि धर्मनिरपेक्ष नहीं? इसे इसके कथित लक्ष्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। गीट्ज़ कुछ उदाहरणों की सहायता से इसे समझने में हमारी मदद करता है। बहुत से धर्मो में उपवास को एक धार्मिक प्रक्रिया माना जाता बहुत से लोग उपवास को वजन कम करने के लिए प्रयोग करते है। धर्म तब

अस्तित्व में आता है जब उसके प्रतीक उसे आदेश के विचारों को बनाते हैं जो वास्तव में एक पारलौकिक आदेश है।

पारलौकिक सत्य का विचार नैतिक रूप से उच्चतर, सर्वोच्च और श्रेष्ठ अस्तित्व में क्यों आता है? मनुष्य को हर समय और हर जगह धार्मिक प्रतीकों की आवश्यकता क्यों है? वह धर्म एक सांस्कृतिक सार्वभौमिक निर्विवाद है। इस प्रश्न के उत्तर में गीट्ज़ एस. लैंगर की पुस्तक फिलॉसफी इन ए न्यू की में टिप्पणियों में देखते है। जिसमे लैंगर लिखते हैं–'मनुष्य खुद को किसी भी तरह से अनुकूलित कर सकता है जिसकी कल्पना उसकी कल्पना कर सकती है; लेकिन वह कैओस (अव्यवस्था) से नहीं निपट सकता। धीरज, विश्लेषणात्मक क्षमता और शक्तियों की सीमा ये तीन बिंदु भ्रम, पीड़ा और कठिन नैतिक विरोधाभास की भावना के हैं, और यदि उन्हें प्रबंधित नहीं किया जाता है तो वे एक अराजकता की ओर ले जा सकते हैं जो मनुष्य पर टूट पड़ता है।

पीड़ा की समस्या की चर्चा गीट्ज़ को नैतिक विरोधाभास के मुद्दे की ओर ले जाती है। यदि कोई मनुष्य ईश्वरीय आज्ञाओं के प्रति निःसंकोच समर्पित है और ईमानदारी से जीवन के धर्मी मार्ग का अनुसरण करता है तो उसे कष्ट नहीं उठाना चाहिए। अगर वह ईश्वरीय निर्देशों से विचलित नहीं होता है तो भगवान को नरक के अधीन क्यों करना चाहिए? लेकिन सच तो यह है कि दुख सभी को आते हैं, भले ही वे सही रास्ते पर चल रहे हों या नहीं। और तार्किक रूप से आगे बढ़ते हुए कोई कहेगा कि यह लोगों के ईश्वरत्व में विश्वास को हिला देना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता है। धर्म समाज में बुराई की उपस्थिति का संतोषजनक उत्तर देता है। यह नैतिक विरोधाभासों को सार्थक बनाता है क्यों धर्मी पीड़ित होते हैं, क्यों सरल लोगों को धोखा दिया जाता है, क्यों नैतिक रूप से ईमानदार लोगों को बदनाम किया जाता है, ईमानदार लोग गरीबी में क्यों मरते हैं।

यह समस्याएं अलग–अलग होते हुए भी बुनियादी समानता रखती हैं। वे यह दिखाते हुए दुनिया की तथाकथित अर्थपूर्णता को नष्ट करने का इरादा 'कोई अनुभवजन्य नियमितता नहीं है''कोई भावनात्मक रूप नहीं है' और 'कोई नैतिक सामंजस्य नहीं' (दुश्मनी और विरोधाभासों के साथ जो बुराई का कारण बनता है)। लेकिन इन समस्याओं के सामने धर्म क्या करता है, प्रतीकों के माध्यम से, 'दुनिया के वास्तविक क्रम की छवियों को तैयार करता है, जो मानव अनुभव में कथित अस्पष्टताओं, पहेलियों और विरोधाभासों को सुलझाता है। धर्म मानव जीवन में समानता की उपस्थिति से इंकार नहीं करता है लेकिन यह

इनकार करता है कि मानव घटनाएं अस्पष्ट हैं जीवन असहनीय है, और न्याय अस्तित्वहीन है। धार्मिक प्रतीक के बिना किसी संदेह को बार–बार यह दावा किया जाता हैं कि सभी घटनाएँ, असाधारण रूप से, खोजी जा सकती हैं; कष्टों के बावजूद जीवन को शांतिपूर्वक व्यतीत किया जा सकता है; और न्याय धर्मी से कभी दूर नहीं होता।

10.7 धार्मिक प्रतीकों में विश्वास

यह हमें एक गहन प्रश्न की ओर ले जाता है कि लोग धर्म में विश्वास क्यों करते हैं? गीट्ज़ कहते है कि इस प्रश्न को अक्सर नृविज्ञान में टाला जाता है, और अक्सर इसे मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए हटा दिया जाता है। लोग अपने समाजीकरण के कारण धर्म में विश्वास करने लगते हैं। शुरू से ही उन्हें नैतिक योग्यता और कुछ विश्वासों की सर्वोच्चता के बारे में बताया जाता है जो उनकी समस्याओं को हल करते हैं और उनकी शंकाओं को शांत करते हैं, और समय के साथ–साथ वे आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित हो जाते हैं। इस सब के पीछे किसी सत्ता का अस्तित्व है जो परिभाषित करता है कि क्या 'पूज्य' (आस्था और पूजा के योग्य) है, और इसकी पूजा क्यों की जानी चाहिए। धार्मिक प्रतीकों की प्रत्येक प्रणाली के नीचे सत्ता की एक प्रणाली होती है जो इसे वैध बनाती है और इसकी रक्षा करती है। उदाहरण के लिए, आदिवासी धर्मों में, सत्ता पारंपरिक कल्पना में निहित है; रहस्यमय लोगों में अलौकिक अनुभव के बल में, एकता का अनुभव; और करिश्माई लोगों में एक असाधारण व्यक्ति की आकर्षक पकड़ में यहां तक कि रहस्योद्घाटन के पास उस व्यक्ति का तत्काल अधिकार होता है जिसके माध्यम से उन्हें सूचित किया जाता है, इसके अलावा निश्चित रूप से दिव्यता का अंतिम अधिकार जो उस व्यक्ति का चयन करता है जिसके माध्यम से 'सत्य' प्रकट होता है। अपनी प्रकृति के बावजूद, प्राधिकरण अपने लोगों को वह देता है जिसे 'धार्मिक परिप्रेक्ष्य' कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जिसे 'जानना' आता है, उसे पहले उस पर विश्वास करना चाहिए जो उसने जाना है। धर्म 'विश्वासियों के लिए वास्तविक' है; गैर–विश्वासियों (और अविश्वासियों) के लिए, यह तर्कहीनताओं की एक मण्डली से ज्यादा कुछ नहीं हो सकता है।

गीट्ज़ 'परिप्रेक्ष्य' शब्द को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'धार्मिक परिप्रेक्ष्य' उन कई दृष्टिकोणों में से एक है, जिन्हें मनुष्य को अपने अंदर और आसपास की दुनिया को देखना और विश्लेषण करना है। गीट्ज़ 'धार्मिक परिप्रेक्ष्य' को सामान्य–संवेदी, सौंदर्यवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अलग

करते है। धार्मिक परिप्रेक्ष्य सामान्य ज्ञान से भिन्न है क्योंकि यह 'रोजमर्रा के जीवन की वास्तविकताओं से परे व्यापक लोगों की ओर बढ़ता है जो उन्हें सही और पूर्ण करते हैं'। धर्म 'व्यापक वास्तविकताओं' पर कार्य नहीं करता है, बल्कि उन्हें स्वीकार करता है और उनमें विश्वास विकसित करता है। वैज्ञानिक के संबंध में, धार्मिक परिप्रेक्ष्य उन्हें निष्पक्ष विश्लेषण के अधीन करने के बजाय व्यापक वास्तविकताओं के प्रति प्रतिबद्धता पर निर्भर करता है। और यह कला से भिन्न है क्योंकि यह स्वयं को तथ्यों के प्रश्न से अलग नहीं करती है जैसा कि कला करती है, बल्कि उन चीजों पर विचार करती है अर्थात् इसका संबंध वास्तविक एवं तथ्यात्मक से है।

धर्म का एक महत्वपूर्ण घटक है जिसके माध्यम से यह व्यापक वास्तविकताओं के साथ संबंध स्थापित करता है, यह वह अनुष्ठान है, जिसे गीट्ज़ ने 'प्रतिष्ठित व्यवहार' के रूप में परिभाषित किया है। अनुष्ठान प्रदर्शन के माध्यम से, धार्मिक अवधारणाओं की सत्यता, सच्चाई को मजबूत किया जाता है। यह विचार कि धार्मिक दिशाएँ ध्वनि हैं, जो कर्मकांडों के माध्यम से भी उत्पन्न होती हैं। वे धर्म को अक्षुण्ण रखने के लिए मनोदशा और प्रेरणा भी उत्पन्न करते हैं। गीट्ज़ कहते है कि धार्मिक प्रतीकों में विश्वासों और अनुष्ठानों दोनों पहलू शामिल हैं।

व्यक्ति अपने से परे शक्तियों के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। इन शक्तियों की उत्पत्ति के बारे में उनके पास मिथक, विश्वास, कहानियाँ, कल्पनाएँ हैं। वे यह भी जानते हैं कि शक्तियाँ उनके जीवन को तब प्रभावित करेंगी जब उनके साथ किसी प्रकार का संचार (अनुष्ठानों के माध्यम से) स्थापित हो जाएगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि लोग धार्मिक प्रतीकों की दुनिया में रहते हैं जो उन्होंने हमेशा के लिए बनाए हैं। वास्तव में, अधिकांश पुरुष क्षण भर में ही इसमें रहते हैं। सामान्य ज्ञान की वस्तुओं और व्यावहारिक कृत्यों की रोजमर्रा की दुनिया मनुष्य के लिए सर्वोपरि महत्व की वास्तविकता है। दूसरे शब्दों में धर्म संसार का वर्णन नहीं करता है और यदि करता भी है तो तिरछे और अपूर्ण रूप से करता है। यह वास्तव में क्या करता है यह मनुष्यों की दुनिया को आकार देता है और इसे एक नया अर्थ देता है।

पुरुषों द्वारा सामना की जाने वाली सबसे आम घटनाओं में से एक है उनका अपने दैनिक जीवन से अनुष्ठान प्रदर्शन की दुनिया में निरंतर बदलाव। जब पुरुष अनुष्ठान करते हैं तो उन्हें एक ऐसी दुनिया में ले जाया जाता है जो उन्हें लगभग पूरी तरह से घेर लेती है। इसमें उनकी मान्यताएं उस अनुभव का

स्मरणीय प्रतिबिंब करती हुई दिखाई देती हैं। इसलिए विश्वासों और रीति–रिवाजों की बात करते समय हमें उनके बीच अंतर रखना चाहिए क्योंकि लोगों पर उनके अलग–अलग प्रभाव बहुत भिन्न होते हैं। इस भेद को बनाए रखने में विफलता ने भ्रम पैदा किया है कुछ लोगों ने आदिम मानसिकता की उपस्थिति के बारे में तर्क दिया है और कुछ का कहना है कि कुछ समाजों में विज्ञान जो करता है वही कुछ अन्य समाजों में धर्म करता है। दरअसल वे धर्म के विभिन्न क्षेत्रों के बारे में बात कर रहे हैं जो लोगों के अनुभवों के लिए अलग–अलग निहितार्थ हैं।

नृविज्ञान और समाजशास्त्र के विषयों के लिए धर्म को विचारों और प्रथाओं की एक प्रणाली के रूप में देखा जाता है जो दुनिया की एक विशेष अवधारणा प्रदान करता है जिसमें लोग निवास करते हैं। गीट्ज़ लिखते हैं धार्मिक अवधारणाएँ अपने विशेष रूप से आध्यात्मिक संदर्भों से परे प्रसारित होती हैं ताकि सामान्य विचारों का एक ढांचा प्रदान किया जा सके जिसके संदर्भ में अनुभव की एक विस्तृत श्रृंखला बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिकता को सार्थक रूप दिया जा सके। इस अवधारणा से दुनिया सांस्कृतिक रूप से उभरती है धर्म के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं का पालन करती है।

10.8 सारांश

गीट्ज़ की विभिन्न अवधारणाओं में केंद्रीय बिंदुओं में से एक है धार्मिक मान्यताएँ यह न केवल सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की लौकिक दृ ष्टि से व्याख्या करती हैं, बल्कि उन्हें आकार भी देती हैं। जिस जटिलता के साथ वे इसे साझा करते हैं। धर्म की जटिलता समाज के विकास के पैमाने पर निर्भर नहीं है। यह मानना गलत है कि सामाजिक रूप से विभेदित और जटिल समाजों में जटिल धार्मिक व्यवस्था होती है इसके विपरीत काफी हद तक यह सही हो सकता है। गीट्ज़ का कहना है कि धर्म का नृविज्ञान अपने अध्ययन में दो क्रियाओं को शामिल करता हैरू पहला, प्रतीकों में सन्निहित अर्थों का विश्लेषण जो धार्मिक व्यवस्था का गठन करते हैं; और दूसरा, सामाजिक संरचना और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अन्य पहलुओं के साथ अर्थ की प्रणाली को जोड़ना। धर्म के समकालीन नृविज्ञान पर गीट्ज़ की आपत्ति यह नहीं है कि यह केवल दूसरे पहलू से संबंधित है अर्थात धर्म को समाज के अन्य भागों से संबंधित करना और एक भाग द्वारा दूसरे भाग में किए जाने वाले योगदान की जांच करना है। यानी धर्म के सांकेतिक आयाम को समझने की कोशिश करना है। उनका निवेदन यह नहीं है कि धर्म के समकालीन मानवविज्ञानी जो कर रहे

हैं वह गलत है बल्कि वे केवल घटना की आंशिक समझ प्रदान कर रहे हैं। इसके अलावा उनकी समझ दुहरावपूर्ण हो जाती है क्योंकि जिन श्रेणियों में उन्हें समझाया गया है वे लगभग स्वीकृत हैं। उदाहरण के लिए सामाजिक एकीकरण का विचार । इसके प्रसारित होने से समाज में संस्कार में उसी तरह एकजुटता पैदा करते हैं जैसे टोटेमिक पूजा। इसीलिए, गीट्र्ज़ ने धर्म के अपने अध्ययन की शुरुआत में रेखांकित किया कि धार्मिक घटनाओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन में ठहराव है। प्रतीकात्मक विश्लेषण के साथ धार्मिक अध्ययन को प्रभावित करके इस ठहराव को दूर किया जा सकता है। गीट्र्ज़ के दृष्टिकोण की आलोचनाओं के बावजूद उनके विचार कि धर्म प्रतीकों की एक प्रणाली है और मानवविज्ञानी और समाजशास्त्रियों का काम इन प्रतीकों के प्रासंगिक अर्थ को समझना है।

10.9 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 क्लिफ़र्ड गीट्र्ज का धर्म का समाजशास्त्र की व्यख्या कीजिए?

प्र. 2 क्लिफ़र्ड गीट्र्ज ने धर्म को किस तरह एक प्रतीक के रूप में माना है और विश्व दृष्टि में उसकी क्या विशेषता रही है मूल्यांकन कीजिए?

प्र. 3 क्लिफ़र्ड गीट्र्ज के धर्म सम्बन्धी एवं सांस्कृतिक सम्बन्धी विचार की व्याख्या कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 किसने धर्म को एक सांस्कृतिक प्रतीक माना है?

(अ) इमाईल दुर्खीम (ब) क्लिफ़र्ड गीट्र्ज

(स) मैकाइवर (द) मैनहीम

प्र. 2 किसने धर्म को प्रतीकों की एक प्रणाली के रूप में माना है?

(अ) क्लिफ़र्ड गीट्र्ज (ब) थामस कुहन

(स) फ्रायड (द) गिडेंस

प्र. 3 द इंटरप्रिटेशंस ऑफ कल्चर पुस्तक किसकी है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर

(स) क्लिफ़र्ड गीट्र्ज (द) पार्सन्स

प्र. 4 इनमे से कौन मानवशास्त्री सांस्कृतिक अध्ययन के लिए जाने जाते है?

(अ) बर्जर (ब) मैक्स वेबर

(स) क्लिफ़र्ड गीट्र्ज (द) कोई नही

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Folld, Gavin, 1996. An Introduction to Hinduism, Cambridge : Cambridge University Press.
2. Fuller, C. J. 1992. The Camphor Flame : Popular Hinduism and Society in India, Princeton, N. J. : Princeton University Press.
3. Gerth, H.H. and C.W. mills (eds.). 1948. From Max Weber : Essays in Sociology, London : Routeledge and Kegan Paul.
4. Ghurye, G.S. 1964 (2nd edn.). Indian Sadhus, Bombay : Popular Prakashan.
5. Gold, Daniel, 1987. The Lord as Guru : Hidni Sants and North Indian Tradition, Oxford : Oxford University Press.
6. Gore, M.S. 1991. Secularism in India, Allahabad Indian Academy of Social Science.
7. Grewal, J.S. 1990. The sikhs of the Punja, Cambridge University Press.
8. Gross, Robert 1992. The Sadhus of India : A study of Hindu Ascetism, Jaipur and New Delhi : Rawat Publications.
9. Haralombhus, M. 1980. Sociology - Themes and Perspectives, New Delhi : Oxford University Press.

10. Hardiman, David. 1987. The Coming of the Devi : Adivasi Assertion in Western India, Delhi : Oxford University Press.

इकाई 11 :एम.एन. श्रीनिवास का कुर्ग का अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 सैद्धान्तिक तथा पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

11.3 धर्म और समाज

11.4 जाति दृष्टिकोण

11.5 संस्कृतीकरण

11.6 प्रभु जाति पर विचार

11.7 आलोचनात्मक मूल्यांकन

11.8 सारांश

11.9 बोध प्रश्न

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप एम.एन. श्रीनिवास द्वारा गाँव के अध्ययन के आधार पर सैद्धान्तिक तथा पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की व्यख्या कर सकेंगे।
- एम.एन. श्रीनिवास के धर्म और समाज एवं जाति दृष्टिकोण की व्यख्या कर सकेंगे।
- एम.एन. श्रीनिवास के संस्कृतीकरण तथा प्रभु जाति पर विचार की व्यख्या

कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

मैसूर नरसिम्हाचार्य श्रीनिवास (1916–1999) का जन्म 16 नवम्बर 1916 को मैसूर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। 30 नवंबर 1999 को बंगलौर में उनका देहावसान हुआ था। वे स्वयं एक ब्राह्मण थे। उनकी दीक्षा ब्राह्मण परंपराओं और ब्राह्मणत्व के प्रशिक्षण में हुई थी। श्रीनिवास ने वृहद स्तर के समाजशास्त्रीय सामान्यीकरणों को मानवशास्त्रीय लघु सूक्ष्मदर्शिता पर प्रयोग कर देखा था। उन्होंने एम. ए. एल. एल. बी. और पीएच.डी. बंबई विश्वविद्यालय से तथा डी.फिल. ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से किया था। वे महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय बड़ौदा में समाजशास्त्र के प्रोफेसर बने दिल्ली विश्वविद्यालय में भी वे प्रोफेसर रहे। इन्स्ट्रीयूट ऑफ सोशल एंड इकॉनामिक चेंज की समाजशास्त्र इकाई के ये सीनियर फैलो थे। नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज बंगलौर में वे विजिटिंग प्रोफेसर रहे। अंतरराष्ट्रीय स्तर के ख्याति प्राप्त प्रोफेसर श्रीनिवास बम्बई विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी.एस. घुर्ये के विद्यार्थी थे। वे श्रेष्ठता के आधार पर संस्था निर्माता, रचनात्मक शोधकर्ता और गंभीर शिक्षक थे। एम.एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा में समाजशास्त्र विभाग को विकसित करने में उनका योगदान था। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में काम करने में स्थान पर उन्होंने बड़ौदा में काम करना उचित समझा। बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय में भी उन्होंने समाजशास्त्र विभाग की स्थापना का प्रयास किया।

11.2 सैद्धान्तिक तथा पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

एम.एन. श्रीनिवास ने वृहद समाजशास्त्रीय स्पष्टीकरणों, सूक्ष्म मानवशास्त्रीय अंतर्दृष्टियों समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य तथा मानवशास्त्रीय अंतर्दृष्टि का लघु स्तर के समुदायों को समझने के लिये उपयोग किया था। श्रीनिवास इस देश के लोगों को पाश्चात्य पुस्तकों या पवित्र संस्कृत ग्रंथों से नहीं अपितु प्रत्यक्ष अवलोकन, विस्तृत क्षेत्रीय अध्ययन तथा क्षेत्र अनुभवों से समझाना चाहते थे। 1940–42 में उन्होंने कुर्ग का एक बड़ा विस्तृत क्षेत्र कार्य किया था। अपने अध्ययन में उन्होंने प्रकार्यात्मक एकता की अवधारणा को स्पष्ट किया था। सांस्कारिक कार्यक्रमों में विभिन्न जातियों की पारस्परिक निर्भरता और कार्यों की चर्चा भी उन्होंने की थी। विशेष रूप से ब्राह्मणों की अंतःक्रियाओं का उन्होंने उल्लेख किया था। रामपुरा के संदर्भ में उन्होंने कामिया (ज्योतिष तथा जादूगर) बनिया और पनिकाओं (निम्न जातियों) का भी अध्ययन किया था। उन्होंने कहा

कि गाँवों में जातियाँ स्वतंत्र हैं।

श्रीनिवास के जाति और धर्म अध्ययन (1952, 1959, 1962 और 1966) ने केवल संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम को उभारा साथ ही ग्रामीण परिवेश में जाति गतिशीलता का वर्णन किया। ग्राम स्तर पर शक्ति संबंधों के अध्ययन से ही प्रभु जाति की अवधारणा विकसित हुई थी। ग्राम संरचना और परिवर्तन के संबंध में उन्होंने कई अध्ययन किये थे। 1990 में उन्होंने तमिल और तेलुगू लोक गीतों के बारे में लेख लिखे। अपनी बातों को समझाने के लिये श्रीनिवास ने दो आधारों को स्वीकार किया पुस्तक और क्षेत्र दृष्टि ।

(1) **पुस्तक दृष्टि (पुस्तक परिप्रेक्ष्य) :** धर्म, वर्ण, जाति, परिवार, ग्राम भौगोलिक संरचना भारतीय समाज के मूल आधार है। इनके बारे में ज्ञान या तो पवित्र ग्रंथों या पुस्तकों से प्राप्त हो सकता है यह दृष्टि पुस्तक दृष्टि है भारतशास्त्र का आधार भी यही है।

(2) **क्षेत्र दृष्टि (क्षेत्रीय कार्य) :** श्रीनिवास की यह मान्यता थी कि भारत विभिन्न क्षेत्रों के बारे में ज्ञान क्षेत्रीय कार्य के द्वारा अधिक महत्वपूर्ण है। इसको वे क्षेत्र दृष्टि कहते हैं। समाज को समझने के लिये वे आनुभविक पद्धति का उपयोग उचित समझते थे।

11.3 धर्म और समाज

'रिलीजन एंड सोसायटी अमांग कुर्ग ऑफ साउथ इंडिया' के अध्ययन में श्रीनिवास ने ब्राह्मणीकरण की अवधारणा को विकसित किया। इसका संबंध ब्राह्मणों की जीवन शैली और उसे छोटी जातियों द्वारा अपने जीवन में स्वीकार करने के साथ था। सावधानीपूर्वक किये गये इस क्षेत्रीय कार्य का आधार नीची जातियों में सांस्कारिक प्रचलनों और जीवनशैली को अपने जीवन में स्वीकारने के संबंध में था। ब्राह्मणीकरण की यह अवधारणा आगे के संदर्भों में भी देखी जा सकती है। इसीलिये यह बाद में विस्तारित होकर संस्कृतीकरण की अवधारणा में परिवर्तित हो गई। श्रीनिवास ने स्वयं और अन्य लेखकों ने भी उसकी सीमितता की ओर इशारा किया था जो ब्राह्मणीकरण की अवधारणा में प्रमुख थी। संस्कृतीकरण की यह अवधारणा सार रूप में ब्राह्मणीकरण की प्रक्रिया को समझाने में भी समर्थ है।

भारत में सामाजिक परिवर्तन को समझाने के लिये अंतर के रूप में श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की प्रक्रियाओं के साथ–साथ पाश्चात्यीकरण की

प्रक्रिया को भी देखा। उन्होंने परिवर्तन के सन्दर्भों को इन दोनों अवधारणाओं के साथ क्रमबद्ध तरीके से जोड़ा। सांस्कृतिक नकल करने के इन आधारों को उन्होंने उन शक्तियों तथा सम्पन्न लोगों के साथ जोड़ा जो जातियों में मौजूद थे। इन दोनों ही अवधारणाओं का विस्तृत स्पष्टीकरण उनकी पुस्तक सोशल चेंज इन माडर्न इंडिया (1964) में मौजूद है।

संस्कृतीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें निम्न जातियाँ, आदिवासी अथवा अन्य समूह विशेष रूप से द्विज जातियों की प्रथाओं, संस्कारों, विश्वासों, विचारधाराओं और जीवन शैलियों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करती हैं। यह प्रयास इसलिये होता है कि प्रयासरत समूह जाति श्रेणीबद्धता में अपनी स्थिति को बढ़ा सकें। सांस्कृतिक शैली, प्रथाओं और सामाजिक प्रचलनों में परिवर्तन इन दोनों प्रकारों की प्रक्रियाओं से होता है कुछ पूर्व अनुमान भी हैं जो इनसे संबंधित संरचनात्मक परिवर्तन के संबंध में सोचे जा सकते हैं। जैसे आर्थिक स्थिति में सुधार, जिस जाति के तत्त्वएम. एन. श्रीनिवास लिएथे, उनकी श्रेष्ठता और उनके प्रति प्रमुख, मनोवैज्ञानिक उदासीनता, जाति संस्तरण में नीची जातियाँ इस प्रकार की परिस्थितियों को स्वीकार करती हैं। एक ओर जहाँ संस्कृतीकरण की प्रक्रिया भारतीय परंपराओं से प्रभावित है, पश्चिमीकरण ब्रिटिश सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक नवाचारों से प्रभावित है। इसके विपरीत निरपेक्षीकरण अवधारणा का संबंध संस्थागत उद्देश्यों के नवाचार के साथ जुड़ा हुआ है। वैचारिक रचना धार्मिक समूहों और अल्पसंख्यक समूहों के प्रश्नों को उन्होंने उठाया था। निरपेक्षीकरण राष्ट्रीय विचारधारा का अंग बनी।

श्रीनिवास गाँव को भारतीय समाज और सभ्यता का सूक्ष्म प्रतिबिंब मानते हैं। गाँव ही हैं जो भारतीय सभ्यता के तत्त्वों को सुरक्षित रखे हुए हैं। भारतीय समाजशास्त्रियों की पहली पीढ़ी में श्रीनिवास अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं जिन्होंने सभ्यता और संस्कृति के संदर्भ में गाँव का परीक्षण किया है। जी.एस. घुर्ये, रामकृष्ण मुखर्जी, एन.के. बोस, और डी.पी. मुकर्जी की श्रेणी में वे स्थान रखते हैं। ड्यूमा और पोकॉक उनके कुर्ग अध्ययन को भारतीय समाजशास्त्र में श्रेष्ठ रचना मानते हैं। यह अध्ययन भारतीय परंपराओं का वृहद परिचायक है। टी.एन. मदान पुस्तक के प्रकाशन को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं–

कुर्ग के अध्ययन की शक्ति उस सैद्धान्तिक आधार के साथ जुड़ी हुई है जो रैडक्लिफ ब्राउन के द्वारा स्वीकार की गई थी। कुर्ग में संस्कार और सामाजिक व्यवस्था के जटिल अंतर्संबंधों की व्याख्या इसमें प्रस्तुत की गई है। विचारपूर्ण तथा विस्तृत आधार पर शुद्धता तथा अशुद्धता की धारणाओं को

आंतरिकता से समझा गया है। यह प्रक्रिया गैर हिन्दू समुदायों और मतों को भी सम्मिलित करती है।

'रिलीजन एंड सोसायटी' नामक पुस्तक में श्रीनिवास हिन्दू धर्म को समझना चाहते थे। उन्होंने संस्कृत, हिन्दू धर्म और मूल्यों की चर्चा की थी। यह वह प्रक्रिया थी जिसके माध्यम से संस्कृत भारत के सुदूर कोने तक पहुँच गई। इस जीवन शैली को अपने जीवन में उतार कर नीची जातियों ने जाति संस्तरण में अपने को ऊँचा उठाने का प्रयास किया था। श्रीनिवास ने इस बात पर विचार नहीं किया कि इस प्रक्रिया के बावजूद नीची जातियों की बहुत बड़ी संख्या अपने स्थान पर ही बनी रह गई। यह महत्वपूर्ण है कि कुर्ग के सामाजिक इतिहास में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का संपूर्ण चित्रण मौजूद है। श्रीनिवास यह मानते थे कि सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन यही हुआ है कि जातियों ने द्विज जातियों के सांस्कारिक तत्त्वों को अपनी जीवन शैली में उतारा है। जो जातियाँ और अन्य समूह ऐसा नहीं कर सके वे सबसे निम्नतर स्थिति में पहुँच गये। श्रनिवास इस अवनति की चर्चा निम्न रूप में करते हैं।

सदियों से तो नहीं पर दशकों से ऐसा हुआ है कि यदि पूर्वज अपनी स्थिति को नहीं सुधार सके तो आगे की पीढ़ी ने अपनी प्रथाओं का संस्कृ तीकरण कर अपनी प्रस्थितियों को बदल लिया।

नये युग के प्रारंभ के साथ नीची जातियों में इस परिवर्तन के आधार को स्वीकार किया गया है। यदि हम भारतीय समाज की परंपराओं को चिह्नित करना चाहते हैं तो ये परंपराएँ द्विज जातियों जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की परंपराओं, विश्वास तथा संस्कारों में निहित हैं। यह माना जाता है कि निम्न जातियों और आदिवासी समूहों की कोई परंपराएँ नहीं हैं, न उनकी कोई प्रस्थिति है। इन समूहों में कोई भारतीय परंपरा नहीं है। प्रत्यक्षतः यह सोच संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का आह्वान था। यही हिन्दू धर्म का संरचनात्मक आधार था हिन्दू धर्म के पवित्र आधारों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। हिन्दू धर्म को उन्होंने जाति व्यवस्था में देखा और उनके अनुसार भारतीय परंपराएं वस्तुतः हिन्दू परंपराएँ हैं और हिन्दू परंपराएँ जाति व्यवस्था में निहित हैं।

11.4 जाति दृष्टिकोण

श्रीनिवास जाति को एक विभाजनकारी व्यवस्था मानते हैं। प्रत्येक जाति उपजातियों में विभाजित हैं जिनके आधार हैं–

1. अंतर्विवाह

2. जिसके सदस्य एक ही व्यवसाय में हैं

3. सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन की समानता

4. जिसके सदस्य सामान्य संस्कृति के पोषक हैं

5. जिसके सदस्य एक ही प्रकार की व्यवस्था अर्थात् पंचायत व्यवस्था से संचालित है। उपजातियों के इन तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य लक्षण भी महत्वपूर्ण हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. **श्रेणीबद्धता :** श्रीनिवास के अनुसार जाति व्यवस्था के लिये प्राथमिक है। वंशानुगत आधार पर बने इन समूहों को एक श्रेणी आधार में ढाल दिया गया है। व्यवस्था में ब्राह्मणों की उच्च स्थिति तथा अस्पृश्यों की निम्नतर स्थिति सबसे अधिक स्पष्ट श्रेणियों में हैं। मध्य की श्रेणियाँ अत्यन्त लचीली हैं।

2. **व्यावसायिक विभेद :** श्रीनिवास जाति तथा व्यवसाय के बीच गहरा संबंध पाते हैं। उनके अनुसार अब जाति और कुछ नहीं बल्कि क्रमबद्ध रूप में व्यावसायिक विभेदीकरण है। बहुत सी जातियों के नाम उनके व्यवसाय के नामों से जुड़े हुए हैं। जैसे लोहार, सुनार, कुम्हार, तेली, चमार आदि। इन व्यवसायों को उच्च तथा निम्न स्तरों में विभाजित भी किया गया है।

3. **प्रतिबंध :** आपस में मिलने–जुलने, वेशभूषा, संवाद, प्रथाओं के संबंध में भी जातियों में भेदभाव पाया जाता है। भोजन की भी अपनी श्रेणियाँ हैं और भोजन स्वीकार करने का भी निषेधात्मक आधार है।

4. **अशुद्धता :** जातियों के बीच की दूरी अशुद्धता के आधार पर तय होती हैं। श्रीनिवास का मानना है कि जाति के सदस्यों को ऐसे व्यक्तियों अथवा किन्हीं वस्तुओं के संपर्क में नहीं आना चाहिये जो अशुद्ध हो। इन संपर्कों से जातियाँ अशुद्ध हो जाती हैं और उनकी उपेक्षा बढ़ जाती है यह भी व्यवस्था है किन्हीं संस्कारों से इसे शुद्ध किया जा सकता है। यदि अपराध बहुत गंभीर है जैसे किसी ऊँची जाति के व्यक्ति ने निम्न जाति की औरत के साथ यौन संबंध स्थापित किया है तो उसे जाति की सदस्यता से वंचित कर दिया जाता है।

5. **जाति पंचायतें तथा जाति सभाएँ :** उपर्युक्त सभी तत्वों को नियंत्रित करने के लिये जातियों की अपनी संस्थाएँ जाति पंचायत और जाति सभाएँ हैं। जाति के वृद्ध व्यक्ति जाति के लोगों के आचरण पर नियंत्रण रखते हैं। सामूहिक रूप से वे निर्णय करते हैं जाति का प्रत्येक सदस्य इन वृद्ध लोगों के प्रति उत्तरदायी है। जाति सभाएँ अपने क्षेत्र में गाँव से भी परे विस्तृत आधार पर काम करती हैं और कई गाँव इसमें शामिल होते हैं।

उपर्युक्त सभी स्पष्टीकरण संकेत देते हैं कि जातियों में दूसरी जातियों के साथ व्यवहार का निर्धारण दूसरी जातियों की प्रकृति पर आधारित है। ये प्रवृत्तियाँ और प्रथाएँ जाति की श्रेणी का भी निर्धारण करती हैं। संस्कृतीकरण और जाति गतिशीलता पर श्रीनिवास की रचनाएँ इन तथ्यों को स्पष्ट करती हैं।

11.5 संस्कृतीकरण

हम यह देख चुके है कि शुद्धता तथा अशुद्धता के आधार पर जातियों का विभाजन कैसे होता है। गाँव के अपने अध्ययन में श्रीनिवास ने यह देखा था कि किस प्रकार जाति श्रेणीबद्धता में अपना स्थान बदलने के लिये अन्य जातियाँ जो उनके सन्दर्भ में हैं उनकी सांस्कृतिक आदतों को स्वीकार कर इस प्रक्रिया में सम्मिलित होती हैं। अपने सांस्कृतिक तत्त्वों को बदल कर दूसरी जाति के सांस्कृतिक तत्त्वों को स्वीकार कर श्रेणीबद्धता में अपना स्थान बदलने की प्रक्रिया का नाम ही संस्कृतीकरण है। आवश्यक रूप में इस प्रक्रिया में भोजन की आदतों में बदलाव, मांसाहारी से शाकाहारी होना, अपने व्यवसाय में परिवर्तन, अर्थात् अस्पृश्य व्यवसाय से साफ सुथरा व्यवसाय सब कुछ जातियों में स्थापित अंतःक्रिया के स्वरूप को बदल देता है। श्रीनिवास की दृष्टि में अंतःक्रिया तथा अंतसंबंधों में यह बदलाव प्रभु जाति की अवधारणा में भी निहित है।

11.6 प्रभु जाति पर विचार

जाति के अतिरिक्त श्रीनिवास ने परंपराओं की अभिव्यक्ति पर भी अपने को केन्द्रित किया था। ग्राम रामपुरा के अध्ययन के शोध पत्रों में उन्होंने इसका सबसे पहले उल्लेख किया था। इस अवधारणा की विवेचना के बाद में भारत की सामाजिक–राजनीतिक संरचनाओं पर इसे लागू कर भी देखा गया था। इन सभी आधारों पर श्रीनिवास ने छः तत्त्वों की चर्चा की थी। श्रीनिवास द्वारा ये तत्त्व किसी जाति को प्रभु जाति का दर्जा देने में सक्षम हैं।

1. खेती योग्य बहुतायत जमीन का स्वामित्व

2. संख्या की अधिकता

3. स्थानीय श्रेणीबद्धता में उच्च स्थान

4. पाश्चात्य शिक्षा

5. प्रशासन में नौकरियाँ

6. आय का नगरीय स्रोत

प्रभु जाति के इन सभी तत्त्वों में तीन अति महत्त्वपूर्ण हैं (1) जनसंख्या शक्ति (2) भूमि पर अधिकार के कारण अर्थशक्ति (3) राजनीतिक शक्ति ।

इन तत्त्वों की खास बात यही है कि जाति श्रेणीबद्धता में अब संस्कार महत्वपूर्ण नहीं रहे ग्राम समुदाय में प्रभु जातियाँ इन्हीं तत्वों पर आधारित हैं। कोई छोटी श्रेणीबद्ध जाति भी अपने भूमि आधिपत्य तथा गाँव के मामले में राजनीतिक प्रभाव के कारण प्रभु जाति बन सकती है। लेकिन यह भी संभावना है कि श्रेणीबद्धता में ऊँचे स्थान की जातियाँ प्रभु जाति बन सकें। उनके लिये यह आसान है नीची श्रेणी के लिये यह काम मेहनत भरा है।

मैसूर में रामपुरा गाँव के अध्ययन को हम उदाहरण मान सकते हैं। गाँव में कई जातियाँ हैं ब्राह्मण, कृषक तथा अस्पृश्य जातियाँ सांस्कारिक दृष्टि से कृषक जातियाँ, ब्राह्मणों से निम्न मानी जाती हैं। लेकिन उनके पास भूमि के माध्यम से अपार आर्थिक शक्ति है और गाँव के राजनीतिक मामलों में भी उनका हस्तक्षेप है इसीलिये श्रेणीबद्धता में निम्न होते हुए भी वे प्रभु जातियाँ हैं। गाँव की अन्य जातियों के इन प्रभु जातियों के साथ सेवा के संबंध हैं।

इस अवधारणा के संबंध में श्रीनिवास की आलोचनाएँ भी हुई है यह कहा गया कि प्रभुत्व की यह अवधारणा अफ्रीकी समाजशास्त्र से उठाई गई है। इस आलोचना को नकारते हुए श्रीनिवास ने कहा कि इस अवधारणा का मूल स्वयं उनके कुर्ग समाज के अध्ययन में निहित है। अपने क्षेत्रीय कार्य में उन्होंने पाया था कि कुर्ग और ओक्कलिगा जातियाँ अपने गाँवों में प्रभुता के साथ जुड़ी हुई हैं। प्रभुता के ये सन्दर्भ स्थानीय जातियों के लिये संस्कृतीकरण के स्थानीय स्रोत हो सकते हैं। यही स्रोत बाधक भी हो सकते हैं। यदि देखें तो निम्न जातियों और दलितों का इस संरचना में कोई स्थान नहीं है भारत में कहीं भी

अधीनस्थ समूह प्रभु जाति नहीं है।

11.7 आलोचनात्मक मूल्यांकन

श्रीनिवास के जीवन का एक लक्ष्य भारतीय समाज को समझना था। यद्यपि तकनीकी और आर्थिक विकास की चर्चा की थी पर समाज के निम्न वर्गों की उन्होंने नहीं की थी। धार्मिक अल्पसंख्यकों की चर्चा भी उन्होंने नहीं की थी। यह इसलिये हुआ क्योंकि वे संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को उभारना चाहते थे। उनके भारतीय परंपरा वे हैं जो जाति और गाँव में प्रचलित हैं। उनकी दृष्टि में निरपेक्ष नहीं हिन्दूवादी परंपराएँ ही भारतीय परंपराएँ हैं। ऐसे विचार मात्र हिन्दूवादी विचारधारा के है प्रतीक हैं। एक ओर संस्कृतीकरण में जाति संरचना पर उन्होंने ज्यादा बल दिया। उन्हें पाश्चात्यीकरण की प्रक्रिया को देश में सीमित आकार का माना। बिना दोनों को एक–दूसरे से संबंधित किये इनको समझा नहीं जा सकता।

1956 में श्रीनिवास ने पाश्चात्यीकरण की अवधारणा विकसित की। उनका मानना था कि भारत में ब्रिटिश राज ने देश के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आधारों का प्रवेश करा दिया था। ब्रितानी लोगों (ब्रिटिशों) द्वारा भारत छोड़ने के बाद भी ये चिन्ह मिटे नहीं। भारतीय स्वतंत्रता के बाद इन तत्वों का विस्तार ही हुआ। मुकर्जी कहते है भारतीय समाज की अपनी विशेषता हैं और इनसे विकसित अवधारणाओं की अपनी कोई मौलिकता नहीं है। जिस संस्कृतीकरण की चर्चा की जाती है वह मूल रूप में रिजले द्वारा विकसित आर्यकरण और ब्राह्मणीकरण की अवधारणाओं में मौजूद है। अपनी पुस्तक 'सोश्योलॉजी ऑफ इंडियन सोश्योलाजी' के प्रथम अध्याय में मुकर्जी ने भी इसकी चर्चा की है। संस्कृतीकरण की अवधारणा वस्तुतः इस दिशा में विस्तार है और जिसको स्वयं श्रीनिवास भी नहीं नकारते इसी प्रकार पाश्चात्यीकरण की अवधारणा कई समाजशास्त्रियों ने प्रस्तावित की और यह वही स्वरूप था जिसे श्रीनिवास प्रस्तुत करना चाहते थे।

समाजशास्त्र के प्रारंभिक विद्वान भी इन प्रक्रियाओं के बारे में नहीं जानते थे। जो कुछ भी उन्होंने स्वीकार किया वह उनके द्वारा स्वीकृत मूल्य प्राथमिकताओं, सैद्धान्तिक रचनाओं और शोध में उनके द्वारा स्वीकृत स्वरूपों में सम्मिलित था। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया पर प्रो. योगेन्द्र सिंह का मत है कि इसे दो सन्दर्भों में समझा जा सकता है। पहला ऐतिहासिक विशिष्ट आधार पर और दूसरा सन्दर्भात्मक आधार पर, मिल्टन सिंगर ने भी पहले इसी तरह की

अवधारणाओं को स्वीकारा था।

11.8 सारांश

भारत की प्रथम पीढ़ी के समाजशास्त्रियों में एम. एन. श्रीनिवास का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय समाज को समझने के लिये उनका प्रस्ताव था कि क्षेत्र मन्तव्य, पुस्तक जिसमें कुर्ग का अध्ययन किया गया है, के किये गये क्षेत्रीय कार्य में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम पूर्ण रूप में प्रतिबिंबित है। यह उन जटिल अंतर्संबंधों का भी वर्णन है जो कुर्ग समाज की सांस्कारिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के बीच था। यह शुद्धता और अशुद्धता की अवधारणा के साथ का विश्लेषण और गैर हिन्दुओं के हिन्दू समाज में प्रवेश के संबंधों की भी समीक्षा करता है। भारत के सुदूर भागों में सांस्कृतिक मूल्यों के प्रसार का विश्लेषण भी उनकी रचनाओं में है।

11.9 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 एम.एन.श्रीनिवास द्वारा गाँव के अध्ययन के आधार पर सैद्धान्तिक तथा पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य की व्यख्या की व्यख्या कीजिए।

प्र. 2 एम.एन.श्रीनिवास के धर्म और समाज एवं जाति दृष्टिकोण की व्यख्या कीजिए ।

प्र. 3 एम.एन.श्रीनिवास के संस्कृतीकरण तथा प्रभु जाति पर विचार का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 प्रभु जाति की अवधारणा से सम्बंधित है?

(अ) श्रीनिवास (ब) राधाकमल मुकर्जी (स) मैकाइवर (द) योगेन्द्र सिंह

प्र. 2 मैरिज एंड फैमिली इन मैसूर किसकी कृति है?

(अ) राधाकमल मुकर्जी (ब) थामस कुहन (स) श्रीनिवास (द) एस सी दुबे

प्र. 3 संस्कृतीकरण की अवधारणा से सम्बंधित है?

(अ) योगेन्द्र सिंह (ब) बर्जर (स) राधाकमल मुकर्जी (द) श्रीनिवास

प्र. 4 क्षेत्रीय अध्ययन के लिए जाने जाते है?

(अ) राधाकमल मुकर्जी (ब) योगेश अटल (स) श्रीनिवास (द) कोई नही

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (अ)

प्र. 2 (स)

प्र. 3 (द)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Ayyar, P.V. Jagadisa, 1920. South Indian Shrines, Madras : The Madras Times.

2. Baird, R. D. (ed.) 2001. Religion in Modern India, New Delhi : Manohar Publishers.

3. Bayly, Susan, 1989. Saints, Goddesses and Kings. Muslims and Christians in South India, Cambridge : Cambridge University Press.

4. Chatterjee, Margaret, 1983. Gandhi's Religious Thought, Notre Dame, University of Notre Dame Press.

5. Copley. A. 1999. Religion in Conflict, New Delhi : Oxford university Press.

6. D'Souza. L. 2005. The Sociology of Religion: A Historical Review, Jaipur : Rawat Publications.

7. Debiprasad, Bhattacharya, 1969. Indian Atheism : A Marxist Approach,

New Delhi : People's Publishing House.

8. Dube, S. C. and V. N. Basilov (eds.) 1983. Secularization in Multi Religious Societies, New Delhi : Concept.

9. Dundas, Paul, 1992. The Jains, London : Routledge.

इकाई 12 : एल. पी. विद्यार्थी का गया (GAYA) पर योगदान

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पवित्र परिसर (सेक्रेड काम्प्लेक्स)

12.3 प्रकृति मनुष्य एवं आत्मा परिसर

12.4 आदिवासी और लोकगीत अध्ययन

12.5 अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक शोध

12.6 एप्लाइड और एक्शन एंथ्रोपोलॉजी से संबंधित मुद्दे

12.7 सारांश

12.8 बोध प्रश्न

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप एल. पी. विद्यार्थी के जीवन व्यक्तित्व और पवित्र परिसर (सेक्रेड काम्प्लेक्स) की अवधारणा की व्यख्या कर सकेंगे।
- एल. पी. विद्यार्थी के प्रकृति मनुष्य एवं आत्मा परिसर तथा आदिवासी और लोकगीत अध्ययन अवधारणा की व्यख्या कर सकेंगे।
- एल. पी. विद्यार्थी के अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक शोध एप्लाइड और एक्शन एंथ्रोपोलॉजी से संबंधित मुद्दे की व्यख्या कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

ललिता प्रसाद विद्यार्थी (1931–1985) समकालीन भारतीय मानव विज्ञान में एक जाना पहचाना नाम है। उनका जन्म 28 फरवरी 1931 को पटना के

पास एक गांव में हुआ था। 1950 में उन्होंने बी.ए. की डिग्री हासिल पटना कॉलेज से की थी। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से नृविज्ञान में एम.ए. की डिग्री (1953) प्राप्त की थी। एल. पी. विद्यार्थी को लखनऊ विश्वविद्यालय में डी. एन. मजूमदार ने पढ़ाया था। उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय से पीएचडी की डिग्री (1958) प्राप्त की थी। उन्होंने शिकागो में बहुत प्रसिद्ध मानवविज्ञानी सोल टैक्स, रॉबर्ट रेडफील्ड के तहत काम किया था।

एल. पी. विद्यार्थी बिहार विश्वविद्यालय वापस आए और एक रीडर एवं मानव विज्ञान विभाग के प्रमुख (1958–1968) के रूप में शामिल हुए। उन्हें 1968 में विभागाध्यक्ष के रूप में जारी रखते हुए एक प्रोफेसर नियुक्त किया गया था। एल.पी. विद्यार्थी ने अपनी मृत्यु तक एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी और एक्शन एंथ्रोपोलॉजी से संबंधित मुद्दों पर काम किया। उनके प्रयासों से रांची विश्वविद्यालय में नृविज्ञान विभाग को यू.जी.सी. द्वारा (1978) एक विशेष सहायता विभाग का दर्जा दिया गया था। मानव विज्ञान में उन्नत अध्ययन केंद्र (1985) की स्थापना से इसकी स्थिति में बहुत सुधार हुआ।

उन्होंने भारतीय नृविज्ञान को विश्व मानचित्र पर स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई कि अंतर्राष्ट्रीय नृविज्ञान में प्रमुख पत्रिकाओं में भारतीयों और उनकी पत्रिकाओं को सार, सामग्री के रूप में या नृविज्ञान में प्रमुख मुद्दों के बारे में उनकी टिप्पणियों के लिए एक विशेष रूप में शामिल किया गया था।

एल. पी. विद्यार्थी को फोर्ड फाउंडेशन अवार्ड (1957), यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो फेलोशिप (1957), इंडो–यूएसएसआर कल्चरल एक्सचेंज फेलोशिप (1959), रोम सिविक रिसेप्शन ब्रॉन्ज मेडल (1976) और कई अन्य जैसे कई फेलोशिप और पुरस्कारों के विजेता थे। उन्होंने रांची के शहरी पैटर्न (1960), द बिरहोर एक्शन रिसर्च प्रोजेक्ट (1966), काशी में पवित्र परिसर (1972–76) और कई अन्य बड़े पैमाने पर अनुसंधान परियोजनाओं का निर्देशन किया। उन्होंने कई प्रसिद्ध प्रकाशनों को लिखा है। इनमें से कुछ हैं सेक्रेड कॉम्प्लेक्स इन हिंदू गया (1961), द मालेर : नेचर–मैन– स्पिरिट कॉम्प्लेक्स इन हिल ट्राइब ऑफ बिहार (1963), कल्चरल काउन्टर ऑफ ट्राइबल बिहार (1964) ट्रेंड्स इन वर्ल्ड एंथ्रोपोलॉजी (1980) आदि ।

एल. पी. विद्यार्थी की मुख्य अवधारणा पवित्र परिसर है जो हमें भारतीय सभ्यता में चल रही सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने में मदद करती है। उन्होंने

बिहार और छोटानागपुर क्षेत्र के आदिवासियों पर व्यापक रूप से लिखा है, और भारतीय मानव विज्ञान की पहचान के रूप में माने जाने वाले सैद्धांतिक विचारों को भी प्रतिपादित किया है। एल. पी. विद्यार्थी लोकसाहित्य अनुसंधान, फील्डवर्क, नेतृत्व अध्ययन और मानवशास्त्रीय सिद्धांतों में भी रुचि थी। एल. पी. विद्यार्थी को योजना आयोग द्वारा पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए टास्क फोर्स का प्रमुख नियुक्त किया गया था। जनजातीय उप योजना की संकल्पना इसी टास्क फोर्स का परिणाम थी। सामाजिक नृविज्ञान के क्षेत्र में उनके प्रमुख योगदान की चर्चा नीचे की गई है।

12.2 पवित्र परिसर (सेक्रेड काम्प्लेक्स)

एल. पी. विद्यार्थी ने गया के पवित्र शहर का व्यापक अध्ययन किया और 'पवित्र परिसर' की अवधारणा विकसित की जिसका वर्णन उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सेक्रेड कॉम्प्लेक्स इन हिंदू गया (1961) में किया है। वह तीन घटकों का सुझाव देते है।

पहला, एक पवित्र भूगोल, दूसरा, पवित्र प्रदर्शनों का एक समूह और तीसरा पवित्र विशेषज्ञ जो सामूहिक रूप से पवित्र परिसर का निर्माण करते हैं। पवित्र परिसर ने राष्ट्रीय एकता की एक तस्वीर प्रस्तुत की और एक एकीकृत आधार को निरूपित किया है क्योंकि यह विभिन्न परंपराओं, जातियों और संस्कृतियों के विलय बिंदु के रूप में कार्य करता था। एल. पी. विद्यार्थी ने कहा कि एक हिंदू तीर्थस्थल का पवित्र परिसर महान और छोटी परंपराओं के बीच निरंतरता, समझौता और संयोजन के स्तर को दर्शाता है। एक तीर्थयात्रा के पवित्र विशेषज्ञ कुछ ग्रंथों को लोकप्रिय बनाकर अनुष्ठान और मंदिर के पुजारी के रूप में कार्य करके महान परंपरा के कुछ तत्वों को भारत की ग्रामीण आबादी तक पहुँचाते हैं।

एल. पी. विद्यार्थी का कहना है कि हाल के दिनों में संशोधन और परिवर्तन की प्रक्रिया के कारण गया के धर्मनिरपेक्ष क्षेत्र का पवित्र क्षेत्र सिमटने की स्थिति दिखाई दे रही है। गया में किए जाने वाले मुख्य पवित्र प्रदर्शनों में से एक है गया श्राद्ध (पैतृक आत्माओं के लिए बलिदान का रूप)। सभी पवित्र प्रदर्शनों का नेतृत्व गयावाल ब्राह्मणों (एक रूढ़िवादी पुरोहित जाति) द्वारा किया जाता है। गायवाल ब्राह्मणों को हिंदू ब्रह्मांड के विभिन्न हिस्सों में स्थित संरक्षकों के साथ जजमानी संबंध है। तीर्थयात्री देश के विभिन्न हिस्सों और संस्कृति के विभिन्न स्तरों से पवित्र परिसरों में बातचीत करते हैं। इसलिए पवित्र परिसरों

को सभ्यता का केंद्र माना जाता है।

12.3 प्रकृति मनुष्य एवं आत्मा परिसर

एल. पी. विद्यार्थी को 1951 में मालेर जनजाति के बारे में पता चला जो उनके अनुसार भारत में महान मानवशास्त्रीय रुचि के कुछ आदिम जनजातियों में से एक थी। जब उन्हें पृथक मालेरों की अत्यधिक आदिमता के बारे में पता चला तो एल. पी. विद्यार्थी ने उन्हें अपनी वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बनाने का फैसला किया। एल. पी. विद्यार्थी ने बताया कि कैसे जंगलों के पारिस्थितिक आधार और स्लेश–एंड–बर्न खेती ने मालेर जनजाति के सामाजिक–आर्थिक जीवन को आकार दिया। उन्होंने मनुष्य के संबंध में मनुष्य का अध्ययन किया। अंत में उन्होंने चार प्रकार की माँलेर आत्माओं को प्रस्तुत किया, (गोसाईं – परोपकारी आत्माएं, जीवे उरक्या – पूर्वज, अलची – बुरी आत्माएं और चेरगानी – एक चुड़ैल या जादू टोना की आध्यात्मिक शक्ति) पवित्र भूगोल, पवित्र प्रदर्शन और पवित्र विशेषज्ञ। प्रकृति, मनुष्य और आत्मा आवश्यकता की परस्पर क्रिया करते हैं। यह एल. पी. विद्यार्थी द्वारा प्रस्तावित प्रकृति–मानव–आत्मा परिसर की प्रसिद्ध अवधारणा का आधार था।

नेचर–मैन–स्पिरिट कॉम्प्लेक्स की अवधारणा को एल.पी. विद्यार्थी ने अपनी पुस्तक द मालेर ए स्टडी इन नेचर–मैन–स्पिरिट कॉम्प्लेक्स में प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने इस कॉम्प्लेक्स के संदर्भ में एक पहाड़ी जनजाति मालेर की संस्कृति का वर्णन किया है जहां तीन परिसर के अवयव अन्योन्याश्रित और परस्पर पूरक हैं। यह इस तथ्य पर आधारित है कि प्रकृति के साथ मनुष्य की घनिष्ठ अंतःक्रिया और निर्भरता से उत्पन्न उसका अलौकिक और आध्यात्मिक संसार में विश्वास है। यह पाया गया है कि आदिवासी भारत में एक ओर सामाजिक संगठनों और दूसरी ओर धार्मिक जटिल और पारिस्थितिक स्थितियों के बीच घनिष्ठ संबंध और अंतःक्रिया होती है। पुस्तक को क्रमशः प्रकृति, मनुष्य और आत्मा के साथ तीन भागों में विभाजित किया गया था।

पहले भाग में वह मालेर संस्कृति के पारिस्थितिक आधार को प्रदर्शित करता है जिसमें पहाड़ियों और जंगलों के साथ–साथ खेती के महत्व को दिखाया गया है जिसके चारों ओर पूरे मालेर का जीवन घूमता है। मनुष्य से संबंधित दूसरे भाग में वह परिवार की संरचना और संगठन, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं और एक विशिष्ट पुरुष के जीवनचक्र सहित सभी पहलुओं में संबंधों के प्रसार का अध्ययन करता है। आत्मा पर तीसरे भाग में उन्होंने अलौकिक

प्राणियों, पवित्र केंद्रों, पवित्र प्रदर्शनों और पवित्र विशेषज्ञों में धार्मिक विश्वासों का वर्णन किया है।

विद्यार्थी ने दावा किया कि मालेर संस्कृति की उत्पत्ति प्रकृति की गोद में विकसित और फली–फूली। मलेरों के चारों ओर जंगल हैं और मुख्य रूप से इसके वनों के संदर्भ में इसे निर्वासित करने से इस संस्कृति की व्यापक समझ हो सकती है। मालेर अर्थव्यवस्था के मुख्य स्रोत स्लैश–एंड–बर्न–खेती के लिए भूमि प्रदान करने के अलावा, जंगल उन्हें भोजन, पेय, आश्रय, दवा आदि प्रदान करते हैं। उन्होंने पाया कि मालेर जीवन का हर पल एक ओर प्रकृति से गहराई से प्रभावित था। और दूसरी ओर आत्मा। कॉम्प्लेक्स के ये दो अवयव मालेर लोगों के जीवन चक्र में सर्वोपरि भूमिका निभाते हैं।

12.4 आदिवासी और लोकगीत अध्ययन

एल. पी. विद्यार्थी की पुस्तक 'कल्चरल काउन्टर ऑफ ट्राइबल बिहार' (1966) शीर्षक से छोटा नागपुर की जनजातियों की सामाजिक संस्थाओं के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है। एल. पी. विद्यार्थी द्वारा लिखित पुस्तक 'ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया' (1976) और डॉ. बी.के. रॉय द्वारा आदिवासी भारत में लोककथाओं, कला, जीवन के पाठ्यक्रम और यहां तक कि मातृवंश और बहुपतित्व पर व्यापक जानकारी प्रदान करते हैं। एल. पी. विद्यार्थी ने मालेर की पारिस्थितिक आधार, परिवार, अर्थशास्त्र, धर्म और सांस्कृतिक इतिहास से जुड़ी बहुमूल्य जानकारी एकत्र की है और उनका विश्लेषण किया है जिसका उल्लेख उन्होंने मालेर (1963) पर अपनी पुस्तक में किया है। बिहार के मगही, भोजपुरी और आदिवासी क्षेत्रों के लोकगीतों में एल. पी. विद्यार्थी की गहरी रुचि थी।

12.5 अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक शोध

मानव अधिकार एक ऐसा क्षेत्र है जहां सीमांत और वंचित समुदायों के साथ सबसे अधिक बार काम करने वाले मानवविज्ञानियों ने खुद को निर्देशित किया है। जैसा कि पहले से ही आदिवासी आबादी के साथ भारतीय मानवविज्ञानी के कामों का उल्लेख किया गया है, उन्होंने इन लोगों के साथ अन्याय किया और एस.सी. रॉय ने इन लोगों पर हुई हिंसा का अध्ययन कर उल्लेख किया है। समाज के नीचे या हाशिए पर स्थित लोगों के खिलाफ शोषण और हिंसा के अपराध के लिए संरचनात्मक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने के अतरिक्त कई मानवविज्ञानियों ने सूचना के प्रसार और उनके संबंध में

नीति निर्माण को प्रभावित करने के लक्ष्य के साथ इन लोगों के व्यक्तिपरक कष्टों पर भी प्रकाश डाला है। यद्यपि मानवविज्ञान एक अनुशासन के रूप में उपनिवेशी प्रशासको को तथाकथित उपनिवेशों पर शासन करने मे मदद करने के लिए शुरू हुआ था, लेकिन अधिकांश मानवविज्ञानियों ने अपनी स्थिति के आधार पर उन लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जिनके साथ उन्होंने अध्ययन किया, और जल्द ही शासको की तुलना में शोषितों के प्रति अपनी सहानुभूति बदल दी। तब से मानवविज्ञान अनुसंधान ने दुनिया भर में कई स्वदेशी समुदायों जैसे, मूल अमेरिकियों, माओरिस ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों और अफ्रीकी जनजातियों की सहायता की है।

मानवविज्ञानी ने अन्य हाशिए के समुदायों जैसे नस्लीय, यौन और जातीय रूप से हाशिए के समुदायों के साथ भी अनुसंधान किया है। अनुप्रयुक्त अनुसंधान (एप्लाइड रिसर्च) के अन्य क्षेत्र स्वास्थ्य कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और चिकित्सा मानव विज्ञान अनुसंधान के विस्तार के साथ गरीबी और बीमारी से जुड़े मुद्दों से निपटने की रणनीतियों के लिए जानकारी प्रदान कर रहे हैं। आपदा प्रबंधन एक अन्य क्षेत्र है जिसमें मानव विज्ञान अनुसंधान अपना योगदान दे रहा है । मानवविज्ञानियों ने कल्याण कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और विकास के लिए सहभागी अनुसंधान जैसी विधियां प्रदान की हैं। इसमें मानवविज्ञान विस्थापन, पुनर्वास और सभी प्रकार के जनसांख्यिकीय अनुसंधान पर काम करने के लिए सहायता प्रदान करने वाले एक प्रमुख अनुशासन के रूप में उभरा है। मानव विज्ञान खाद्यानो के कुछ नए क्षेत्र प्रबंधन और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो में भी हैं। वे नीति बनाने में मदद करते हैं और अपने शोध के माध्यम से मौजूदा नीतियों के आलोचको के रूप में भी कार्य करते हैं।

जैविक मानवविज्ञानियों द्वारा किए गए जेनेटिक और फोरेंसिक अनुसंधान आपराधिक जाँच और कानूनी प्रक्रियाओं में मदद करते हैं। मानवशास्त्रीय शोध मानवता को सबसे पहले रखने के अपने पहले सिद्धांत द्वारा निर्देशित है लेकिन समकालीन दुनिया में वे पर्यावरण और सभी प्रजातियों के वैश्विक समुदाय के लिए भी चिंता दिखा रहे है। मानवविज्ञानी शास्त्रीय अर्थशास्त्री द्वारा दी गई संकीर्ण भौतिकवादी और साधनवादी परिभाषा से दूर एक संदर्भ में कल्याण, विकास और मानव सुख जैसी अवधारणाओं को समझने और बनाने में लगे हैं। इस अर्थ में, मानवविज्ञान अनुसंधान इस ग्रह की निष्पक्षता, न्याय और स्थिरता के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है। इसी प्रकार एल. पी. विद्यार्थी ने एप्लाइड नृविज्ञान और क्रिया नृविज्ञान से संबंधित मुद्दों पर व्यापक रूप से काम किया है।

12.6 एप्लाइड और एक्शन एंथ्रोपोलॉजी से संबंधित मुद्दे

एल. पी. विद्यार्थी ने एप्लाइड नृविज्ञान और क्रिया नृविज्ञान से संबंधित मुद्दों पर व्यापक रूप से काम किया। 1967 में जनजातीय आबादी पर विभिन्न प्रकार की योजनाओं के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए उनके अधीन एक टास्क फोर्स नियुक्त की गई थी। इस प्रकार वह आदिवासियों के अनुकूल योजनाएँ बनाने में सक्षम थे। यह उनके काम एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी इन इंडिया (1968) में शामिल था। 1968 में ही उन्होंने आदिवासी समाजों के बीच औद्योगीकरण के प्रभाव पर भी लिखा था।

12.7 सारांश

यह इकाई इस बात का विस्तृत विवरण प्रदान करती है कि एल. पी. विद्यार्थी द्वारा मानवविज्ञान अनुसंधान विकास के विभिन्न चरणों से कैसे गुजरा है। यह मानवशास्त्रीय अनुसंधान के संचालन पर विद्वतापूर्ण अंतर्दृष्टि के साथ अध्ययन किए गए समाजों और समुदायों के बदलते परिदृश्यों के साथ बढ़ता रहा। इकाई शिक्षार्थियों को यह जानने में मदद करती है कि जैसे–जैसे विषय बढ़ता गया वैसे–वैसे लोगों के शोध के तरीके बढ़ते गए। एल. पी. विद्यार्थी का मानना था कि मानवविज्ञानी अनुसंधानों ने उपनिवेशवादियों और उनकी सरकारों के लिए काम करने के साथ समाज में बदलाव लाने के लिए अपने ज्ञान को अपनी जांच में लागू किया भी किया। उन्होंने गांवों के अध्ययन में एक से अधिक साइटों को अपने अध्ययन में शामिल करके अपने ज्ञान के क्षितिज को विस्तार दिया और विद्वानों को प्रभावित किया है। इसके अलावा एल. पी. विद्यार्थी ने 1951 में मालेर जनजाति के बारे में उल्लेखित किया है अनुसार भारत में महान मानवशास्त्रीय रुचि के कुछ आदिम जनजातियों में से एक थी। जब उन्हें पृथक मालेरों की अत्यधिक आदिमता के बारे में पता चला तो एल. पी. विद्यार्थी ने उन्हें अपनी वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बनाने का फैसला किया।

12.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 एल. पी. विद्यार्थी के जीवन व्यक्तित्व और पवित्र परिसर (सेक्रेड काम्प्लेक्स) की अवधारणा की व्यख्या कीजिए।

प्र. 2 एल. पी. विद्यार्थी के प्रकृति मनुष्य एवं आत्मा परिसर तथा आदिवासी और लोकगीत अवधारणा का मूल्यांकन कीजिए ।

प्र. 3 एल. पी. विद्यार्थी के अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक शोध एप्लाइड और एक्शन एंथ्रोपोलॉजी से संबंधित मुद्दे की व्याख्या कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 पवित्र परिसर (सेक्रेड काम्प्लेक्स) की अवधारणा से सम्बंधित है?

(अ) श्रीनिवास (ब) राधाकमल मुकर्जी (स) एल. पी. विद्यार्थी (द) योगेन्द्र सिंह

प्र. 2 गया पर अध्ययन इनमे से किसका है?

(अ) राधाकमल मुकर्जी (ब) थामस कुहन (स) श्रीनिवास (द) एल. पी. विद्यार्थी

प्र. 3 द मालेर : नेचर मैन स्पिरिट कॉम्प्लेक्स इन हिल ट्राइब ऑफ बिहार किसकी कृति है?

(अ) एल. पी. विद्यार्थी (ब) बर्जर (स) राधाकमल मुकर्जी (द) पार्सन्स

प्र. 4 एप्लाइड और एक्शन एंथ्रोपोलॉजी से संबंधित मुद्दे की व्यख्या के लिए जाने जाते है?

(अ) एल. पी. विद्यार्थी (ब) योगेश अटल

(स) राधाकमल मुकर्जी (द) कोई नही

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (स)

प्र. 2 (द)

प्र. 3 (अ)

प्र. 4 (अ)

संदर्भ सूची

1. Ayyar, P.V. Jagadisa, 1920. South Indian Shrines, Madras : The Madras Times.

2. Baird, R. D. (ed.) 2001. Religion in Modern India, New Delhi : Manohar Publishers.

3. Bayly, Susan, 1989. Saints, Goddesses and Kings. Muslims and Christians in South India, Cambridge : Cambridge University Press.

4. Chatterjee, Margaret, 1983. Gandhi's Religious Thought, Notre Dame, University of Notre Dame Press.

5. Copley. A. 1999. Religion in Conflict, New Delhi : Oxford university Press.

6. D'Souza. L. 2005. The Sociology of Religion: A Historical Review, Jaipur : Rawat Publications.

7. Debiprasad, Bhattacharya, 1969. Indian Atheism : A Marxist Approach, New Delhi : People's Publishing House.

8. Dube, S. C. and V. N. Basilov (eds.) 1983. Secularization in Multi Religious Societies, New Delhi : Concept.

9. Dundas, Paul, 1992. The Jains, London : Routledge.

इकाई 13 : राधाकमल मुकर्जी का मूल्यों पर योगदान

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 व्यक्तित्व और समाज में मूल्य

13.3 मूल्य की अवधारणा

13.4 ज्ञान और मानवीय मूल्य

13.5 प्रतीक और मूल्य

13.6 मानवीय मूल्यों का उदविकास

13.6.1 हित–समूह

13.6.2 समुदाय

13.6.3 सम्पूर्ण मानव समाज

13.7 मानवीय सामाजिक उदविकास का द्वन्द्वात्मक उदविकास

13.8 सारांश

13.9 बोध प्रश्न

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राधाकमल मुकर्जी का व्यक्तित्व और समाज में मूल्य की अवधारणा की व्यख्या कर सकेंगे।

- राधाकमल मुकर्जी के ज्ञान और मानवीय मूल्य तथा प्रतीक और मूल्य की

व्यख्या कर सकेंगे।

- राधाकमल मुकर्जी के मानवीय मूल्यों का उदविकास तथा मानवीय सामाजिक में द्वन्द्वात्मक उदविकास की व्यख्या कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

राधाकमल मुकर्जी का जन्म पश्चिमी बंगाल के बरहामपुर जिले के एक छोटे से कस्बे में एक बड़े ब्राह्मण परिवार में हुआ था। मुकर्जी की विशेष रुचि इतिहास के अध्ययन में थी, किन्तु प्रौढ़ शिक्षा के दौरान कलकत्ता की गंदी बस्तियों के सम्पर्क में आने और वहां के लोगों की दुर्दशा, गंदगी, अधःपतन और दुख–दरिद्रता को देख और अनुभव कर उनकी रुचि अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में जाग्रत हो गई और उन्होंने इन विषयों के साथ राजनीतिशास्त्र का भी अध्ययन कर एम.ए. की उपाधि सामाजिक विज्ञान में प्राप्त की। राधाकमल मुकर्जी की रुचि मानव समाज पर नैतिक मूल्यों के प्रभाव के सम्बन्ध में एक लम्बे समय से रही है। उन्होंने मूल्यों का गहन अध्ययन किया है और दो पुस्तकें 'मूल्यों की सामाजिक संरचना' (द सोश्यल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज, 1949) तथा मूल्यों के आयाम (द डाइमेन्सन्स ऑफ वैल्यूज, 1964) नाम से लिखी। मूल्य सम्बन्धी उनके विचार उनके अधिकांश लेखनों में प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप में दिखाई देते हैं। मुकर्जी ने मूल्यों की परिभाषा, उत्पत्ति, प्रकार, विशेषताओं और मानव जीवन में इनकी महत्ता का सविस्तार वर्णन–विश्लेषण किया है। मूल्यों के बारे में मुकर्जी ने विशेषतः दो मूलभूत मुद्दों पर ध्यान आकर्षित किया है।

प्रथम, उन्होंने यह कहा है कि मूल्य धर्म और राजनीतिशास्त्र तक सीमित नहीं है, अपितु अलग–अलग क्षेत्र के अलग–अलग मूल्य भी हैं, जैसे, आर्थिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, वैधानिक मूल्य, शैक्षिक मूल्य, नैतिक मूल्य, पारिस्थितिकी मूल्य, आदि। जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़े मूल्यों में आपस में एक प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होता है, परिणामस्वरूप समाज में संतुलन और व्यवस्था बनी रहती है। द्वितीय, मूल्य आत्मनिष्ठ अथवा व्यक्तिपरक आकांक्षाओं का परिणाम नहीं होते अपितु ये मूल्य हमारी आकांक्षाओं और इच्छाओं में समाविष्ठ होते हैं। दूसरे शब्दों में मूल्य सामान्य और वस्तुनिष्ठ दोनों होते हैं। राधाकमल मुकर्जी ने कहा था कि संस्थाएँ व्यक्तियों को दिखाई न देने वाली एकता का परिचायक हैं। समाज और मूल्यों के संदर्भ में भी यही कहा जा सकता है। सामाजिक तथ्यों का कोई भी विश्लेषण बिना मूल्यों की रचना के पूरा नहीं हो सकता। इसका प्रसार

आवश्यक है किसी भी स्वतंत्र समाज में मानवीय विकास समानता तथा सहयोग से ही संभव है। अंतविरोध और संघर्ष से ऐसा विकास संभव नहीं है।

13.2 व्यक्तित्व और समाज में मूल्य

अपनी पुस्तक 'पर्सनेलिटी' में राधाकमल मुकर्जी ने विचार व्यक्त किया है कि किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व वह है जो निर्णय करता है, अपनी रुचि के अनुसार कार्यों का विकल्प तैयार करता है और मूल्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। यह मूल्यों की पूर्ति का प्रयास निम्न प्रकार से करता है।

(1) अपने लिये (2) दूसरों के लिये और (3) सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये करता है।

कोई भी व्यक्ति दो प्रकार के प्रभावों से घिरा हुआ रहता है। पहला प्रकृति पर्यावरण का प्रभाव जैविक वाहक और आवश्यकताएँ। इसमें मनोवैज्ञानिक प्रवाहित आकांक्षाओं को भी जोड़ा जा सकता है। दूसरी ओर सामूहिकता के रूप में समाज भी उसके ऊपर दबाव डालता है। ये दोनों ही प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व की रचना पर प्रभाव डालते हैं। लेकिन ये तत्त्व निर्धारणवादी नहीं हैं। दोनों ही प्रकार के दबावों से अलग आत्मिक विकास की संभावनाएँ एक व्यक्ति के साथ जुड़ी हुई हैं व व्यक्ति अपने आपको भी पराकाष्ठा पर ले जा सकते हैं। मुकर्जी ने व्यक्ति को इस सन्दर्भ में उस क्षमता के रूप में परिभाषित किया है जो विभिन्न परिवेशों में अपने आपको संयोजित कर सके। ये परिवेश हैं–(1) जैवकीय (2) सामाजिक (3) आदर्शात्मक ब्रह्मांडीय तथा अनुभवातीत आधार ।

किसी जैवकीय और सामाजिक रचनाओं से ही किसी भी व्यक्ति का पर्यावरण निर्मित होता है लेकिन इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ भी इस ब्रह्मांडीय संपूर्णता का हिस्सा हैं। स्त्री अथवा पुरुषों की व्यक्तित्व रचना में सामाजिक परिप्रेक्ष्य भी है। लेकिन स्त्री और पुरुष यह भी चाहेंगे कि ब्रह्मांड में अपनी जगह बनाने के लिये वे अकेले भी अपने आपको रखें। सामाजिक दबावों से मुक्ति के ये ही प्रयास हैं जो उनको आध्यात्मिकता की ओर ले जाते हैं। समाज की संरचना और स्थित मूल्य व्यवस्था का कार्य ही यही है कि वह व्यक्तित्व का विकास करे। ये स्वतंत्र रूप से ही अपने वाहक हैं। राधाकमल के अनुसार समाज संरचनात्मक अकादमिक का योग है। अपने पर्यावरणीय आधारों को विकसित करने के लिये तीन पक्षों का समन्वय इसमें मदद करता है। ये पक्ष हैं–(1) पारिस्थितिकी (2)

सामाजिक–मनोवैज्ञानिकता (3) नैतिक समाज। ये सभी क्रमबद्ध तरीके से प्रस्थिति के स्थायित्व तथा मूल्यों की पूर्ति के लिये बहुत बड़ा सम्बन्ध प्रदान करते हैं।

13.3 मूल्य की अवधारणा

मूल्य समाज द्वारा निर्धारित इच्छाएँ अथवा लक्ष्य हैं जिनका अंतःकरणीकरण किया जाता है और उनको समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अथवा अनुकूलन के माध्यम से स्वीकार किया जाता है। मूल्य स्वचिन्तन, व्यक्तिगत वरीयताएँ स्तर और इच्छाएँ जाग्रत करते हैं। ये व्यक्तियों की एक निश्चित प्रतिमानों में अपनी इच्छाओं और लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हैं। आंतरिक तनावों, संघर्षों और इच्छाओं को पूरा करने के लिये यह उचित साधन हैं। उचित मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति समाज में समन्वयात्मक तथा सहयोग के आधार पर अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

मूल्य अवधारणात्मक इच्छाओं, लक्ष्य, विचारों और मानकों से परे हैं। कोई भी आदर्श लक्ष्यों के पारस्परिक संघर्षों और प्रयत्नों के बीच निर्मित होता है। परस्पर विरोधी विचारों के नियंत्रण वाहक मानक हैं। मुकर्जी ने मूल्यों को स्वीकारोक्ति के सन्दर्भ में सामाजिक और मानवीय संबंधों की विवेचना की है। समाज का संस्थागत ताना–बाना समाज में मूल्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता देता है। आधुनिक समाजों में एक बड़ी समस्या यही है कि एक ओर मानवीय स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित हो तो दूसरी ओर यह एकता सुदृढ़ता और समन्वयता पैदा कर सके। पश्चिम के समाज वैज्ञानिकों ने व्यक्ति के तात्विक व्यक्तित्व के रूप में विकसित होने की कल्पना की थी।

- पहली बात तो यही है कि पश्चिम का व्यक्ति मानवीय इच्छाओं और लक्ष्यों को अथवा अपनी प्राथमिकताओं को सामाजिक संस्थागत रचना और सांस्कृतिक संरचना से अलग करता है।

- समाज विज्ञानों ने अपनी तार्किकता में मूल्य संरचना के दृष्टिकोणों की अवहेलना की है। मूल्यों की यह व्यवस्था सहयोगात्मक और आन्तरिकता का प्रतीक है प्रतियोगितात्मकता एकपक्षीय नहीं सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में विकसित सांस्कृतिक व्यक्तित्व के यह उलट है।

- व्यक्तियों को अणु आधार और तार्किक व्यक्तित्व की धारणा उसे आनुभविक समाजशास्त्र और आचरणीय तात्विक आधारों के बीच अंतर

करा देती है। इन दोनों आधारों के बीच विरोधाभास यह आभास देता है कि मूल्यों का कोई अध्ययन वस्तुपरक नहीं हो सकता। मुकर्जी के अनुसार मूल्यों तथा ऐसे सत्य, जिन्हें लाया जा सकता है, के बीच अंतर है। यह झूठा अंतर भी है। समाज में मूल्य और उसके मूल्यांकन को माना जा सकता है और उसका सत्यापन किया जा सकता है। सामाजिक प्रक्रियाओं से इसका मापन संभव है। तीन प्रस्तावों से इसे समझा जा सकता है।

- पहले तो मूल्य मनुष्यों की इच्छाओं की पूर्ति तथा समन्वयता के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्थायी तथा निरंतर चलने वाली व्यवस्था सुनिश्चित प्रकार से लोगों की आकांक्षा और कामनाओं को पूरा करने का साधन है। इसका यह अर्थ है कि जब लोग एक–दूसरे के साथ आदान–प्रदान करते हैं तो स्वार्थी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ नहीं उभर पातीं।

- दूसरे मूल्यों का विस्तार होना संभव है। व्यक्ति, सामाजिक समर्थन और मनोवृत्तियाँ

- इस विस्तार को निर्धारित करती हैं। प्रतीकात्मक आधारों पर मूल्य सहभागी रूप में लोगों द्वारा स्वीकार कर लिये जाते हैं। इसी सहभागिता के कारण मूल्यों के प्रतीक भी बनते हैं। उदाहरण के लिये राष्ट्रीय ध्वज जो सारे राष्ट्र का प्रतीक है।

- तीसरे व्यक्तियों और सामाजिक विविधताओं के होते हुए भी सार्वभौमिक मूल्य निर्मित होते हैं जो सभी स्तरों पर प्रभावित करते हैं। व्यक्तियों और सांस्कृतिक संपूर्णता में ये मूल्य निहित होते हैं।

- सामाजिक समन्वयता में मूल्यों का चार स्तरों में विभाजन किया जा सकता है। भीड़ में जहाँ इच्छापूर्वक स्वतः अभिव्यक्ति जो चाहे निर्मम क्यों नहीं हो। उदाहरण के लिये व्यक्ति या किसी संस्था के प्रति विरोध प्रदर्शन ।

- आर्थिक हित समूह जो कुछ मूलभूत मूल्यों की पालना करते हैं। उदाहरणार्थ अवैयक्तिक प्रतियोगितात्मक तथा संघर्षात्मक के स्थान पर पारस्परिक आदान, प्रदान, समन्वयता एक दूसरे के प्रति सद्भावनात्मक विचारों के आधार पर प्राप्त की जाने वाली उपलब्धि समाज, समुदाय,

समानता और न्याय की अभिव्यक्ति है।

- सामान्यतः मूल्य स्वयं प्रभावी हैं और सामाजिक सहयोगिता पर निर्भर है। दुनिया की पुनर्रचना के लिये मूल्य आवश्यक है। मुकर्जी मूल्यों का विश्लेषण कई स्थितियों केसंदर्भ में करते हैं।

- मूल्यों के साथ अमूल्यों का भी साथ है। व्यक्तियों द्वारा समझ की पिछड़ और सामाजिक कमियाँ होने के कारण ही अमूल्य पैदा होते हैं। अमूल्य के दर्शन न केवल व्यक्तिगत विचलनों में, साथ ही संस्थागत विचलनों में भी देखे जा सकते हैं (अपराधी समूह आदि) मुकर्जी अमूल्यों के इलाज की बात करते हैं। वे विकसित होने वाले व्यक्तियों या समूहों को पुनः समन्वयित करने के समर्थक हैं।

- मुकर्जी अपनी रचना डायनामिक्स ऑफ मॉरल, और द डायमेंशन्स ऑफ ह्यूमन श्वैल्यूज में मुकर्जी ने मूल्यों को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में परीक्षित किया है। उन्होंने स्वार्थ के तत्त्वों के स्थान पर मनुष्य द्वारा सार्वभौमिक भ्रातृत्व के कथन को स्वीकारा है। वे मानते हैं कि इन तत्त्वों के माध्यम से ऐसा होना अपरिहार्य है। हिंसा और पारस्परिक मतभेदों की इस दुनिया में यह आकांक्षा होना स्वाभाविक है।

13.4 ज्ञान और मानवीय मूल्य

ज्ञान का उद्देश्य मनुष्य समाज प्रकृति का एकसूत्रीय संप्रत्यय प्राप्त करना है। राधाकमल मुकर्जी ने बिखरे हुए खंडित सामाजिक वैज्ञानिक ज्ञान को, तत्त्व दार्शनिक आधार पर, नये समायोजन में प्रेषित करना चाहा है। आखिर विभिन्न विज्ञानों से प्राप्त ज्ञान का मर्म क्या है? क्या यह विस्तृत ज्ञान मनुष्य को कोई संकुलित संप्रत्यय दे सकता है? क्या मनुष्य का नैतिक विकास (जैवकीय विकास से भिन्न) हो रहा है? इस विकासक्रम में प्रतीक निर्माण की क्या भूमिका होगी? इन प्रश्नों का समाधान मुकर्जी ने अपनी लगभग 40 कृतियों में किया है, जिसे कुछ पृष्ठों में समेट पाना कठिन है। ज्ञान वास्तव में, सम्पूर्णता का बोध है, और नैतिकता प्रतीकात्मक है। दोनों ही उद्विकसित हो रहे हैं। मुकर्जी आधुनिक अर्थ में, समाज वैज्ञानिक नहीं थे। भारत में समाज– विज्ञान के विकास के वे अग्रज रहे हैं। लेकिन उनके विचारों का महत्त्व समझते हुए कहा जा सकता है कि वे आधुनिक युग के ऐसे समाज विचारक हुए हैं जिनके विचारों का महत्त्व विश्वव्यापी है।

आज के समाज वैज्ञानिक की रचना में, कम्प्यूटर की तरह सब कुछ होता है, मगर स्वयं, समाजवैज्ञानिक कहा जाने वाला लेखक, अपनी ही रचना से, गायब होता है। मुकर्जी की रचनाओं को पढ़ने से लगता है कि विचारक, एक दार्शनिक, कवि, धीर–गम्भीर रहस्यवादी भक्त के समान, हमारे सामने उपस्थित है। मुकर्जी के पास आधुनिक संप्रत्यय के अनुसार कोई सजाया–सँवारा हुआ सिद्धान्त नहीं मिलता है। जो मिलता है, वह केवल एक दृष्टिप्रारूप मात्र है। अपने दृष्टि प्रारूप के प्रति वे सदा तर्कसंगत रहे। उनकी निरन्तर रचना प्रक्रिया को देख कर ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उनका समस्त जीवन प्रार्थना में समर्पित जीवन था। आज की दुनिया से लुप्त होती हुई इस जीवन शैली के प्रति हमारी श्रद्धा होनी ही चाहिए।

अपने दृष्टि प्रारूप के अनुरूप मुकर्जी ने सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण किया है। प्रकृति सामाजिक व्यक्ति संप्रेषण एवं संस्थाओं के अन्तर क्रिया का योग सामाजिक यथार्थ है। जैवकीय विज्ञान केवल जैवकीय विकास तक सीमित है। मनावैज्ञानिक विश्लेषण उत्तेजना प्रतिक्रिया और चेतना तक सीमित होते हैं। गणित तो यांत्रिक संरूप बना कर चुप हो जाता है। ये सभी विज्ञान अन्तिम मूल्यों को व्याख्या नहीं करते। मानवीय अनुभूति के अवशेषात्मक विश्लेषण होने के कारण सामाजिक विज्ञानों को कोई सामान्य प्राविधिकी भी नहीं है। सामाजिक यथार्थं अन्तरवैयक्तिक मूल्यों पर आधारित सम्बन्धों में होता है सामाजिक विज्ञान के वास्तविक आँकड़े मूल्यात्मक होते हैं। व्यक्ति मूल्य संस्था का अन्तरसम्बन्ध सम्प्रेषण द्वारा उत्पन्न होता है। अतः सम्प्रेषण ही सामाजिक यथार्थं का आधारतत्त्व है। सामाजिक विज्ञानों का कार्य सामाजिक यथार्थ में अन्तर्निहित प्रतीकात्मक प्रक्रिया को समझना है। सम्पूर्ण मानवीय परिवेश के तीन प्रमुख अंग है।

पहला, परिस्थितिकीय अंग है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भौतिक परिवेश से समायोजन स्थापित करता है।

दूसरा, मनोवैज्ञानिक सामाजिक अंग है जो व्यक्ति की प्रस्थिति भूमिका निर्धारित करता है। तीसरा, सोद्देश्यपूर्ण नैतिकता है जिसके अन्तर्गत मूल्यों को जीवन में व्यवहृत रूप दिया जाता है। सामाजिक यथार्थ के इस संप्रत्यय के अनुसार सामाजिक विज्ञानों की कार्यविधिकी के निम्नलिखित मूलाधार हैं।

(1) समूह में व्यक्ति को सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार समझना।

(2) सामाजिक प्रकार्य का विस्तृत अर्थं जिसमें मूल्य और अर्थबोध भी सम्मिलित हों।

(3) सामाजिक घटनाओं को तर्कसार्थक आदर्श प्रारूप के अनुसार विवेचित करना।

13.5 प्रतीक और मूल्य

मानवीय संस्कृति प्रतीकात्मक रूपान्तरण का परिणाम है जिसे समाज उचित समझता है वही मूल्य है। इस रूप में, मूल्य समाज के नियम, कानून, प्रथा, नीति, प्रतीक और संस्थाओं में व्याप्त होते हैं। सीखने के माध्यम से मूल्य (प्रतीक के रूप में) व्यक्तित्व का अंग बन जाते हैं। व्यक्ति और समाज को अन्तः क्रिया से मूल्यों को अनुभूति के मुकर्जी ने तीन स्तर बताये हैं। जो सामाजिक संगठन की मात्रा की कमी या अधिकता के अनुसार सामूहिक जीवन की विशेषताएँ बनती है। पहला, भीड़ में संगठन एवं एकता अस्थायी होती है। मूल्य केवल संवेगों को जगाने तक सीमित होते हैं। मूल्यों की मात्रा और गहनता केवल इतनी कम मात्रा में होती है कि भीड़ का संगठित रूप किसी तरह बना रहता है। दूसरा, हित–समूह में सहानुभूति और सहयोग की मात्रा अधिक होती है। संगठन अपेक्षाकृत स्थायी होता है और मूल्यों की मात्रा और अधिक गहन होती है। हित समूह में प्रत्येक व्यक्ति का हित एक दूसरे से जुड़ा हुआ होता है। अतः मूल्य भी कुछ अधिक संगठनकारी होते हैं। तीसरा, समुदाय या समाज में एकता और अधिक होती है। इससे विश्व समाज के स्तर पर मूल्यों का विस्तार सार्वलौकिक हो जाता है।

समूह की स्थिति के अनुसार व्यक्ति मूल्यों की अनुभूति उठाता है यह अनुभूति उद्विकासवान भी होती है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बना हुआ समूह धीरे–धीरे सामाजिक संस्था में बदल जाता है। पारिवारिक, राजनैतिक, औद्योगिक, न्यायिक संस्थाओं के आधार, मूल्य भी हुआ करते हैं। सामाजिक मूल्य संस्थाओं के माध्यम से प्रभावशाली होते हैं परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन आया करता है। संस्थानित दबाव के अन्तर्गत मूल्यों की अनुभूति नियन्त्रणकारी होती है। मूल्य जब व्यक्तियों के अन्तःकरण में समाहित हो जाते हैं तो वे फिर किसी समूह या संस्था पर नहीं निर्भर करते वे स्वायत्वपूर्ण हो जाते हैं। मूल्यों का अन्तःकरण का अंग हो जाना सार्वलौकिक अनुभूति है मूल्यों को आत्मसात् करके व्यक्ति अपने सीमित दायरे से बाहर निकलता है वह सामाजिक बन्धनों को भी पार कर जाता है। धर्म और कला के प्रतीकात्मक मूल्य व्यक्ति को अनेक सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर देते हैं और वह जिन मूल्यों को चाहता है उनकी पूर्ति में सृजनात्मक रूप से लग जाता है।

मुकर्जी के मतानुसार मूल्यों के माध्यम से व्यक्ति अपने परिवेश से समायोजन स्थापित करता है। पहला, जैवकीय और भौतिक स्तर दुसरा, प्रतीकात्मक स्तर है। मनुष्य में तर्क एवं बुद्धि की ऐसी क्षमता है कि वह प्रतीक निर्माण कर सकता है। यह क्षमता किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। मुकर्जी के अनुसार मूल्यों का स्रोत सांस्कृतिक होता है और मानव संस्कृति मनुष्य को प्रतीक निर्माण क्षमता से विकसित हुई है। प्रतीकों का निर्माण करना और अपने परिवेश की उन प्रतीकों के अनुसार रचने से संस्कृति विकसित हुई है। मनुष्य का व्यक्तित्व और आचरण भी प्रतीक का रूपान्तरण है। मनुष्य ने अमूर्तिकरण, कल्पना, भाषा, नैतिकता, धर्म, कला, दर्शन, और विज्ञान से जो कुछ रचा है वह इस संसार का प्रतीकात्मक आयाम है। इसके अतिरिक्त उसने अपने भौतिक परिवेश पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए जो भौतिक एवं उद्देश्यात्मक प्रयत्न किये हैं वे भी प्रतीकात्मक सृजन के अन्तर्गत आते हैं। मुकर्जी ने प्रतीकों की भूमिका में सम्प्रेषण के अतिरिक्त मर्मस्पर्शी सम्प्रेषण (Communion) को सम्मिलित किया है। अमूर्त और अभिव्यक्तात्मक प्रतीक से मर्मस्पर्शी सम्प्रेषण सम्भव होता है। प्रतीकों के इसी गुण पर उच्च कोटीय नैतिकता की आधारशिला रखी जा सकती है ।

13.6 मानवीय मूल्यों का उदविकास

मानवीय मूल्यों का विकासक्रम, मनुष्य–समाज–विराट (Cosmos) के अन्तर्सम्बन्ध की स्थापना करता है। मुकर्जी का विश्वास है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड या विराट उद्वविकसित हो रहा है जिसके साथ मानवीय स्वभाव और मूल्यों में भी अविरल उदविकास हो रहा है। मानवीय जीवन का आधार अवश्य जैवकीय है, परन्तु उदविकास के साथ मनुष्य में कल्पना, बुद्धि, तर्क प्रतीक–निर्माण की क्षमताएँ विकसित हो गयीं है। अपनी इन क्षमताओं के प्रयोग द्वारा जैवकीय उदविकास की सीमा से निकलकर मनुष्य नैतिक उद्विकास के आयाम में आ गया है। मुकर्जी का विश्वास है कि नैतिक उदविकास के इस आयाम में प्रवेश करने के लिए लोकातीत और मुक्त होने के गुण आवश्यक हैं। मानवीय स्वभाव और मूल्यों का उद्विकास मुक्त प्रक्रिया है जैसे–जैसे मनुष्य सार्वलौकिक मूल्यों को आत्मसात् करता जाता है वैसे–वैसे उसका उदविकास होता जाता है। मानवीय नैतिक विकास मूल्यों के श्रेणीक्रम पर आधारित है इस श्रेणीक्रम में मनुष्य, समाज, और नियमबद्ध जगत् तीनों में तादात्म्य स्थापित कर लेना सर्वोच्च मूल्य है। सीमित बन्धनों को पार करके मनुष्य को सम्पूर्ण मानव जाति एवं सम्पूर्ण नियमबद्ध ब्रह्माण्ड से अपना नाता जोड़ लेना नैतिक उदविकास का

'निहित उद्देश्य' है।

मानवीय उदविकास का क्रम जैवकीय मनोवैज्ञानिक स्तर से उठ कर नैतिकता के स्तर तक पहुँचा है। मनुष्य के उदविकास का लक्ष्य असीमित ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण से तादात्म्य स्थापित करना है। उदविकास की यह प्रक्रिया मुक्त है अर्थात् मनस, मूल्य और संस्कृति के विकास के साथ मनुष्य में नैतिक उदविकास की सर्वोच्च सम्भावना उत्पन्न हो गयी है। मुकर्जी के मतानुसार मनुष्य में अनेक अपरिभाषित सम्भावनाओं से सम्मजन करने की क्षमता है।

मानवीय मूल्य यद्यपि अनन्त होते हैं लेकिन उनका प्रकाशन अपरिवर्तनशील सामाजिक जगत में ही सम्भव है। उदविकास अविरल प्रक्रिया भी है उदविकास की प्रक्रिया में सोपानों का श्रेणीक्रम प्राकृतिक रूप से ही उनका प्रमाण बन गया है। नैतिक मूल्यों का एक पक्ष परा–अहं, अन्तःकरण और निष्ठा से सम्बन्धित होता है। परन्तु मनुष्य अपना सम्बन्ध, जैसे–जैसे अपने आपसे विस्तृत सामाजिक क्षेत्र से जोड़ता जाता है उसके मूल्य भी उद्वविकसित होने लगते हैं। सामाजिक संकुल और मूल्यों की श्रेणीक्रम स्थापित करते हुए मुकर्जी ने हित–समूह, समुदाय और सम्पूर्ण मानव समुदाय के तीन स्तर बताये हैं।

13.6.1 हित–समूह

भीड़ की अपेक्षा हित–समूह में स्थायित्व अधिक होता है। जैसे ट्रेड यूनियन, सीमित और राजनैतिक दल, हित–समूह के अच्छे उदाहरण है। व्यक्ति निजी हित बिना पारस्पर्य के पूरे नहीं हो सकते इसलिए सहयोग, सहानुभूति और दूसरों के हितों को ध्यान में रखने से न्यूनतम मूल्य उत्पन्न होते हैं। विभिन्न हित–समूह अपने सीमित हितों को पूर्ति के लिए सहयोग संघर्ष की प्रक्रिया में निकट या दूर आते रहते हैं इस समूह का मूल गुण व्यावहारिक बुद्धि है।

13.6.2 समुदाय

सामुदायिक संकुल या समाज के अन्तर्गत हित पूरे समुदाय के सहयोगात्मक जीवन से जुड़ जाते हैं जैसे हम सब एक हैं हमारे हित सामान्य हैं। इस प्रकार के सामाजिक संगठन में सामाजिक मूल्य हित–समूह की तुलना में अति व्यापक और गहन होते हैं। इस संगठन का मूलगुण निष्ठा है।

13.6.3 सम्पूर्ण मानव समाज

सम्पूर्ण मानव समाज की इकाई स्वीकार करके जब व्यक्ति उस सम्पूर्णतया से अपना तादात्म्य स्थापित करता है, तो मूल्य सार्वलौकिक हो जाते हैं। प्रेम, समानता, बन्धुत्व ऐसे सार्वलौकिक मूल्य हैं जिनका पालन व्यक्ति त्याग और तपस्या के साथ करता है। इस सामाजिक संकुल पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का मूल गुण 'श्रद्धा' है।

मुकर्जी का स्पष्ट कथन है कि मनुष्य के नैतिक मूल्यों का उदविकास हित समूह के माध्यम से आदर्श समाज या संसार के मुक्त समाज को ओर हो रहा है। उदविकास की इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए मुकर्जी ने बताया है कि व्यक्ति मूल्य और परम्परा के स्तरों पर पक्ष (Thesis) प्रतिपक्ष (Anti-thesis) में जो द्वन्द्व होता है उससे सत्य का संश्लेषित रूप (Synthesis) सामने आता है।

13.7 मानवीय सामाजिक उदविकास का द्वन्द्वात्मक उदविकास

मुकर्जी ने हिंगेल के द्वन्द्वात्मक विकास के सिद्धान्त को स्वीकारते हुए लिखा है कि विपरीतता के संघर्ष से उत्पन्न संश्लेषण नैतिकता विहीन नहीं है। ऐतिहासिक विकास मूलतः एक नैतिक प्रक्रिया है। व्यक्ति स्तर पर जब अहं केन्द्रित और आत्म–अतिविस्तृत प्रवृत्तियों का द्वन्द्व होता है तो उससे पूर्ण संगठित 'स्व' का निर्माण होता है। मूल्यों के स्तर पर दो विपरीत प्रवृतियों के द्वन्द्व से जो कि प्रवृत्ति (ब्रह्माण्डीय नियमों) के अनुरूप हैं मूल्यों का स्वाभाविक गुण विकसित होता है। मुकर्जी का मत है कि सम्पूर्ण सृष्टि में उदविकासीय प्रवृत्ति उदित होती है अतः वही प्रवृत्ति मूल्यों को भी प्राकृतिक स्वरूप प्रदान करती है। परम्परा के स्तर पर होने वाले द्वन्द्व से अनेक संस्कृतियों के उदविकासीय स्वरूप सामने आते हैं। संस्कृतियाँ मुक्त होकर मुखरित हो रही है जो आगे चलकर विश्वसंस्कृति की एकता में परिणत होंगी।

विश्व आत्मा का बोध ही मूल्यों के विकास का अन्तिम लक्ष्य है। जिस तरह नदी सागर में मिल जाती है उसी तरह प्रक्रिया यथार्थ (या सत्य) में परिणत हो जाती है। इसी तथ्य को समझ लेना विश्व आत्मा बोध जागृत होना है। मनुष्य के ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य यही समझना है। एक में अनेक तथा अनेक में एक निहित है। मानवीय मूल्यों के उदविकास का लक्ष्य विश्व–आत्मा तक पहुँचना है। बीसवीं शताब्दी में सामाजिक प्रभाव के संप्रत्यय को इतना महत्व दिया जा रहा है कि समाज के समक्ष व्यक्ति का महत्त्व या उसका दायित्व बोध ही धूमिल पड़ गया है। आज की दुनिया में आर्थिक व्यक्ति, भीड़ का व्यक्ति,

'संगठित व्यक्ति' जैसे संप्रत्यय प्रचलित हैं।

मुकर्जी ने उदविकास के सन्दर्भ में, विश्व मानव या विश्व आत्मा' का संप्रत्यय प्रस्तावित किया है। पुनःशिक्षा द्वारा भीड़ का व्यक्ति विश्व मानव में परिणत किया जा सकता है। यह नैतिक उद्विकास दो प्रकार से सम्भव है। पहला, सामाजिक संकुल के विकास क्रम के अनुसार भीड़, हित–समूह समुदाय और विश्व–समाज के नैतिक मूल्य सीमित से सार्वलौकिक होते जाते हैं। दूसरा, श्रम या प्रकार्य के आधार पर समाज के संस्तरण में कुछ भूमिकायें प्राकृतिक रूप से श्रेष्ठतम होती हैं। भारतीय वर्ण–व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान उसके त्याग और पथ प्रदर्शक भूमिका के कारण श्रेष्ठ माना गया है। प्लेटो ने दार्शनिक शासकों को श्रेष्ठ बताया है वे लोग निर्वाण प्राप्त होते हैं। मुकर्जी के अनुसार जीवनमुक्ति तथा बोधसत्य के संप्रत्यय से विश्व–आत्मा बोध के मूल्यों को भूमिका में साकार कर लेने से सामाजिक श्रेणीक्रम बनता है। अगर सभी लोग विश्वसमाज के मूल्यों को अपने जीवन में साकार कर लें तो नया उदविकसित समाज उत्पन्न हो जायेगा।

मुकर्जी का उदविकास सम्बन्धी मत समाज को नये श्रेष्ठतम मूल्यों के आधार पर पुर्नसंगठित करने की सम्भावना प्रेषित करता है। अपने जीवनकाल के अन्तिम समय की पुस्तक कम्युनिटी आफ कम्युनिटीज (1966) में मुखर्जी ने ऐसे समुदाय की कल्पना की है जो समुदायों का समुदाय होगा अर्थात् ऐसा समुदाय जो मनुष्य समाज ब्रह्माण्ड को एक सूत्र में संकलित करेगा। मानव सभ्यता का यह बिन्दु उदविकास का परिणाम होगा ।

13.8 सारांश

अपने जीवन के अंतिम दिनों में मुकर्जी ने समाजशास्त्र के लिये आनुभविक तथा मानकीय पद्धतियों का समर्थन किया था। संभवतः इससे मानवीय व्यवहार लक्ष्यों, मूल्यों, साधनों और तकनीकों का विशद् ज्ञान प्राप्त हो सके। इस विश्लेषण के आधार पर स्त्रोतों तथा साधनों का ज्ञान भी हो सकेगा जो अपेक्षित है। उनकी अंतिम रचनाएँ श्रेष्ठता की श्रेणी में आती हैं। भारतीय समाजशास्त्र के वे जनकों में से एक थे। उन्होंने भारतीय समाजशास्त्र की नींव रखने के लिये तर्क दिये, प्रस्ताव दिये तथा समाजशास्त्र को स्वयं को कैसे विकसित करना चाहिये। इस पर विचार व्यक्त करते हुये राधाकमल मुकर्जी ने वास्तविक सामाजिक जीवन में संघर्ष की भूमिका क्या है इसको प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने व्यक्ति से व्यक्ति के बीच एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र के बीच,

विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न समूहों के बीच एकता के अध्ययनों पर अधिक जोर दिया। समझ के मूल्य, अंतःक्रिया के मूल्य, समुदायों के लिये मनुष्य के उत्तरदायित्व और पारिस्थितिकी को बचाने के लिये मानवीय उत्तरदायित्व पर प्रस्तुत उनकी विवेचनाएँ समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। भारतीय समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र के लिये बौद्धिक स्वातंत्र्य विज्ञान की प्रगति तथा ज्ञान प्राप्ति के लिये साधना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, ऐसा समाजशास्त्र के आदि विद्वानों ने सोचा था। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि 1950 के बाद अपने परिप्रेक्ष्य तथा विश्वास होते हुए वैकल्पिक समझ के आधारों का जन्म हुआ था।

13.9 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 राधाकमल मुकर्जी का व्यक्तित्व एवं समाज में मूल्य की अवधारणा की व्यख्या कीजिए।

प्र. 2 राधाकमल मुकर्जी के ज्ञान और मानवीय मूल्य तथा प्रतीक और मूल्य का मूल्यांकन कीजिए ।

प्र. 3 राधाकमल मुकर्जी के मानवीय मूल्यों का उदविकास तथा मानवीय सामाजिक में द्वन्द्वात्मक उदविकास की व्याख्या कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 व्यक्तित्व समाज और मूल्य की अवधारणा से सम्बंधित है?

(अ) श्रीनिवास (ब) राधाकमल मुकर्जी (स) मैकाइवर (द) योगेन्द्र सिंह

प्र. 2 द सोश्यल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज किसकी कृति है?

(अ) राधाकमल मुकर्जी (ब) थामस कुहन (स) फ्रायड (द) गिडेंस

प्र. 3 द डाइमेन्सन्स ऑफ वैल्यूज किसकी कृति है?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) बर्जर (स) राधाकमल मुकर्जी (द) पार्सन्स

प्र. 4 इनमे से कौन मानवीय मूल्यों का उदविकास के अध्ययन के लिए जाने जाते है?

(अ) बर्जर (ब) योगेश अटल (स) राधाकमल मुकर्जी (द) कोई नही

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (स)

प्र. 4 (स)

संदर्भ सूची

1. Ayyar, P.V. Jagadisa, 1920. South Indian Shrines, Madras : The Madras Times.

2. Baird, R. D. (ed.) 2001. Religion in Modern India, New Delhi : Manohar Publishers.

3. Bayly, Susan, 1989. Saints, Goddesses and Kings. Muslims and Christians in South India, Cambridge : Cambridge University Press.

4. Chatterjee, Margaret, 1983. Gandhi's Religious Thought, Notre Dame, University of Notre Dame Press.

5. Copley. A. 1999. Religion in Conflict, New Delhi : Oxford university Press.

6. D'Souza. L. 2005. The Sociology of Religion: A Historical Review, Jaipur : Rawat Publications.

7. Debiprasad, Bhattacharya, 1969. Indian Atheism : A Marxist Approach, New Delhi : People's Publishing House.

8. Dube, S. C. and V. N. Basilov (eds.) 1983. Secularization in Multi Religious Societies, New Delhi : Concept.

9. Dundas, Paul, 1992. The Jains, London : Routledge.

इकाई 14 : महात्मा गाँधी का धर्म पर योगदान

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 धर्म पर गाँधी के विचार

14.3 धर्म का अर्थ

14.4 मेरा धर्म

14.5 धर्म और राजनीति

14.6 भौतिक बल एवं नैतिकता

14.7 धर्म का वैविध्य

14.8 बुनियादी एकता

14.9 धर्म ग्रंथ

14.9.1 धार्मिक शिक्षा

14.10 सारांश

14.11 बोध प्रश्न

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित ज्ञान से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप महात्मा गाँधी के धर्म पर विचार एवं गाँधी द्वारा दिए गये धर्म के अर्थ की व्यख्या कर सकेंगे।

- महात्मा गाँधी के धर्म और राजनीति तथा भौतिक बल एवं नैतिकता के संदर्भ में धर्म की व्यख्या कर सकेंगे।

- महात्मा गाँधी के धर्म का वैविध्य स्वरूप बुनियादी एकता तथा धार्मिक शिक्षा की व्यख्या कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

जब हम गांधीजी द्वारा अपनाए गए धर्म की बात करते हैं तो पता चलता है कि गांधीजी का धर्म केवल मंदिर, मस्जिद या गुरुद्वारे में पूजा करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नैतिकता और मानवता पर आधारित है। अपनी आत्मकथा में गांधीजी स्पष्ट करते हैं कि धर्म के बिना राज्य व्यवस्था की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस संदर्भमें जब उनसे एक पत्रकार ने पूछा, आप विभिन्न धर्मों के देश में एक आम राजनीतिक रणनीति का सपना कैसे देखेंगे? उन्होंने उत्तर दिया, यह निश्चित है, वह धर्म के बिना राजनीति के बारे में सोचते भी नहीं हैं। वास्तव में धर्म हमारे काम करने का तरीका और माध्यम बना रहना चाहिए, लेकिन रिलिजन शब्द को लेकर बहुत सावधान रहना चाहिए। यह अतिवादी विचारधाराओं का उल्लेख नहीं करता है; इसका अर्थ है एक विशेष नैतिक प्रणाली में विश्वास। यह अमूर्त है कि इसके महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह हिंदू, इस्लाम या सिख धर्मों से मीलों दूर है। यह इन धर्मों को जड़ से उखाड़ने के लिए नहीं है, बल्कि उनके बीच सामान्य न्यूनतम सह–संबंधों को खोजने और इसे एक वास्तविक धर्म बनाने के लिए है। गाँधी राजनीति में धर्म के कार्यान्वयन को महसूस करते हैं क्योंकि उनके लिए धर्म केवल व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन तक ही सीमित नहीं है। वह सोचते है कि किसी के सामाजिक और बहु–नैतिक जीवन में धर्म की अनिवार्यता है क्योंकि यह व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में भी महत्वपूर्ण है।

14.2 धर्म पर गाँधी के विचार

धर्म गांधी के जीवन, विचार कार्य का केंद्र था और उन्होंने राजनीति को व्यवहारिक धर्म माना। हालाँकि, उनके धार्मिक विचार जटिल थे और उनके लेखन सभी अवसरों पर भिन्न थे। धर्म पर उनके विचार परिवर्तन के अधीन थे। इस प्रथम स्थान पर वे स्वयं को हिन्दू मानते थे। 1927 में यंग इंडिया में लिखते हुए उन्होंने कहा, हिंदू धर्म सभी धर्मों में सबसे अधिक सहिष्णु था। हठधर्मिता से इसकी आजादी ने आत्म–अभिव्यक्ति के लिए सबसे बड़ा मौका दिया। इसने अनुयायियों को न केवल अन्य सभी धर्मों का सम्मान करने के लिए सक्षम बनाया, बल्कि दूसरे के विश्वास में जो कुछ भी अच्छा हो सकता है उसे आत्मसात करने की प्रशंसा की। अहिंसा सभी धर्मों के लिए सामान्य है लेकिन

इसे हिंदू धर्म में उच्चतम अभिव्यक्ति और अनुप्रयोग मिला है। हिंदू धर्म एकता में विश्वास करता है। इस मत की उद्घोषणा में रक्षात्मकता का नामोनिशान नहीं था और इसके साथ–साथ अन्य सभी धर्मों के सत्य को गहराई से स्वीकार किया गया। उन्हें हिंदू धर्म पर गर्व था लेकिन इसने उन्हें धर्मनिरपेक्ष औचित्य, विचारों और विश्वासों को अस्वीकार करने और उनकी आलोचना करने से नहीं रोका जिन्हें हिंदू अपने धर्म का हिस्सा मानते हैं।

उन्होंने न केवल अस्पृश्यता को खारिज किया बल्कि जीवन भर इसके खिलाफ संघर्ष किया। वह देवताओं के लिए रक्त बलिदान का विरोध करते थे। दरअसल उन्होंने जानवरों के प्रति हर तरह की क्रूरता का विरोध किया। उन्होंने फुकों की भी आलोचना की, जिसके द्वारा किसान बैलों के संप्रदाय में एक छड़ी पर कील ठोंक देते थे ताकि वे तेजी से आगे बढ़ सकें। उन्होंने गाय–भैंस का दूध पीना छोड़ दिया। 1918 में एक गंभीर बीमारी के दौरान ही कस्तूरबा ने उन्हें अपनी जान बचाने के लिए बकरी का दूध पीने के लिए मनाया। यहां तक कि उन्होंने इसका विरोध भी किया लेकिन अपना काम पूरा करने के लिए उन्होंने इसे पीना छोड़ दिया। उन्होंने दया की हिंदू–जैन अवधारणा को खारिज कर दिया जो एक जानवर को मारने तक ही सीमित था। उन्होंने एक बार गाय की हत्या का महान हिंदू पाप किया, एक बछड़े को गोली मारकर उसकी पीड़ा को समाप्त करने के लिए उसकी परिक्रमा की। जानवरों के प्रति दया की उनकी अवधारणा बहुत पश्चिमी और आधुनिक थी। उनके पास विस्तृत अनुष्ठानों और पूजा के लिए समय नहीं था और उन्होंने कभी ज्योतिषियों से सलाह नहीं ली। वह एक वास्तविक कर्मयोगी थे, उन्होंने व्यापक रूप से फैली बाल विवाह, दहेज प्रथा और विधवाओं के मानव व्यवहार की निंदा की।

1918 में गांधी लैंगिक समानता के लिए खड़े हुए उन्होंने घोषणा की, ''महिला समान मानसिक क्षमताओं वाली साथी है और उसे स्वतंत्रता और समानता का समान अधिकार है।'' वह चाहते थे कि उन्हें पुरुषों के बराबर कानूनी दर्जा मिले। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि 'रस्किन', 'टॉलस्टॉय' और 'थोरो' और बाइबिल और गीता सभी ने गांधी को प्रभावित किया। टॉल्स्टॉय से, उन्होंने संगठित धर्म के लिए अपने आलोचनात्मक दृष्टिकोण और रस्किन से, एक साधारण जीवन के आदर्श को प्राप्त किया।

जब उन्होंने किसी विचार को अच्छा समझा तो उसे व्यवहार में लाने का प्रयास किया लेकिन यहाँ भी, हालांकि, आदर्शवादी विचार को व्यवहार में लाते हुए, गांधी ने सामाजिक वास्तविकता की अपनी भावना को नहीं छोड़ा। उन्होंने

'प्रैक्सिस' को एक विचार के आवश्यक समापन के रूप में देखा। जब वे इंग्लैंड में कानून के छात्र थे तब उन्होंने 'बाइबिल' पढ़ी थी, 'मसीह' और पर्वत पर सेमन का जीवन सीधे उनके दिल में उतर गया था। घृणा के लिए और बुराई के बदले भलाई करने के विचार ने गांधी को मोहित कर लिया। गीता का भी उन पर बहुत प्रभाव पड़ा, विशेष रूप से, 'अपरिग्रान' (गैर–आधिपत्य) और 'समभाव' समानता के विचार। उन्होंने सभी कानूनी प्रथाओं को छोड़ दिया और यह सुनिश्चित किया कि कस्तूरबा उनके साथ 'अपरिग्रह' स्वीकार करें, और उन्हें अन्य मूल्यवान सोने के हार को त्यागने के लिए राजी किया।

गांधी गीता को अपनी माँ के दूध के रूप में मानते थे, लेकिन अजीब लग सकता है, उन्होंने इसमें अहिंसा का समर्थन पाया। गांधी के अनुसार, ''महाभारत ने हिंसा की निरर्थकता का प्रदर्शन किया था।'' उन्होंने 1929 में अपने गुजराती युद्ध के एक परिचय में लिखा था, ''इसे दिया जाए फल के त्याग के अनुरूप है और अन्य बाद में, उन्होंने महसूस किया कि हर आकार और रूप में 'अहिंसा' के पूर्ण पालन से पूर्ण त्याग असंभव है। गांधी ने न केवल गीता में बल्कि बाइबिल और इस कुरान में अहिंसा की खोज की। गांधी के अनुसार, कुरान में ''अहिंसा को कर्तव्य, हिंसा और आवश्यकता के रूप में अनुमति दी गई है, बाइबिल और कुरान के उनके अध्ययन ने उन्हें इस दृढ़ विश्वास के लिए प्रेरित किया कि सभी संबंधों में एक अंतर्निहित एकता थी। वह समय बीत चुका था जब एक धर्म के अनुयायी खड़े हो सकते थे और कह सकते थे हमारा ही एकमात्र सच्चा धर्म है और बाकी सभी झूठे हैं। गांधी के लिए भगवान, अल्लाह, राम, नारायण, ईश्वर, खुदा, एक ही अस्तित्व के विवरण थे। उन्होंने एक धर्म से दूसरे धर्म में धर्मांतरण के विचार को खारिज कर दिया।

14.3 धर्म का अर्थ

गाँधी कहते है धर्म से मेरा आशय हिंदू धर्म नहीं है, यद्यपि मै इसे सभी धर्मों से अधिक आदर देता हूँ, बल्कि वह धर्म है जो हिंदुत्व से भी परे है, जो मनुष्य की प्रकृति को ही बदल देता है, जो हमें अपने भीतर के सत्य के साथ तदाकार कर देता है और निरंतर हमारा पवित्रीकरण करता रहता है। यह मानव प्रकृति का स्थायी तत्व है जो पूर्ण अभिव्यक्ति पाने के लिए कोई भी त्याग करने को तत्पर रहता है और जो आत्मसिद्धि की प्राप्ति तथा अपने सृष्टा के बोध और सृष्टा तथा अपने बीच सच्ची अनुरूपता की पहचान होने तक आत्मा को बेचैन रखता है। धर्म से मेरा आशय औपचारिक धर्म या प्रथागत धर्म से नहीं है बल्कि उस धर्म से है जो सभी धर्मों का मूल है और जो हमारे सृष्टा से हमारा साक्षात

कराता है।

14.4 मेरा धर्म

गाँधी कहते है मेरे धर्म की कोई भौगोलिक सीमाएं नहीं हैं। यदि मेरी उसमें जीवित आस्था है तो वह मेरे भारत प्रेम से भी आगे बढ़ जाएगा। मेरा धर्म कारागृह का धर्म नहीं है इसमें ईश्वर के दीन–से दीन प्राणियों के लिए स्थान है। लेकिन यह उद्धतता, और जाति, धर्म तथा रंग के गर्व को सहन नहीं करता। मेरा यह कथन निस्संदेह एक अर्थ में सही है कि मैं अपने धर्म को अपने देश से ज्यादा प्यार करता हूं और इसलिए में हिंदू पहले हूं और राष्ट्रभक्त बाद में। इससे में अच्छे से अच्छे राष्ट्रभक्त से कम राष्ट्रभक्त नहीं बन जाता मेरा आशय केवल यह है कि मेरे देश के हित और मेरे धर्म के हित एक ही हैं। इसी प्रकार जब मैं कहता हूं कि में अपनी मुक्ति को सर्वाधिक यहां तक कि भारत की मुक्ति से भी अधिक महत्व देता हूं तो इसका आशय यह नहीं होता कि मेरी निजी मुक्ति के लिए भारत की राजनीतिक अथवा किसी अन्य प्रकार की मुक्ति की बलि देनी होगी। इसका अनिवार्य आशय यह होता है कि दोनों सहगामी हैं।

जीवन का जो सिद्धांत–सूत्र मैंने स्वीकार किया है वह यह है कि किसी आदमी द्वारा वह चाहे जितना बड़ा हो या किया गया कोई काम तब तक नहीं फलेगा फूलेगा जब तक कि वह आदमी वृत्ति से धार्मिक न हो। मुझे अपने काम के और मानवता के प्रति भरपूर आस्था है। भारतीय मानवता किसी से हीन नहीं है संभवतः श्रेष्ठ ही है। वस्तुतः मेरे काम के लिए मानव प्रकृति में आस्था होना अनिवार्य है। यद्यपि मार्ग अंधकारमय दिखाई देता है पर यदि मुझे ईश्वर के मार्गदर्शन में आस्था है और उसके अचूक मार्गदर्शन के बिना अपनी विवशता को स्वीकार करने की विनम्रता है तो वह मेरे मार्ग को आलोकित करेगा और मुझे रास्ता दिखाएगा।

कोई इसे मात्र काल्पनिक कह सकता है पर मेरा पक्का विश्वास है कि यदि मनुष्य कोई काम ईश्वर के नाम पर और उसमें पूरी आस्था रखते हुए करता है तो भले ही वह उसके जीवन के अंतिम दिनों में किया गया हो वह कभी व्यर्थ नहीं जाता मै यह बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि मैंने जो काम हाथ में लिया है वह मेरा नहीं ईश्वर का है। यही धर्म है जिसका आदेश पवित्र पुस्तकों में मिलता है जिसका अनुगमन मनीषियों ने किया है जिसकी व्याख्या विद्वानों ने की है और जो हृदय को रुचिकर है। तीन शर्तें हैं जो पहले पूरी होनी चाहिए चौथी उनके बाद अमल में आती है। व्यक्ति को अज्ञानी अथवा दुष्ट

के उपदेशों का अनुसरण करने का अधिकार नहीं है भले ही वे उपदेश उसे अच्छे लगते हों। जो व्यक्ति अनुपकार अद्वेष और त्याग की तीन शर्तों का कठोरता से पालन करता हो वही नियम अर्थात धर्म के निर्धारण का अधिकारी है।

14.5 धर्म और राजनीति

यह आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि धर्म को राजनीति में शामिल नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इसके अवांछित परिणाम होते हैं, विशेष रूप से भारत जैसे देश में इन परिणामों को अनजाने में देखा गया है। वर्तमान परिदृश्य में डर यह है कि यदि धर्म को राजनीति में भाग दिया गया तो चरमपंथी विचारधारा और विनाशकारी सिद्धांत अंतिम विनाश का कारण बन सकते हैं और वे इस तरह के राजनीतिक पदानुक्रम में और भी बेहतर ढंग से फल–फूल सकते हैं। लेकिन फिर भी गांधीजी राजव्यवस्था और धर्मों के मिश्रण का सख्ती से पालन करने में विश्वास करते हैं, यह काफी अपरिहार्य है। उन्होंने इसे उतना ही महत्वपूर्ण मान लिया है, जितना कि शरीर में आत्मा। उन्होंने कहा कि धर्म के बिना राजनीति एक भ्रष्ट आत्मा के समान है। जैसे किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन के अन्य कार्य बुरे या अच्छे धार्मिक सिद्धांतों से प्रभावित और संचालित होते हैं। महात्मा होने के साथ–साथ गांधीजी एक अच्छे राजनीतिज्ञ भी थे। वे कहते थे कि केवल धर्म ही नहीं, बल्कि उसके तमाम बुरे फलों के बदले राजनीति भी जीवन में अनिवार्य है। उन्होंने कहा कि यदि लोग उन्हें सक्रिय राजनीति में देख पाते हैं तो इसका कारण यह है कि वर्तमान स्थिति में राजनीति उनके चारों ओर मजबूती से लिपटी हुई है जिससे स्वयं को मुक्त करना बड़ी कोशिशों से भी असंभव है।

गाँधी कहते है कि हमारी विचारधाराएँ स्वार्थी, विलासी या स्व–प्राप्त परिणामोन्मुख नहीं होनी चाहिए, बल्कि सभी अधिकारों का अभ्यास बिना किसी स्वार्थ के बलिदान के साथ सामान्य कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। स्वार्थपरक परिणामों से किया गया कार्य भौतिक–सामाजिक परिधि में विषमताएँ पैदा करता है जो अनैतिक सामाजिक सिद्धांतों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। लेकिन यदि इच्छा से किया गया कार्य और वह भी अधिकारों और उत्तरदायित्वों के लिए, तो इच्छा या अनिच्छा का कोई सवाल ही नहीं उठता। यह व्यापक और समावेशी सिद्धांतों को जन्म देता है। इस प्रकार धर्म आधारित राजनीति स्वयं की राजनीति है और वह अपने आप को इस तरह से संचालित करता है कि

पड़ोसी राष्ट्रों के लिए कभी कोई खतरा पैदा न हो, ऐसी राजनीतिक नैतिक सरकारों में कोई भी स्वार्थी उद्देश्यों के लिए काम नहीं करता है। मानवता और नैतिकता ही धर्म आधारित राष्ट्र का आधार बनती है। जनता और स्वयं सरकार बन जाती है, यहाँ हम गांधीजी के युद्ध मुक्त स्वशासन को प्राप्त करते हैं

14.6 भौतिक बल एवं नैतिकता

गाँधी कहते है कि मुझे पक्का विश्वास है कि पाशविक बल के सहारे कोई धर्म जीवित नहीं रखा जा सकता। बल्कि जो तलवार का सहारा लेते हैं तलवार उन्हें ही मार देती है। राष्ट्रों की तरह धर्म भी तुला पर रखे हैं। जो धर्म और जो राष्ट्र अन्याय, असत्य अथवा हिंसा का सहारा लेकर चलेगा उसका नामोनिशान दुनिया से मिट जाएगा।

गाँधी के लिए नैतिकता में आध्यात्मिक समाविष्ट है सुधारक के रूप में गाँधी ने हर वस्तु को नैतिक दृष्टि से देखा है। चाहे वह किसी राजनीतिक समस्या से जूझ रहा है अथवा सामाजिक या आर्थिक समस्या से, उसका नैतिक पक्ष सदैव प्रबल होकर उसके सामने आता है और उसके संपूर्ण दृष्टिकोण पर छा जाता है। सभी युगों के लिए वैध निरपेक्ष नैतिकता जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन एक सापेक्ष नैतिकता जरूर है जो हम जैसे अपूर्ण मानवों के लिए निरपेक्ष जैसी ही है। तदनुसार, दवा के तौर पर, दवा की खुराक के बराबर मात्रा में, और डाक्टर के निर्देशानुसार किए जाने वाले मद्यसेवन को छोड़कर मद्य का पान निरपेक्ष रूप से अनैतिक है। इसी प्रकार अपनी पत्नी के अलावा किसी अन्य स्त्री को कामुक दृष्टि से देखना भी बिलकुल गलत है। ये दोनों ही बातें शुद्ध तर्क से सिद्ध की जा चुकी हैं। इनके जवाबी तर्क भी हमेशा दिए गए हैं। पर ये तो ईश्वर, जो ब्रह्मांड का स्वामी है, के विरुद्ध भी दिए गए हैं। तर्कातीत आस्था ही युगों से हमारा अवलंब रही है मेरी आस्था ने ही मुझे कठिन परिस्थितियों में फंसने से बचाया है और अब भी बचा रही है। उसने मुझे कभी धोखा नहीं दिया है। इसने कभी किसी को धोखा नहीं दिया है।

14.7 धर्म का वैविध्य

गाँधी कहते है सच पूछा जाए तो जितने व्यक्ति हैं उतने ही धर्म हैं। धर्म एक ही बिंदु पर पहुंचने वाले भिन्न–भिन्न मार्ग है। यदि गंतव्य एक ही है तो इससे क्या फर्क पड़ता है यदि हम वहां तक पहुंचने के लिए अलग–अलग मार्ग अपनाये? मैं इस धारणा से सहमत नहीं हूं कि संसार में एक ही धर्म हो सकता

है अथवा होगा। इसलिए में उनमें समानता के सूत्र को पकड़ने और परस्पर सहिष्णुता का विकास करने के लिए प्रयासरत हूं।

14.8 बुनियादी एकता

इस सम्बन्ध में गाँधी का मानना है कि सभी धर्मों की आत्मा एक है पर उनके रूप अनेक हैं। ये रूप अनंत काल तक रहेंगे। बुद्धिमान लोग बाहरी सतह की चिंता न करते हुए (धर्मों के) विविध रूपों के भीतर एक ही आत्मा को निवास करता पाएंगे मैं समझता हूँ कि विश्व के सभी महान धर्म लगभग सच्चे हैं। लगभग इसलिए कहता हूं कि मेरा विश्वास है कि मानव चूंकि अपूर्ण है इसलिए वह जिस चीज़ को भी हाथ लगाएगा वह अपूर्ण हो जाएगी। पूर्णता केवल ईश्वर का गुण है, और यह अवर्णनीय है, अननुवाद्य है। मैं यह जरूर मानता हूं कि प्रत्येक मनुष्य के लिए ईश्वर के समान पूर्ण बनना संभव है हम सबके लिए उस पूर्णता की कामना करना आवश्यक है, लेकिन जब उस स्थिति की प्राप्ति होती है तो वह अवर्णनीय और अपरिभाषेय हो जाती है। इसलिए मै पूरी विनम्रता के साथ यह स्वीकार करता हूं कि वेद, कुरान और बाइबिल भी ईश्वर की अपूर्ण वाणियां हैं, और अनेक मनोवेगों के शिकार हम अपूर्ण मानवों के लिए इन ईश्वरीय वाणियों को भी पूरी तरह समझना असंभव है।

मैं चाहूंगा कि विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग केवल भारत ही नहीं बल्कि दुनिया भर के एक–दूसरे के संपर्क में आकर बेहतर मनुष्य बनें यदि ऐसा हो सके तो दुनिया वर्तमान की अपेक्षा कहीं बेहतर रहने की जगह हो जाएगी। मै अधिकतम सहिष्णुता का हिमायती हूं और उसी के लिए प्रयासरत हूँ। में लोगों से कहता हूं कि वे प्रत्येक धर्म को स्वयं धार्मिकों की दृष्टि से परखें। मै ऐसी आशा नहीं करता कि मेरे सपनों के भारत में एक ही धर्म पूर्णतः हिंदू या ईसाई या इस्लाम का विकास होगा। में तो चाहता हूं कि भारत पूर्णतः सहिष्णु बने जिसमें उसके सभी धर्म साथ–साथ चलें। भक्तिमय अनुसंधान और अध्ययन तथा अधिकाधिक व्यक्तियों से चर्चा के उपरांत मै बहुत पहले ही इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि सभी धर्म सच्चे हैं और सभी में कुछ–कुछ त्रुटियां भी हैं, और स्वधर्म पर आरूढ़ रहते हुए मुझे अन्य धर्मों से भी हिंदू धर्म के समान ही प्रेम करना चाहिए। इसी से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें सबसे अपने बंधु–बांधवों के समान प्रेम करना चाहिए और उनके बीच कोई फर्क नहीं करना चाहिए।

एक ईश्वर में विश्वास सभी धर्मों की आधारशिला है। लेकिन में ऐसे समय की कल्पना नहीं कर पाता जब दुनिया में व्यवहारतः एक ही धर्म रह

जाएगा। सिद्धांततः चूंकि ईश्वर एक है, इसलिए धर्म भी एक ही होना चाहिए। लेकिन व्यवहार में, मुझे आज तक दो आदमी ऐसे नहीं मिले जिनकी ईश्वर के विषय में धारणा बिलकुल एकसमान हो। इसलिए भिन्न–भिन्न स्वभावों और जलवायु संबंधी परिस्थितियों के अनुसार धर्म भी शायद हमेशा भिन्न–भिन्न ही रहेंगे। मैं विश्व के सभी महान धर्मों के मौलिक सत्य में विश्वास करता हूँ। मै मानता हूं कि वे सभी ईश्वर प्रदत्त हैं और यह भी मानता हूं कि जिन लोगों के लिए उनका प्राकट्य हुआ उनके लिए वह आवश्यक था। मैं यह भी विश्वास करता हूं कि यदि हम सभी लोग विभिन्न धर्मो की पवित्र पुस्तकों को उन धर्मों के अनुयाइयों के दृष्टिकोण से पढ़ें तो हम पाएंगे कि वे मूलतः एक हैं और एक–दूसरे के सहायक हैं। धर्म लोगों को एक–दूसरे से पृथक करने के लिए नहीं हैं वे एक–दूसरे को जोड़ने के लिए हैं।

14.9 धर्म ग्रंथ

गाँधी के अनुसार वेद दिव्य और अपौरुषेय है। इसका अर्थ–भावना प्रकाश देती है। और वेदों की भावना है पवित्रता, सत्य, निष्कपटता, शुचिता विनम्रता, सरलता, क्षमा, दिव्यता और वे सभी गुण जिनसे स्त्री–पुरुष उदात्त और वीर बनते हैं। मैं यह नहीं मानता कि केवल वेद ही दिव्य हैं। मेरी मान्यता है कि बाइबिल, कुरान और जेंदअवेस्ता भी वेदों के समान ईश्वरीय प्रेरणा से प्रकट हुए हैं। हिंदू धर्मग्रंथों में मेरे विश्वास का तात्पर्य यह नहीं है कि मैं उनके एक–एक शब्द और श्लोक को देवी प्रेरणा से उद्घृत मानता हूँ मैं ऐसी किसी भी व्याख्या को मानने से इंकार करता हूं जो तर्क या नैतिक दृष्टि के प्रतिकूल हो भले ही यह व्याख्या कितनी ही विद्वत्तापूर्ण क्यों न हो परन्तु मै अक्षरचारी नहीं हूं। इसलिए मै दुनिया के विभिन्न धर्मग्रंथों की भावना को समझने का प्रयास करता हूं। धर्मग्रंथों की व्याख्या करते समय मै स्वयं उन्हीं के द्वारा निर्धारित सत्य और अहिंसा की कसौटी को लागू करता हूं इस कसौटी पर जो खरे नहीं उतरते उन्हें अस्वीकार कर देता हूं और जो खरे उतरते हैं उनको अपना लेता हूं। मुझे सरमन ऑन द माउंट तथा भगवद्गीता में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया। सरमन में जो बात चित्रोपम भाषा में कही गई है, भगवद्गीता में उसे वैज्ञानिक सूत्र का रूप दे दिया गया है।

सामान्य अर्थों में उसे वैज्ञानिक पुस्तक न भी कह सकें तो भी इसने प्रेम के नियम जिसे मैं समर्पण का नियम कहना चाहूंगा की प्रस्थापना बड़े वैज्ञानिक ढंग से की है। सरमन ऑन द माउंट में यही नियम अद्भुत भाषा में दिया गया है। न्यू टेस्टामेंट पढ़कर मुझे सुख और असीम आनंद का अनुभव हुआ, क्योंकि

इसे मैंने ओल्ड टेस्टामेंट के कुछ अंशों से उत्पन्न विकर्षण के बाद पढ़ा था। आज मान लीजिए कि मुझसे कोई गीता छीन ले और मै उसके सभी श्लोक भूल जाऊं लेकिन मेरे पास सरमन की प्रति हो तो मुझे उससे वही आनंद मिलेगा जो में गीता से पाता हूं।

मेरे अंदर एक बात है कि मैं चीज़ों के घिनौने पक्ष की अपेक्षा उनके उज्ज्वल पक्ष को देखना पसंद करता हूँ इसलिए मैं किसी धर्म के किसी महान ग्रंथ से सुख एवं प्रेरणा प्राप्त कर सकता हूँ। मैं भले ही गीता या न्यू टेस्टामेंट का एक भी पद्य न सुना पाऊ, कोई हिंदू बालक या ईसाई बालक संभवतः उन्हें ज्यादा अच्छी तरह सुना सके लेकिन मैंने इन दोनों पुस्तकों की भावना को जिस प्रकार आत्मसात किया है उससे मुझे वे चतुर बच्चे वंचित नहीं कर सकते। इसलिए व्यक्ति का अनुभव ही अंततः उसका मार्गदर्शक है। लिखित शब्द निस्संदेह सहायक तो होता है लेकिन उसकी भी व्याख्या करनी पड़ती है और जब विभिन्न व्याख्याओं में विरोध हो तो अंतिम निर्णय शोधकर्ता को स्वयं करना चाहिए। मैं मानता हूं कि मेरे अंदर कोई अंधविश्वास नहीं है। सत्य केवल इसलिए सत्य नहीं है कि वह प्राचीन है। यह जरूरी नही कि उसे केवल प्राचीन होने के कारण ही संदेह की दृष्टि से देखा जाए। जीवन की कुछ बुनियादी बातें हैं जिन्हें सिर्फ इसलिए नहीं छोड़ा जा सकता कि उन्हें जीवन में लागू करना कठिन है।

14.9.1 धार्मिक शिक्षा

यदि भारत को अपना आध्यात्मिक दिवाला नहीं निकालना है तो उसकी युवा पीढ़ी को धार्मिक शिक्षा देना भी उतना ही आवश्यक माना जाना चाहिए जितना कि लौकिक शिक्षा देना। यह सही है कि धार्मिक पुस्तकों का ज्ञान और धर्म का ज्ञान एक–दूसरे के पर्याय नहीं हैं। लेकिन यदि हम अपने लड़के–लड़कियों को धर्म न दे सकें तो श्रेष्ठता में उसके बाद की वस्तु देकर संतोष मान लेना चाहिए और स्कूलों में यह शिक्षा मिले या न मिले, बड़े बच्चों को दूसरे कामों की तरह धर्म के मामले में भी स्वावलंबिता की कला विकसित करनी चाहिए। जिस तरह उनके वाद–विवाद तथा अब, कताई के क्लब हैं उसी तरह उन्हें धार्मिक शिक्षा की कक्षाएं भी स्वयं चलानी चाहिए।

गाँधी कहते है कि मैं नहीं मानता कि धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का काम है वह इस दायित्व का निर्वाह कर भी नहीं पाएगा। मेरा मानना है कि धार्मिक शिक्षा देना केवल धार्मिक संगठनों का काम है। धर्म और

नीतिशास्त्र को मिलाइए मत। मैं समझता हूं कि आधारभूत नीतिशास्त्र की शिक्षा देने का दायित्व निस्संदेह राज्य का है। धर्म से यहां मेरा आशय आधारभूत नीतिशास्त्र भर से नहीं है बल्कि संप्रदायगत धर्म से है। राज्य सहायता प्राप्त धर्म और राजकीय चर्च हमें काफी नुकसान पहुंचा चुके हैं। जो समाज या वर्ग अपने धर्म की रक्षा के लिए राजकीय सहायता पर अंशतः या पूर्णतः आश्रित है वह इस योग्य नहीं है कि उसके पास कोई उल्लेखनीय धर्म शेष रहे बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसका अपना कोई उल्लेखनीय धर्म है ही नहीं। धार्मिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में अपने धर्म के अलावा अन्य धर्मों के सिद्धांतों का अध्ययन समाविष्ट होना चाहिए। इसके लिए विद्यार्थियों को आदर और उदार सहिष्णुता की भावना के साथ विश्व के विभिन्न महान धर्मों के सिद्धांतों को समझने और उन्हें सराहने का अभ्यास डालने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

14.10 सारांश

गांधी के विचार में, धार्मिक प्रथाओं, विचारों और विश्वासों को मौसम की कसौटी पर खरा उतरना था, और जो परीक्षण में विफल रहे उन्हें खारिज कर दिया गया। यह परीक्षण उन्होंने सभी धर्मों पर लागू किया, जबकि गांधी ने सभी स्थापित धर्मों को दैवीय रूप से प्रेरित माना उन्होंने एक उच्च धर्म को भी मान्यता दी जो आपराधिक था और जो विशेष धर्मों से आगे निकल गया। उन्होंने 1940 में कहा था धर्म का मतलब संप्रदायवाद नहीं है।

बी. आर. नंदा गांधी के प्रतिष्ठित जीवनीकार ने गांधी के धार्मिक विचारों और प्रथाओं के अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि गांधी की धर्म की अवधारणा में बहुत कम समानता थी जो आम तौर पर संगठित धर्म के लिए हैरू हठधर्मिता, अनुष्ठान, अंधविश्वास और कट्टरता। गांधी का धर्म दैनिक जीवन के आचरण के लिए केवल एक नैतिक ढांचा था। जबकि गांधी हर इंसान में ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे ऐसे अवसर भी थे जब उन्होंने उपहार या लाभ के लिए एक बाहरी इकाई से प्रार्थना की।

हिंदू धर्म पर एक बहुत ही बोधगम्य अवलोकन में, फ्रांसीसी मानवविज्ञानी, लुई ड्यूमाउंट ने कहा है कि हिंदू धर्म में विरोधाभासी प्रतीत हो सकता है, त्यागी (सन्यासी) रचनात्मक नवप्रवर्तक हैं। लेकिन बुद्ध और महावीर से लेकर गांधी तक त्यागियों का सच है लेकिन गांधी ने पूरी त्यागी परंपरा को सिर पर खड़ा कर दिया। यह उनके 'गेरुआ वस्त्र' पहनने से इनकार करने का प्रतीक था, और इसके बजाय सफेद 'खादी' से चिपके रहे, जो कि स्वतंत्रता का प्रतीक

है। यह गांधी ही थे, जिन्होंने सामूहिक कार्रवाई के उस शक्तिशाली साधन, 'सत्याग्रह' को तैयार किया, जिससे उत्पीड़ित, शोषित और कमजोर लोगों को अमीर और शक्तिशाली उत्पीड़कों के खिलाफ लड़ने में सक्षम बनाया जा सके। गांधी के लिए, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक आयाम धर्म से अविभाज्य हैं। यह वह बिंदु है, जहां वह निश्चित रूप से आधुनिकतावादी नहीं हैं।

14.11 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1 महात्मा गाँधी के धर्म पर विचार एवं गाँधी द्वारा दिए गये धर्म के अर्थ की व्यख्या कीजिए।

प्र. 2 महात्मा गाँधी के धर्म का वैविध्य स्वरूप बुनियादी एकता तथा धार्मिक शिक्षा का मूल्यांकन कीजिए ।

प्र. 3 महात्मा गाँधी के धर्म और राजनीति तथा भौतिक बल एवं नैतिकता के संदर्भ में धर्म की व्याख्या कीजिए ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 किसने इस विचार को प्रत्याचित किया है कि 'चरित्र विहीन ज्ञान' पाप है?

(अ) श्रीनिवास (ब) महात्मा गाँधी (स) मैकाइवर (द) योगेन्द्र सिंह

प्र. 2 महात्मा गाँधी का जन्म कहाँ हुआ था?

(अ) पोरबंदर (ब) महाराष्ट्र (स) हिमाचल प्रदेश (द) उत्तर प्रदेश

प्र. 3 स्वराज्य शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था?

(अ) दादाभाई नौरोजी (ब) योगेश अटल (स) श्रीनिवास (द) योगेन्द्र

प्र. 4 महात्मा गाँधी के राजनीतिक गुरु कौन थे?

(अ) फिरोजशाह मेहता (ब) योगेश अटल

(स) अरविंदो घोष (द) गोपालकृष्ण गोखले

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 (ब)

प्र. 2 (अ)

प्र. 3 (अ)

प्र. 4 (द)

संदर्भ सूची

1. Haralombus, M. 1980; Sociology - Themes and Perspectives, Oxford University Press.

2. Madan, T. N. 1991; Religion in India, Oxford University Press.

3. Madan, T. N. 1997; Modern Myths, Locked Minds, Oxford University Press.

4. Macionis J. J. 1997; Sociology, Prentice Hill, Inc.

5. Schaeffer, R. T. & Lamm, R. P. 1992; Sociology, McGraw Hill Inc.

6. Giddens, A. 1989; Sociology, Blackwell Publisher Ltd.

7. Gore, M. S. 1991; Secularism in India, Indian academy of social science.

8. Jain, M.S. 2000; Muslim ethos, Rawat Publication.

9. Chattopadyaya, D. P. 1959; Lokyat :A Study in Ancient Indian Materialism People's Publishing House.